MAHAMANA

PT. M. M. MALAVIYA

(PRESENTED ON THE 75 TH ANNIVERSARY)

PT. SITARAM CHATURVEDI

EDITOR

PT. 1

KASHI

PAUSH KRISHNASHTAMI 1913 V. S.

धवल देह अरु वेश, धवल चरित कीरति धवल।
धवल किया निज देश, धवल ज्ञान विज्ञान सौं॥
मद नहिं परसत जाइ, मोह न मिलइ सुभाव महँ।
मालवीय मन लाइ, हृदय हरौ हरषत सदा॥

कृतज्ञता-प्रकाशन

इस ग्रन्थके लिखनेमें हमें इतने अधिक सज्जनोंने सहायता की है और इतनी अधिक पुस्तकों, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं तथा लेखोंसे हमने मदद ली है कि उनका उल्लेख करना और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना शक्ति और साधनसे बाहर है। यों ही हमने जिस आकार और पृष्ठ-संख्याका ग्रन्थ प्रकाशित करनेका वचन दिया था उससे आकार और प्रकार दोनोंमें यह ग्रन्थ बढ़ गया। इसी लिये हम समयपर यह ग्रन्थ अपने पाठकों और ग्राहकोंको न दे सके। उनके धैर्य्यके लिये हम बड़े कृतज्ञ हैं। इन पिछले दिनोंमें हमारे प्रिय मित्र श्रीविष्णुदेवजीने इस ग्रन्थके सम्पादनमें हमें बड़ी सहायता दी है उनके हम विशेष ऋणी हैं। हम भारतवर्ष भरके सभी नेताओं और लेखकोंके कृतज्ञ हैं क्योंकि उन्हींकी कृपासे हमने यह सामग्री बटोरी है।

विनीत—

रामनारायण मिश्र,

अध्यक्ष,

श्रीमालवीय जीवन-चरित-समिति

इस ग्रन्थ-यज्ञके होता

सम्पादक मण्डल

पण्डित रामनारायण मिश्रजी
श्रीठाकुर शिवकुमार सिंहजी
पण्डित चन्द्रवली पाण्डेय, एम्.ए.
पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, एम्.ए., साहित्यरत्न
पण्डित वाचस्पति उपाध्याय, एम्.ए.
पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी, एम्.ए.
श्री विष्णुदेव
पण्डित रामकुमार चौबे, एम्.ए., एल्.टी., एल् एल्.बी.
पण्डित त्रिलोचन पन्त, एम्.ए.
पण्डित कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग, एम्.ए.
पण्डित गणेशदत्त पन्त, बी.ए.
पण्डित लालधर त्रिपाठी, साहित्यरत्न

अनुवादक मण्डल

पण्डित मित्रानन्द द्विवेदी,
पण्डित प्यारेलाल शर्मा, बी.ए.
पण्डित क्षितीश्वर पाण्डेय, बी.ए.
पण्डित विक्रमादित्य मिश्र, बी.ए.
पण्डित अवधबिहारी तिवारी, बी.ए.
पण्डित राजाराम तिवारी
पण्डित लक्ष्मीनारायण तिवारी

सहायक मण्डल

पण्डित अम्बिकादत्त उपाध्याय, एम्.ए.
पण्डित रामप्रीति पाण्डेय, बी.ए.
पण्डित शिवनाथ मिश्र
पण्डित रामनिरञ्जन शर्मा, विशारद
श्रीयुत रामदेव सिंह, विशारद
पण्डित केदारनाथ पाठक
श्रीयुत देवी प्रसाद
पण्डित दूधनाथ मिश्र
पण्डित शालिग्राम चतुर्वेदी

लेखक तथा प्रधान सम्पादक
पण्डित सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय'
एम्.ए., बी.टी., एल्एल्.बी.

व्यवस्थापक—
पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी, एम्.ए.
श्रीयुत दयाल स्वरूप

मुद्रक—
पण्डित रामेश्वर पाठक
तारा यन्त्रालय, काशी।

3M
G6

4415

जीवशास्त्र यांत्रिक,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पूज्य कालवीय जी महाराज ने आपको सर्वप्रिय ग्रन्थ की,
गीता दे का, पूर्व अध्याय का आनंद बना का दी

जीवशास्त्र यांत्रिक

4415
BANARAS HINDU UNIVERSITY

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

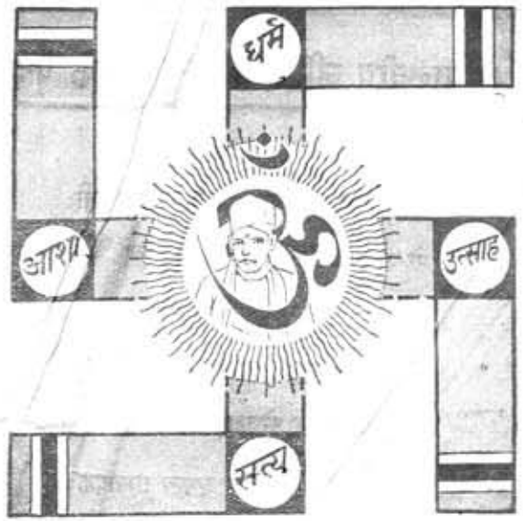

सीताराम चतुर्वेदी

काशी,
पौष कृष्णाष्टमी, संवत् १९९३ वि० ।

3M
G6

4151

नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्त्ता द्विष्यते पार्थिवेन्द्रैः ।
इति महति विरोधे वर्त्तमाने समाने
नृपतिजनहितैषी मोहनो मालवीयः ॥

श्रीमालवीय जीवन-चरित-समितिके पदाधिकारी

संरक्षक

श्रीमान् राजा ज्वालाप्रसाद जी

प्रो-वाइस-चान्सलर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अध्यक्ष

पण्डित रामनारायण मिश्र,

हेडमास्टर सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल, काशी ।

मन्त्री तथा प्रधान सम्पादक

सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय' एम. ए., एल् एल्. बी., बी. टी.

उपमन्त्री

पण्डित वाचस्पति उपाध्याय एम्. ए.

व्यवस्थापक

पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी एम्. ए.

सहकारी व्यवस्थापक

श्रीयुत दयाल स्वरूप

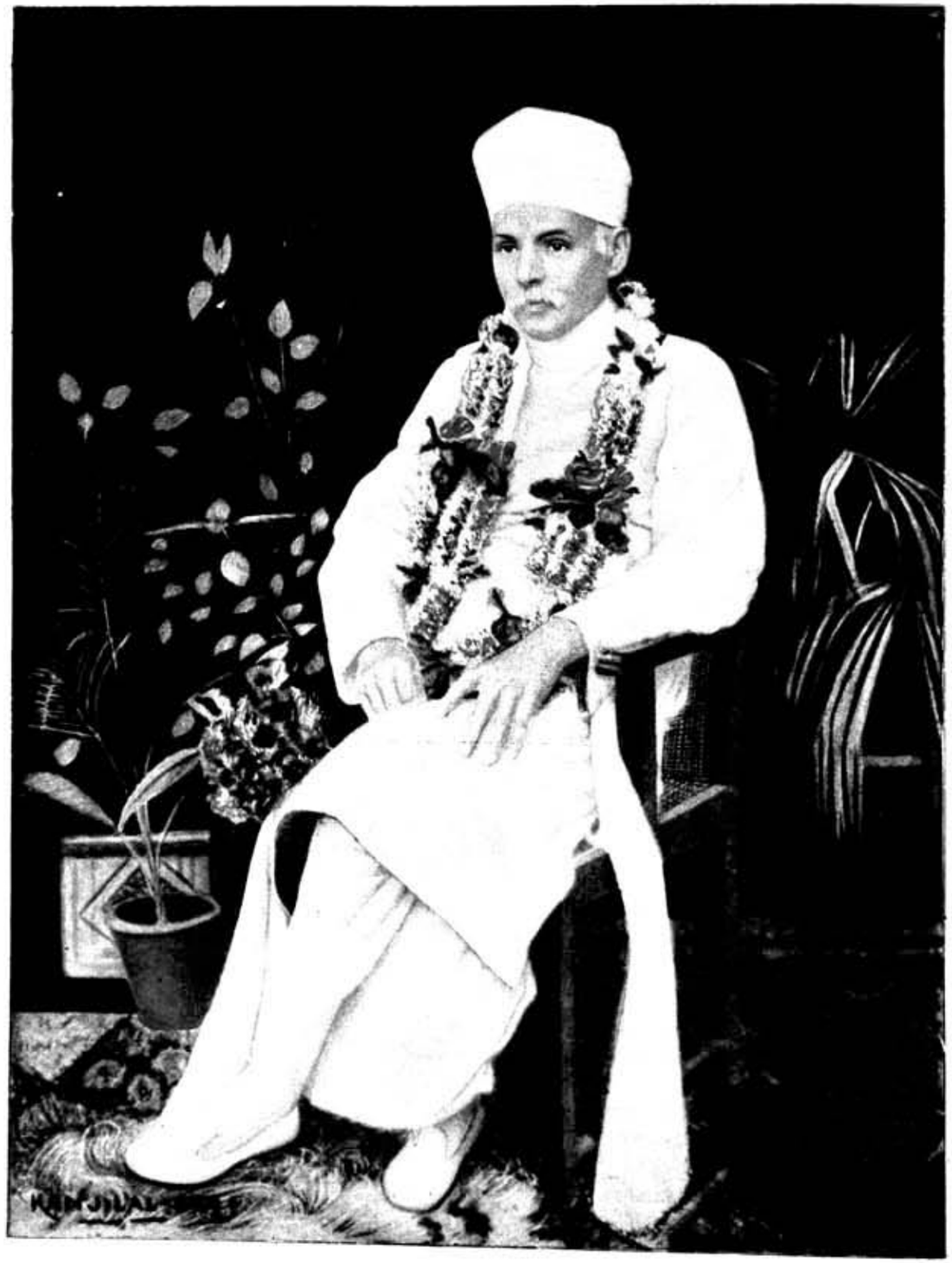

महामना

पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको

उनकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके

उपलक्ष्यमें

भेंट

धवल देह अरु वेश, धवल चरित कीरति धवल।
धवल किया निज देश, धवल ज्ञान विज्ञान सौं॥
मद नहिं परसत जाइ, मोह न मिलइ सुभाव महँ।
मालवीय मन लाइ, हृदय हरौ हरषत सदा॥

कृतज्ञता-प्रकाशन

इस ग्रन्थके लिखनेमें हमें इतने अधिक सज्जनोंने सहायता की है और इतनी अधिक पुस्तकों, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं तथा लेखोंसे हमने मदद ली है कि उनका उल्लेख करना और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना शक्ति और साधनसे बाहर है। यों ही हमने जिस आकार और पृष्ठ-संख्याका ग्रन्थ प्रकाशित करनेका वचन दिया था उससे आकार और प्रकार दोनोंमें यह ग्रन्थ बढ़ गया। इसी लिये हम समयपर यह ग्रन्थ अपने पाठकों और ग्राहकोंको न दे सके। उनके धैर्य्यके लिये हम बड़े कृतज्ञ हैं। इन पिछले दिनोंमें हमारे प्रिय मित्र श्रीविष्णुदेवजीने इस ग्रन्थके सम्पादनमें हमें बड़ी सहायता दी है उनके हम विशेष ऋणी हैं। हम भारतवर्ष भरके सभी नेताओं और लेखकोंके कृतज्ञ हैं क्योंकि उन्हींकी कृपासे हमने यह सामग्री बटोरी है।

विनीत—

रामनारायण मिश्र,

अध्यक्ष,

श्रीमालवीय जीवन-चरित-समिति

इस ग्रन्थ-यज्ञके होता

लेखक तथा प्रधान सम्पादक

पण्डित सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय'

एम.ए., बी.टी., एलएल.बी.

सम्पादक मण्डल

पण्डित रामनारायण मिश्रजी
श्रीठाकुर शिवकुमार सिंहजी
पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय, एम्.ए.
पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, एम्.ए., साहित्यरत्न
पण्डित वाचस्पति उपाध्याय, एम्.ए.
पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी, एम्.ए.
श्री विष्णुदेव
पण्डित रामकुमार चौबे, एम्.ए., एल्.टी., एल् एल्.बी.
पण्डित त्रिलोचन पन्त, एम्.ए.
पण्डित कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग, एम्.ए.
पण्डित गणेशदत्त पन्त, बी.ए.
पण्डित लालधर त्रिपाठी, साहित्यरत्न

अनुवादक मण्डल

पण्डित मित्रानन्द द्विवेदी,
पण्डित प्यारेलाल शर्मा, बी.ए.
पण्डित क्षितीश्वर पाण्डेय, बी.ए.
पण्डित विक्रमादित्य मिश्र, बी.ए.
पण्डित अवधबिहारी तिवारी, बी.ए.
पण्डित राजाराम तिवारी
पण्डित लक्ष्मीनारायण तिवारी

सहायक मण्डल

पण्डित अम्बिकादत्त उपाध्याय, एम्.ए.
पण्डित रामप्रीति पाण्डेय, बी.ए.
पण्डित शिवनाथ मिश्र
पण्डित रामनिरञ्जन शर्मा, विशारद
श्रीयुत रामदेव सिंह, विशारद
पण्डित केदारनाथ पाठक
श्रीयुत देवी प्रसाद
पण्डित दूधनाथ मिश्र
पण्डित शालिग्राम चतुर्वेदी

व्यवस्थापक—

पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषी, एम्.ए.
श्रीयुत दयाल स्वरूप

मुद्रक—

पण्डित रामेश्वर पाठक
तारा यन्त्रालय, काशी।

कृतज्ञता-प्रकाशन

जब हम लोगोंने इस पवित्र कार्य्यका बीड़ा उठाया था उस समय किसीको ध्यान न था कि यह कार्य्य इतनी सरलतासे पूर्ण हो जायगा, किन्तु चारों ओरसे देश भरने हमारे साथ सहयोग देकर यह यज्ञ पूर्ण करनेमें सहायता दी है। हम उन सभी मित्रों, संस्थाओं और सज्जनोंके कृतज्ञ हैं जिन्होंने निरन्तर हमारा साथ देकर अत्यन्त परिश्रम और उत्साहके साथ काम किया है। अध्यक्ष महोदयने अपने वक्तव्यमें उनको धन्यवाद दे दिया है, मैं उसको दुहराना नहीं चाहता। लीडर प्रेस प्रयाग, बा० गौरीशङ्कर प्रसाद वकील काशी, ट्रिब्यून प्रेस और वीर भारत लाहौर, व बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी, काशी विद्यापीठ तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा आदिने हमें पुराने पत्र, ब्लौक, चित्र आदि देकर बड़ी सहायता की है। इस पुस्तकके लिखने और प्रकाशित करनेमें हमें कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा और इसमें कितना समय तथा परिश्रम लगा होगा उसका अनुमान करके हमारे पाठक हमारी त्रुटियोंको क्षमा करेंगे और जो ग़लतियाँ रह गई हों उन्हें सुधार लेंगे। हमें इस बातका अवश्य खेद है कि हम समयपर पुस्तक न प्रकाशित कर सके, पर हमें विश्वास है कि हमारी कठिनाइयोंका ध्यान करके हमारे कृपालु ग्राहक क्षमा करेंगे।

अन्तमें हम अपने सभी सहयोगियों और ग्राहकोंको धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस कार्य्यमें हमारी सहायता की है और ग्राहक बने हैं। हमें विश्वास है कि इस ग्रन्थको पढ़कर भारत जाग उठेगा और इन आदर्श महापुरुषके जीवनसे शिक्षा और उत्साह लेकर स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध अपने देश, धर्म और जातिके कल्याणके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करेंगे कि पूज्य मालवीयजी शतायु हों।

गयाप्रसाद ज्योतिषी,
व्यवस्थापक

दयाल स्वरूप,
सहकारी व्यवस्थापक।

निवेदन

किसी महापुरुषका जीवन-चरित लिखना बड़ी ज़िम्मेदारीका काम है, फिर उस महापुरुषके सामने उसीका जीवन-चरित लेकर खड़े होना तो और भी कठिन है। न जाने कितनी बातें ऐसी हैं जिन्हें हम जानकर भी नहीं लिख सकते, बहुतसी ऐसी घटनाएँ और कार्य्य हैं जिनपर मुँह खोलना छोटे मुँह बड़ी बात होती है। बहुत सोच-समझकर बच-बचकर चलना पड़ता है। आत्मचरित लिखनेमें लेखकको स्वतन्त्रता रहती है चाहे जो लिख डाले। उसकी लेखनी निडर होती है, चलती चली जाती है, वह अपने लिये ज़िम्मेदार होती है।

इस ग्रन्थमें जहाँतक हो सका है हम लोगोंने वास्तविक घटनाओंका ही समावेश किया है। जिसमें ज़रा भी सन्देह हुआ है उसे छोड़ दिया है। जीवन-चरित, व्याख्यान और लेख तीनों विषय-क्रमसे रक्खे गए हैं, तिथिक्रमसे नहीं। मैं समझता हूँ कि बहुधन्धी जीवनवाले महापुरुषका जीवन-चरित तिथिक्रमसे लिखनेमें असङ्गत हो जाता है।

इतने बड़े ग्रन्थके लिये कितने धनकी आवश्यकता हुई होगी आप स्वयं समझ सकते हैं। पर यह समस्या अधिक कालतक न टिक सकी। थोड़े ही समयमें इतने ग्राहक हो गए कि हमारा प्रारम्भिक ख़र्च किसी तरहसे चल गया। पिछले पृष्ठपर दिए हुए इस ग्रन्थ-यज्ञके सारे होताओंको मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बड़े परिश्रम और उत्साहके साथ दिन-रात लगकर काम किया। इसमें बहुतसी त्रुटियाँ और बहुतसे दोष हैं, आख़िर मनुष्योंकी रचना है। इसलिये सभी पाठकोंसे निवेदन है कि उन्हें जो त्रुटि या दोष दिखाई दे उसे हमारे पास लिख भेजें, जिससे दूसरे संस्करणमें सुधार कर दिया जाय।

रामनारायण मिश्र

अध्यक्ष,
श्री मालवीय-जीवनचरित-समिति,
तैलङ्ग लाइब्रेरी कमच्छा, काशी।

नहीं कर सकता। मैं भगवान विश्वनाथसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे और आयु दें। आप कहेंगे कि तुम कितने निर्लज्ज हो कि अपने मुँहसे अपनी आयु चाहते हो, जब इतने भाई बहनोंने तुम्हारी आयुके लिये भगवानसे प्रार्थना की। फिर वे भगवान तो सबके हृदयमें, घट-घटमें रहनेवाले हैं, फिर उनसे क्या माँगें। लेकिन मैं क्या करूँ। देशकी दशा बड़ी बुरी हो गई है। हिन्दू धर्म भी असङ्कटित है। सारी जातिकी दशा बुरी हो गई है। इस दुःखके उमड़ते हुए समुद्रमें क्या मुझे मरनेकी फ़ुरसत है? मुझे सबसे बड़ी यही चिन्ता है कि देश और धर्मकी किसी तरह दशा सुधरे और मैं इसी लिये भगवानसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इस कामको करनेके लिए आयु देनेका अनुग्रह करें। एक बात यह है कि मुझे यह सौभाग्य मिला है कि मेरे पितामह, पितामही, पिता और माता बड़े धर्मात्मा, पवित्र, सदाचारी और निःस्वार्थी ब्राह्मण थे, उन्हींके प्रसादसे मैं इतना काम कर सका हूँ। मैंने बहुत थोड़ी विद्या पढ़ी है। मैं बहुत कम अंग्रेज़ी और कम संस्कृत जानता हूँ। मुझमें शारीरिक बल भी कम है और धन तो सदासे ही कम रहा है। मेरे पिता एक ग़रीब ब्राह्मण थे और उन्होंने सदा ब्राह्मणका जीवन बिताया। यह उन्हींकी तपस्या थी जिसने मुझे धर्म, जाति और देशका सेवक बनाया। मैं चाहता हूँ कि भारतवर्षके सब लोगोंको ऐसे ही धर्मात्मा पिता और पितामह मिलें जिन्होंने पाँच रुपयेसे कमकी आमदनीमें भी कभी नौकरीका लालच न करके सन्तोषसे जीवन व्यतीत किया। मैं चाहता तो अपना व्यक्तिगत लाभ बहुत कर सकता था किन्तु दस-पाँच लाख रुपया मिलता भी तो क्या था। मैं सुखसे जीवन बिता सकता था पर वह इस सेवाके सामने कुछ भी नहीं था।

सौ वर्षकी उम्र कोई बड़ी बात नहीं है। मेरे ताऊ, पिताके बड़े भाई और स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने तिरानवे वर्षकी उमर पाई। मेरा दस वर्षका कार्य्यक्रम है, जिसको मैं इसी शरीरमें पूरा करके जाना चाहता हूँ। अभी यहाँ मन्दिर बनानेकी इच्छा है, किन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं है। मन्दिर क्यों न बने? यह तो इस विश्वविद्यालयके हृदयके समान है। जब हृदय ही नहीं होगा तो शरीर किस कामका! हज़ारों वर्ष पहले योरोपके लोग जब नङ्गे फिरते थे, उस समय हमारे यहाँ सभ्यताका सूर्य्य उन्नति पर था और यहाँकी संस्कृति बड़ी प्रबल थी। इस संस्कृतिकी रक्षा करना हम लोगोंका परम उद्देश्य होना चाहिए। कौनसा ऐसा स्थान है, जहाँ हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा और देशका अभिमान हो? अंग्रेज़ अपनी संस्कृतिका अभिमान करते हैं, ईसाई और मुसलमान अपनी संस्कृतिका। फिर आप ही लोग अपने धर्मका अभिमान क्यों नहीं करते? इस विश्वविद्यालयको एक ऐसा केन्द्र बनाओ, जहाँ सबके मनमें हिन्दू संस्कृतिका भाव हो और जहाँ इस संस्कृतिको समझने और रक्षा करनेका उपाय हो सके। ऐसे एक नहीं, सौ विश्वविद्यालय भी थोड़े हैं। पर कम-से-कम एक तो अवश्य हो और वह केन्द्र ऐसा प्रबल हो कि वहाँ सबका ठीक-ठीक प्रबन्ध हो। मैं आज ज्योंही यज्ञमण्डपमें आया, ज्योंही मुझे वेदकी गम्भीर ध्वनि सुनाई दी और मेरा मन ऐसा प्रसन्न हो गया जैसे बादलकी गरज सुनकर मोर नाच उठे। वह स्वर, नियम और मर्य्यादाके साथ किया हुआ वेदघोष चित्तको कितना प्रसन्न करता था। एक तो वेदका सङ्गीत और एक सामान्य सङ्गीत—दोनों हमारी संस्कृतिके मूल हैं। सा, रे, ग, म, वेदोंमें ही बँधे हैं। मुझे आशा है, सब लोग श्रद्धा और सच्चे सङ्कल्पके साथ इनकी रक्षा करेंगे और बचावेंगे। मैं चाहता हूँ और आशा करता हूँ तथा मुझे विश्वास है कि यहाँ दस हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पावेंगे, अभी तो कुल साढ़े तीन हज़ार विद्यार्थी हैं। मैं चाहता हूँ कि एक हज़ार विद्यार्थी यहाँसे अन्न-वस्त्र पाकर पुराण-शास्त्रका अध्ययन करें। वे केवल इसी लिये यहाँ न आवें कि यहाँ अन्न-वस्त्र मिलता है, बल्कि सच्चे हृदयसे यहाँ अध्ययन करने आवें।

पचीस करोड़ हिन्दुओंके लिये एक हज़ार विद्यार्थियोंका पोषण करना कठिन नहीं है। यहाँ पण्डित बालकृष्णजी और पण्डित प्रमथनाथजी जैसे विद्वान् भरे पड़े हैं। अभी संस्कृत-विभागके लिये पचास लाख रुपये चाहिएँ। विद्यार्थियों और अध्यापकोंके रहनेकी जगह चाहिए।

इस मन्दिरके लिये मैं क्या कहूँ। यह अबतक क्यों नहीं बना, इसके लिये मुझे बड़ा दुःख है। पचास मील पैदल चलकर एक तपस्वी महात्मा आए और इसकी नींव रख गए, तबसे यह अभीतक नहीं बन सका। पर इसका सब दोष मुझपर ही है। पर आप घबराएँ नहीं। विदेशोंमें भी बड़े-बड़े मकानोंके बननेमें योंही देर होती है। कुकरमुत्ता तो योंही उग आता है, पर बड़े वृक्षके बढ़नेमें समय लगता है। मैंने इसके लिये काफ़ी समय नहीं दिया, मुझे इसकी बड़ी शर्म है। हम सबको जतन करना चाहिए कि सामग्री इकट्ठी हो और काम हो। सब विद्यार्थी इस मन्दिरके लिये प्रयत्न करें और धन इकट्ठा करें तो समुचित प्रबन्ध हो। मेरा दस वर्षका कार्य्यक्रम है। आप विश्वास रक्खो, मैं अभी नहीं मरूँगा। शरीर छूटनेपर भी मैं नहीं मरूँगा, बल्कि हिन्दू विश्वविद्यालयमें या यहीं कहीं जन्म लेकर हिन्दू-जाति और देशकी सेवा करूँगा। यदि भगवानकी मर्ज़ी होगी तो वे मुझे और आयु देंगे। यदि उन्हें इस शरीरसे और सेवा करानी होगी तो वह मेरे स्वास्थ्यमें और बलमें वृद्धि करेंगे और यदि उनकी इच्छा नहीं होगी तो उनकी मर्ज़ी। इस बातको भगवान समझते हैं।

जिन लोगोंने मुझे आशीर्वाद दिया है, उनको मैं हृदयसे धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि सब लोग हिन्दू संस्कृतिकी रक्षा करेंगे, जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण हो।

मैं फिर आप सबको रोम-रोमसे धन्यवाद देता हूँ।"

इसके बाद मालवीयजीकी जयकारके साथ सभा विसर्जित हुई।

प्रथम खण्ड

जीवनकी झाँकी

धर्म और देशकी सेवाका व्रत लेकर, अपने सुख और ऐश्वर्य्यकी चिन्ता भुलाकर मालवीयजीने युवककी भाँति अदम्य उत्साहसे पचपन वर्षोंसे निरन्तर भारतकी सेवा की है। इनके जीवन-चरितकी पवित्रता और व्यापकताकी तुलना हम किससे दें कुछ समझमें नहीं आता। मालवीयजी अपने ही समान हैं, बस यही कहा जा सकता है।

—सम्पादक।

पूज्य मालवीयजीका जीवनचरित

२५ वर्षकी अवस्थामें पूज्य मालवीयजी।

३० वर्षकी अवस्थामें पूज्य मालवीयजी।

पूज्य मालवीयजी ४० वर्षकी अवस्थामें।

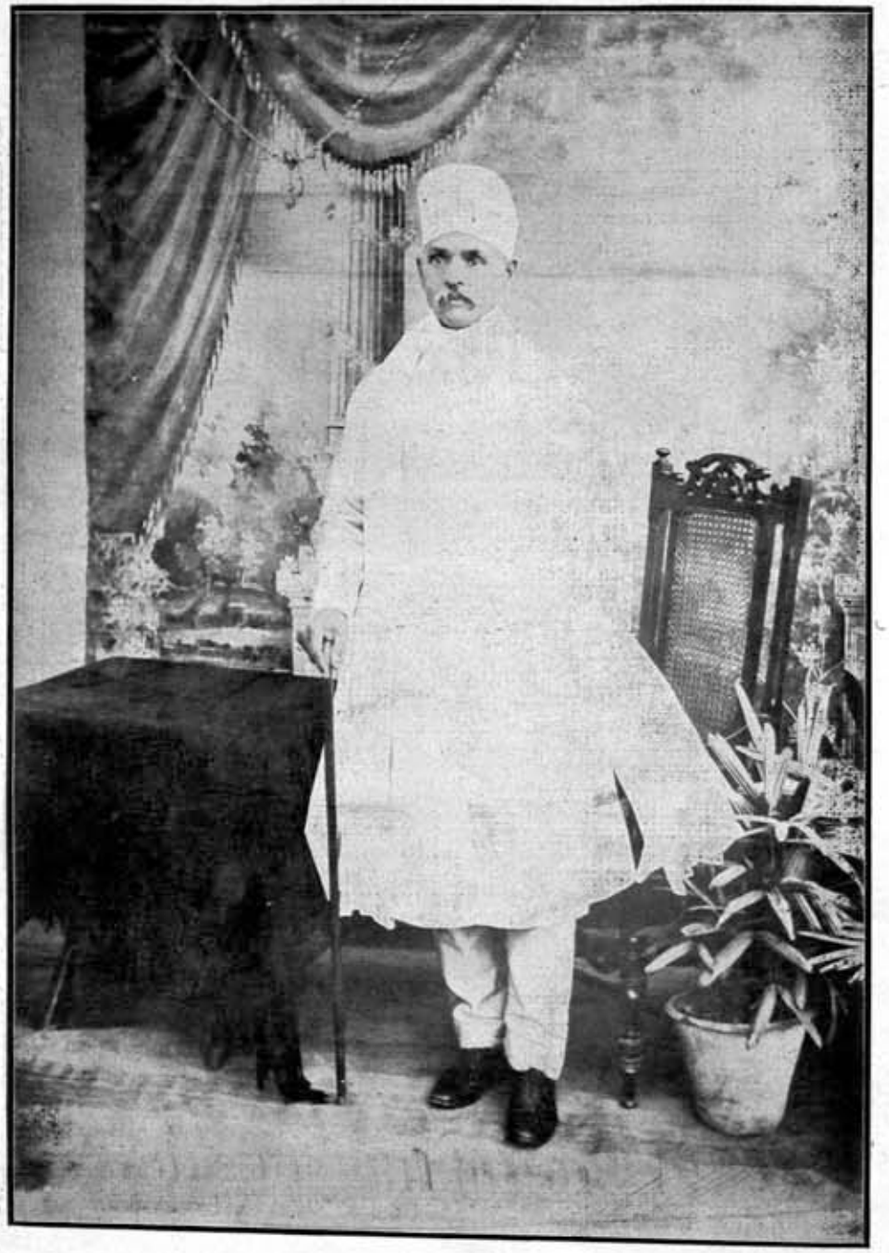

पूज्य मालवीयजी ५० वर्षकी अवस्थामें।

पूज्य मालवीयजी ६० वर्षकी अवस्थामें।

पूज्य मालवीयजी ७५ वर्षकी अवस्थामें।

ग्रन्थकारके प्रति

(प्रबन्ध-समितिकी ओरसे)

इस संसारमें समय-समयपर देशकालकी आवश्यकतानुसार उस कारुणीक परमात्माके आंशिक अवतार हुआ करते हैं। हमारे चरित-नायक महामना मालवीयजी हमारे खयालसे इसी प्रकारके ही आदर्श महा-पुरुषोंमेंसे एक हैं। ऐसे महामना महानुभावके आदर्श चरितका विकास जिन कठिन परिस्थितियोंमें हुआ है, उन सबको एक रोचक ढङ्गसे, सुन्दर, मनोहर शब्दोंमें सर्वसाधारणके सामने रखनेकी अत्यन्त आवश्यकता थी। प्रबन्ध-समितिको भाग्यवश एक पवित्र, वेदपाठी, महान् विद्यानुरागी, अग्निहोत्री-कुलोद्भव, विद्वान् लेखक श्री पण्डित सीताराम चतुर्वेदीजी मिल गए।

ग्रन्थकार

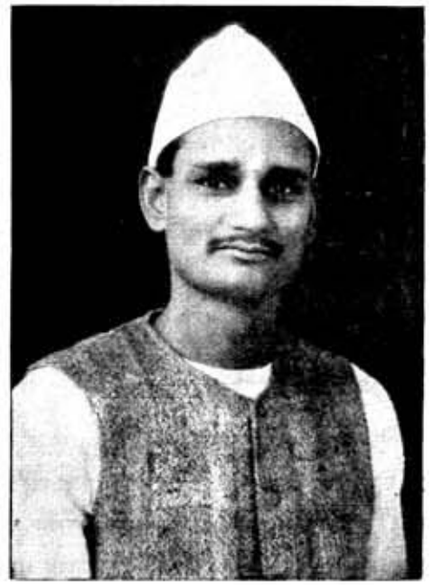

पण्डित सीताराम चतुर्वेदी 'हृदय'

चतुर्वेदीजी, वेदपाठी विद्वान् तथा आदर्श कर्मकाण्डी श्री पण्डित भीमसेनजीके पुत्र हैं और स्वयं वेदाध्यायी, तीन विषयोंमें एम्० ए० तथा एल् एल्० बी० और बी० टी० हैं। आपकी कार्य्य-कुशलता, परिश्रमशीलता, विद्वत्ता, सच्चरित्रता तथा मिलनसारी बरबस किसीके चित्तको अपनी ओर खींचती है।

चतुर्वेदीजीकी लेखनशैली निराली है। उनकी सुन्दर शब्दावलि तथा मनोहर वर्णनशैली रूखे विषयको भी रोचक बना देती है। इस जीवन-चरितमें तिथिक्रमसे जीवन-सम्बन्धी घटना-चक्रोंका विवरण नहीं दिया गया है बल्कि भारतके पिछले पचहत्तर वर्षोंकी धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक परिस्थितियोंका वर्णन इस ढङ्गसे किया गया है कि पढ़नेमें पाठकोंको उपन्यासका आनन्द प्राप्त होगा। स्थान-स्थानपर सहृदय पाठक अपनेको, करुण, वीर, तथा वात्सल्य रसमें सराबोर पावेंगे। उनके विशाल, स्वच्छ हृदयपर आदर्श चरित-नायकके अद्भुत चरित्रका चित्र खिंच जायगा।

चतुर्वेदीजीने एक पुण्य कार्य्य समझकर निःस्वार्थ भावसे अपनी अनुकरणीय और मनोहर लेखनशैलीद्वारा महामना मालवीयजीके महान् चरित्रको 'गागरमें सागर' की भाँति इस उद्देश्यसे लिखा है कि लोग जान लें कि विशेष परिस्थितियोंमें जन्म लेकर भी मनुष्य कितने ऊँचे उठ सकता है। हम आशा करते हैं कि महामनाजीके पवित्र चरित्रको मननकर भारतके लाल दुखिया भारतका मुख उज्वल करनेका प्रयत्न करके यशके भागी बनेंगे।

—ठाकुर शिवकुमार सिंह

पूज्य मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके दिन

५ जनवरी सन् १९३७ ई० को काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके श्री विश्वनाथ मन्दिरकी पवित्र भूमिपर जयन्ती-उत्सव मनानेके लिये विशाल पण्डाल सजाया गया था। वहाँ यज्ञ-मण्डपमें महामहोपाध्याय प्रिन्सिपल पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणजीकी अध्यक्षतामें ३० दिसम्बरसे काशीके प्रसिद्ध पण्डितोंद्वारा विष्णुयाग आरम्भ किया गया था। इसके साथ-ही-साथ पूज्य मालवीयजी द्वारा सङ्कलित महादेव-माहात्म्य, शतचण्डी, गीता-पाठ, महामृत्युञ्जय-जप आदि भी किए गए। ५ जनवरीको प्रातःकाल पूज्य मालवीयजी फ़ैज़पुर कांग्रेससे लौटकर काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय आए। सुबहसे ही पूज्य मालवीयजीके बँगलेपर दर्शकोंकी भीड़ लगी हुई थी। प्रातःकाल ही बाहर आकर पूज्य मालवीयजीने सबको दर्शन दिए। यहाँसे दर्शनकर सब लोगोंने सभामण्डपकी ओर प्रस्थान किया।

निमन्त्रित व्यक्ति, अध्यापक, महिलाएँ, छात्र, छात्राएँ और छोटे-छोटे बच्चोंसे निश्चित स्थान भर गया था। नौ बजते-बजते सभा-मण्डप ठसाठस भर गया। पैदल, घोड़ा, गाड़ी, मोटर और इक्कोंका ताँता लगा हुआ था। सब वहीं पहुँच रहे थे। ठीक दस बजे पूज्य मालवीयजी, काशी-नरेशके साथ यज्ञशालामें पधारे, जहाँ यज्ञ और वेदध्वनि हो रही थी। पूर्णाहुतिके समय ब्राह्मणोंने आपको आशीर्वाद दिया और फल-फूल समर्पण किए। सभा-मण्डपमें पधारनेपर स्कूलकी छात्राओंने आपका स्वागत किया। चारों ओरसे जय-ध्वनिके घोषसे सभा-मण्डप गूँज उठा। फिर बालचर-मण्डलीने स्वागत गान सुनाया, उसके बाद बालिकाओंने गाना गाया। बच्चों और श्रद्धालुओंने पूज्य मालवीयजी और काशी-नरेशको मालाएँ पहनाईं।

इसके बाद महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणजीने आपके छिहत्तरवें जन्मदिवसकी शुभ कामना संस्कृतमें पढ़कर सुनाई। नैयायिक पण्डित बालकृष्णजी मिश्रने पूज्य मालवीयजीकी जन्मतिथि, पक्ष और महीनेकी विशेषताका चमत्कारिक अर्थ बतलाते हुए आपको बधाई दी। प्रोवाइस-चान्सलर राजा ज्वालाप्रसादजीने यह जीवन-चरित ग्रन्थ मालवीयजीको भेंट किया और इस ग्रन्थके लेखकका परिचय दिया और उनको धन्यवाद दिया। फिर पण्डित सीताराम चतुर्वेदीजीने इस ग्रन्थके प्रथम और अन्तिम अध्याय पढ़कर सुनाए जिसे सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध सी हो गई और बहुत समयतक करतल-ध्वनि करती रही। श्री मालवीय-जीवनचरित समितिके अध्यक्ष पण्डित रामनारायण मिश्रजीने ग्रन्थके सहायकोंको धन्यवाद दिया और एक स्थानीय सज्जन-द्वारा तैयार की हुई एक सुन्दर सुनहरी देशी घड़ी भेंट की जिसके साथ भारत-माताकी मूर्त्ति बनी हुई थी। आर्य्य-समाज, अछूतोद्धार सभा, सेवासमिति बालचर-समिति, महिला-विद्यालय, इत्यादि अनेक समितियाँ और संस्थाओंकी ओरसे बधाई तथा शुभ कामनाएँ प्रकट की गईं। इनमें बाबू गौरीशङ्कर प्रसाद वकील और राजपण्डिता श्रीमती यमुना देवीके भाषण उल्लेखनीय थे। अन्तमें पूज्य मालवीयजीने एक छोटासा सारगर्भित, विनम्र भाषण दिया—

पूज्य मालवीयजीका भाषण

विद्वज्जन, देवियो, सज्जनो और विद्यार्थियो!

"मैं तो आज मूक हो रहा हूँ। जिस प्रेम और उत्साहसे आप लोगोंने यह उत्सव मनाया है उसके विषयमें मैं क्या कहूँ। मैं शब्दोंमें उस भावको प्रकट

प्रथम खण्डकी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—पचहत्तर बरस पहलेकी बात है	१—४
२—पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी जन्म-कुण्डली	५
३—मल्लई ब्राह्मण	६—७
४—बड़ोंका प्रसाद	८—१३
५—होनहार बिरवा	१४—२५
६—एक पग आगे	२६—३१
७—मैदानमें	३२—३६
८—अख़बारी दुनियामें	४०—४६
९—कचहरीके भीतर	४७—५०
१०—सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय	५१—६५
११—समाजकी नींव	६६—७४
१२—गूँगी माता	७५—८०
१३—निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल	८१—८७
१४—बेचारा हिन्दू	८८—९८
१५—हमारे देशका अभिमान हिन्दू विश्वविद्यालय	९९—१२७
(क) सपना	९९—१०१
(ख) फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो	१०२—११६
(ग) हिन्दू विश्वविद्यालयके भीतर	११७—१२७
१६—स्वदेशकी पुकारपर—	
(क) भिक्षा-युग	१२८—१३४
(ख) विद्रोह-युग	१३५—१३८
(ग) युद्ध-युग	१३९—१६२
१७—सरकारी दुर्गमें	१६३—१६६
१८—सेवा	१६७—१७०
१९—सोनेकी चिड़िया	१७१—१७५
२०—प्रजापति	१७६—१८०
२१—मालवीयजीका परिवार	१८१
२२—शतदल कमल	१८२—२०३
२३—आज	२०४—२०५
२४—महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ-पर कवियोंके उद्गार	२०६—२०८

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

आदिदेवं नमस्कृत्य वन्दे देवान्महोजसाः ।
सर्वा देवप्रिया वन्दे वन्दे स्वपितरौ सदा ॥
रामं रामप्रियां वन्दे वन्दे रामानुजांस्तथा ।
रामस्य पितरौ वन्दे वन्दे रामानुगं हरिम् ॥
मदनो मोहनो यस्तु मालवीयं नमामि तम् ।
सीतारामेण सद्भक्त्या यच्चरित्रं सुवर्णितम् ॥

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

पचहत्तर बरस पहलेकी बात है

आजके प्रयागको देखकर किसीको गुमान भी न होगा कि पचहत्तर बरस पहले यह खपरैलके मकानोंका एक बड़ा देहात था। तब ये खुली, चौड़ी, चिकनी सड़कें नहीं थीं, ऊँची ऊँची अटारियाँ और कोठियाँ नहीं थीं, रङ्गबिरङ्गी फूलोंकी क्यारियाँ और हरियाले घने पेड़ोंकी झुरमुटमें ऊँचा सिर करके खड़े हुए बँगले भी नहीं थे। न तो आँखोंको चुँधियानेवाली बिजली थी, न दिल दहलानेवाले पुतलीघर। हाँ, इस देहातमें त्रिवेणीके भक्तोंने पुण्य करके कुछ मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवा दी थीं जहाँसे साँझ-सवेरे भगवान्‌के भजन, शङ्खकी गूँज और घण्टे घड़ियालोंकी टन्‌टन् झन्‌झन् भक्तोंका मन लुभाती थी।

आज जहाँ घनी बस्ती और बड़ी-बड़ी दूकानें दिखाई पड़ रही हैं, वहाँ खुला जङ्गल था। जहाँ आजकल सरकारी अफ़सरों और नगरके धनी-मानियोंके बँगले चमकते हैं वहाँ जङ्गली जानवर पेड़ोंकी ठण्ढी छाँहमें लोट लगाते या माँदोंमें जाकर सोते थे। बस्तीमें छोटी-छोटी पुरानी चालकी सड़कें और सँकरी गलियाँ थीं जो मेलोंके दिनोंमें थोड़ेसे नरनारियोंसे ही ठसाठस भर जाती थीं। उस समय कोई प्रयागकी सैर करनेको नहीं जाता था। जो जाता था वह अपना आराम छोड़कर, झोलीमें सतुवा बाँधकर, त्रिवेणीमें एक डुबकी—बस एक डुबकी—लगाने, और उसका प्रयाग जाना सफल हो जाता था। अब ज़माना बदल गया है। अब सैर

करनेवाले लोग त्रिवेणीको नहीं पूछते, क्योंकि अब प्रयागमें मन लुभानेवाली बहुतसी चीज़ें हो गई हैं।

पर हाँ—एक बात है—गङ्गा और यमुना आज भी उसी तरह, उसी वेगसे, उसी उमङ्गसे, उसी शानसे प्रयागकी गोदमें एक दूसरेसे मिलनेके लिये पगली सी दौड़ी चली आती हैं—पिता हिमालयकी गोद छोड़ते ही उनका विछोह हुआ—फिर यदि वे दोनों बहनें इतने हुलाससे मिलनेको दौड़ें तो अचरज क्या? और फिर वह दुर्ग—अकबरका बनाया हुआ वह क़िला भी तो ज्यों-का-त्यों खड़ा है। मुग़लोंके सुनहले दिनोंकी याद लिए हुए, लुटी हुई शानकी कसक लिए हुए यमुनाकी ठण्ढी कोमल लहरोंकी थपथपी पाकर चुपचाप खड़ा है, जैसे उसमें प्राण न हो, जीवन न हो, आत्मा न हो। सचमुच उसकी पिछली बातें याद करके रोना आता है। पर यह तो संसारका चक्कर है। कल भी यही था, कल भी यही रहेगा।

प्रयाग ही नहीं, उस दिनका हिन्दुस्थान भी जिसने देखा होगा वह आजके हिन्दुस्थानको नहीं पहचान सकता। एक आग लगी थी—बड़ी भयङ्कर, बड़ी दर्दनाक—पता नहीं कैसे लगी थी। कोई कहते हैं कि विदेशी जुएको कन्धेसे हटानेके लिये लगी थी, कोई कहते हैं कि कुछ देशी राजाओंने अपने खोए हुए राजको लौटा लेनेके लिये लगाई थी, कोई कहते हैं कि बेड़ियोंमें कसी हुई माँ का बन्धन खोलनेके लिये यह आग लगाई गई थी, कोई कहते हैं कि यह फ़ौजी सिपाहियोंकी धर्मान्धता थी और कुछ नहीं: जितने मुँह उतनी बातें। आग लगी थी, यह सच है। क्यों लगी थी? यह हरएक बुद्धिमान् समझ सकता है। पर सचमुच वह आग कितनी निठुर थी, कितनी विकराल थी। लाखों हिन्दुस्थानी और अंग्रेज़ उसकी लपटोंमें जल मरे। आख़िर वह बुझी। पर जिस लिये वह लगी थी वह मतलब पूरा हुआ या नहीं इसमें सन्देह है। हाँ, यह हुआ कि हमारी आपसकी फूटने औसर पाकर भारतके भाग्यकी कुञ्जी सदाके लिये न सही पर उस समय तो इङ्गलैण्डके हाथोंमें सौंप दी, जिसके प्रतिनिधि लौर्ड कैनिङ्ग वृटिश भारतके पहले शासक हुए। पर हम जिस दिनकी बात कह रहे हैं उस दिन आग बुझ चुकी थी, उसकी राख बहा दी गई थी और चारों ओर सन्नाटा छा गया था। तोप और बन्दूकोंकी गड़गड़ाहट बन्द हो गई थी। सड़कोंके किनारे, पेड़ोंपर टँगे हुए फाँसीके फन्दे उतार लिए गए थे और प्रयागमें ही १ नवम्बर, सन् १८५८ ई० को लौर्ड कैनिङ्गका शानदार दरबार हुआ और कई देशी राजाओंको पदवियाँ बाँटी गईं। अब हिन्दुस्तान फिर चुप होकर बैठ गया, और जैसी इसकी पुरानी आदत है, फिर अपने काम-धन्धेमें लग गया मानो कुछ हुआ ही नहीं।

पर विपत्ति अकेली कभी नहीं आती। सन् १८६०-६१ ई० में पश्चिमोत्तर देश (वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त) पर भगवान् इन्द्र रूठ गए। न बादल उठे, न जल बरसा। त्राहि-त्राहि मच गई। यमुना और सतलजके बीचमें तो लोगोंका और भी बुरा हाल था। एक अन्नका दाना मुँहमें डालनेको नहीं मिला। नौ महीनों तक पैंतीस हज़ार अकाल-पीड़ितोंको सरकारी मदद और अस्सी हज़ारको ख़ैराती मदद मिली लेकिन फिर भी पाँच लाख जीते जागते प्राणी भूखसे तड़प-तड़पकर मर गए। कितना भयानक वह अकाल होगा। बस यही समझिए कि वे हिन्दुस्थानी थे, सभ्य आर्य्योंकी सन्तान थे, मौतके मुँहमें पड़कर भी उन्होंने धर्मको नहीं छोड़ा। वे मरते मर गए पर उन्होंने न तो लूटमार की और न हत्या की। पर हम पूछते हैं, क्या भगवान् इन्द्रके क्रोधके ही कारण यह अकाल पड़ा था? इस सवालका जवाब देना सहल नहीं है। वह क्यों पड़ा था, यह सुनकर जी काँप उठता है।

हिन्दू धर्मकी नाव उस समय आँधी और लहरोंमें पड़ी थी। कई मल्लाह थे, कई पतवार थामे हुए थे। सब अपने-अपने मनसे खे रहे थे। बूढ़ी नावपर बेचारा हिन्दू धर्म बैठा हुआ था। यदि कोई नावको सुधारनेकी सलाह देता था तो वह अपराधी समझा जाता था और नावपरसे ढकेल दिया जाता था। उधर दूसरी नावें थीं जो मज़बूत भले ही न हों, पर देखनेमें अच्छी चमकदार थीं। बस हमारे नौजवान लगे धड़ाम-धड़ाम हिन्दू धर्मकी नावपरसे कूदने और लगे उन नई-नई लुभावनी नावोंपर चढ़ने। यह धर्म ऐसी चारदीवारीसे घिर गया था कि उसको फाँदना कठिन था और फाँदनेके बाद भीतर आना तो बिल्कुल ही असम्भव था। बड़ा कठोर दबदबा था। इसलिये अंग्रेज़ी पढ़े लिखे कुछ लोगोंने हिन्दू धर्मको तिलाञ्जलि दी और अंग्रेज़ी रङ्गमें ऐसे रँगे कि खाना, पीना, उठना, बैठना, बोलना, चालना सब अंग्रेज़ी हो गया। पछुवाँ हवाका ऐसा झोंका आया कि इन नये पौधोंको उड़ा ले गया। इतना ही नहीं बल्कि वे अपने बाप-दादोंके धर्मको कोसने लगे, संस्कृत साहित्यमें दोष निकालने लगे, और आर्य्य संस्कृतिकी जड़ उखाड़नेके लिये कमर कसकर तैयार हो गए।

पाठशालाओं और मकतबोंसे लोग उकता उठे थे। पाधाओं और मौलवियोंके डण्डोंने पहले ही से लोगोंको डरा रक्खा था। अंग्रेज़ी स्कूल खुलते ही लोग उन्हींकी ओर दौड़ पड़े। उस समय एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करके लोग ज़मीनपर पैर न रखते थे। समझते थे कि वे किसी दूसरे लोकके रहनेवाले हैं। सन् १८५९ ई० में कलकत्ते, बम्बई और मद्रासमें विश्वविद्यालय स्थापित हो गए थे। अनेक कौलेज भी खुल चुके थे। उस समय कलकत्तेमें एक हिन्दू कौलेज था जिसमें नामी अध्यापक डिरोज़िया महोदयका बड़ा बोलबाला था। वे पश्चिमीय साहित्य और दर्शनके बड़े विद्वान् थे। उन्होंने कुछ ऐसी घूँटी पिलाई कि हिन्दू विद्यार्थी बड़े मनमाने हो गए, हिन्दू धर्ममें मीनमेख निकालने लगे, यहाँतक कि उन्होंने कौलेजसे 'पार्थिनन' नामका एक पत्र निकाला जिसमें हिन्दू धर्मकी निन्दा भरी रहती थी जिसे पीछे कौलेजके अधिकारियोंने बन्द भी कर दिया। इतना ही नहीं बल्कि वहाँके लड़कोंने अपना खान-पान भी बदल दिया और मांस-मदिराके भक्त बनगए। उनकी यह कुचाल देखकर लोग डर गए और अपने लड़कोंको अंग्रेज़ी पढ़ानेमें सकुचाने लगे। उधर जब सवाल उठा कि शिक्षा देशी भाषामें दी जाय या अंग्रेज़ीमें, तो बड़ी चख़चख़ मची। कोई इधर था, तो कोई उधर। लौर्ड मेकौलेने डङ्केकी चोट कह दिया कि 'योरोपके किसी भी अच्छे पुस्तकालयकी एक आलमारी हिन्दुस्थान और अरबके सारे साहित्यके बराबर है।' एक ही उदाहरणसे वह समय आँखके आगे आ जायगा। माइकेल मधुसूदनदत्त डिरोज़िया महोदयके रङ्गमें रँग गए और जनेऊ उतारकर ईसाको पूजने लगे। उन्होंने सन् १८६१ में मेघनाद-वध काव्य लिखा जिसमें उन्होंने राक्षसों का गुन बखाना है और लक्ष्मणजीका चरित्र बहुत नीचे गिरा दिया है। बस इसीसे उस समयके जवानोंका मन आँक लीजिए।

उस समय तक राजा राममोहनरायका ब्रह्मसमाज फल-फूल चुका था। श्रीरामकृष्ण परमहंसने अपना वेदान्तरस बरसाना आरम्भ कर दिया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती भी अपने गुरु स्वामी विरजानन्दजीको गुरुदक्षिणा देकर वैदिक धर्मका झण्डा लेकर निकल पड़े थे। हिन्दू धर्म बड़े सङ्कटमें था। पर बड़ी कठिनतासे, पुराने डाँड़को थामे हुए वह सभी आँधीके झोंके सहता हुआ भी खड़ा रहा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीने हिन्दुस्तानी दस्तकारी और व्यापारके अँगूठे काट लिए। वह लुञ्ज हुआ पड़ा कराह रहा था। उसमें न तो अपने उठनेका दम रह गया, न कोई उसे सहारा देनेवाला ही था। जब जब उसने उठनेका जतन किया तब तब उसे डण्डा दिखाकर लिटा दिया गया। सन् १८६१ में अमेरिकाको भी लड़ाईकी आग तापनेकी धुन हुई। वहाँके उत्तरी और दक्षिणी सूबोंमें घमासान लड़ाई हुई। लङ्काशायरके रूईके पुतलीघरोंपर इसका गहरा धक्का लगा, क्योंकि उनकी रूई वहींसे आती थी। प्रेमचन्द रायचन्द और प्रसिद्ध पारसी जमशेदजी नसरवानजी ताताने इस औसरसे लाभ उठाया और यहाँसे रूई भेजकर

इक्यावन करोड़ रुपये कमाए। पर पाँच बरसमें ही वह लड़ाई बन्द हो गई और इन लोगोंको बड़ी हानि उठानी पड़ी। पहली जुलाई सन् १८६५ ई० बम्बईके इतिहासमें काला दिन समझा जाता है। हज़ारों धनी निर्धन हो गए और निर्धन भिखारी बन गए। किन्तु फिर तातासे रूईका रोज़गार चलाया और विलायतसे काम सीखकर यहाँ कारख़ाने खोल दिए।

यह थी भारतकी दशा सन् १८६१ में।

अब ज़रा फिर प्रयागमें आइए। वहाँ चौकके दक्खिनकी ओर एक मुहल्ला है जो अब भारतीभवन कहलाता है। उस समय इसका नाम सूर्य्यकुण्ड या लालडिग्गी था। इसी मुहल्लेमें एक नाला था और उसके पास कुछ ब्राह्मणोंके घर खड़े थे, जिनमेंसे कुछ तो वैसे ही थे, जैसे अब भी नए ढङ्गके पक्के मकानोंके बीचमें अपनी पुरानी याद लिए अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए खड़े हैं। उसी मुहल्लेके दक्खिनकी ओर पीपल और बैरका जङ्गल था जहाँ पीलवान लोग अपने हाथियोंको पीपलके पत्तोंका भोज देनेके लिये लाया करते थे। अब भी उन पुराने पीपलके पेड़ोंमेंसे कुछ, नवीन सभ्यताके कुल्हाड़ेसे जान बचाकर अपने भावी विनाशके भयसे काँपते हुए पक्के मकानोंसे घिरे खड़े हैं।

प्रयागमें उस दिन कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था। सञ्झा फूल चुकी थी। लोग दिया-बत्ती करके घरोंमें बैठे आग ताप रहे थे। उसी दिन इसी मुहल्लेमें पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार सम्वत् १९१८, अर्थात् २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को—ठीक उसी दिन जब १८६१ वर्ष पहले बैथलहममें साधु महात्मा ईसा पैदा हुए थे—पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीके घर पराधीन जन्मभूमिका दर्द लेकर, भूखे देशवासियोंकी पीड़ा लेकर, और धर्मका सच्चा प्रकाश लेकर सौभाग्यवती मूनादेवीजीकी गोदमें सन्ध्याको ६ बजकर ५४ मिनटपर एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रक्खा गया मदनमोहन।

इसी कोठरीमें मदनमोहनका जन्म हुआ था। यह उसी रूपमें अबतक सुरक्षित है।

पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी जन्म-कुण्डली।

श्री शुभ विक्रम सं० १९१८ शालिवाहनीय शक १७८३ पौष कृष्ण ८ बुधवार तदनुसार (ता० २५ दिसम्बर, सन् १८६१ ई०) सूर्य्योदयसे इष्टकाल ३०।१७ अर्थात् सायङ्काल ६ बजकर ५४ मिनटपर प्रयाग नगरके अक्षांश २५°।२२′ काशीसे देशान्तर घ. ० प. ११ वि. ४० पर हस्त नक्षत्रके ४ चरणमें श्री पूज्यपाद पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका जन्म हुआ।

प्राचीन मतसे जन्मकुण्डली

राशिकुण्डली

सूर्य्य-सिद्धान्तके अनुसार कुण्डली

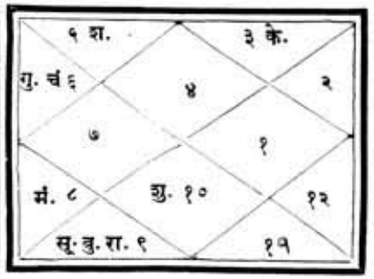

इस कुण्डलीमें ज्यौतिष फलितके अनुसार गुरु चान्द्री योग अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि मनकारक चन्द्रमा, ज्ञानकारक गुरु दोनोंका योग पराक्रम स्थानमें है। इसी कारण धर्ममें दृढ़ता, पराक्रम-शीलता, दृढ़-सङ्कल्पता, आशा-मूलकता, परोपकारिता, पवित्रता तथा निर्भीकता आदि साहसमय कार्य्योंकी पराकाष्ठाका योग होता है, षष्ठमें सूर्य्य राहुका योग प्रबल शत्रुहन्तायोग कारक है, किन्तु मनोऽभिलषित सिद्धिमें बुधके कारण आर्थिक न्यूनता पड़ जाती है तथापि सूर्य्यके प्रबल होनेके कारण बाधाओंके बीचसे लक्ष्यतक पहुँच ही जाना होगा। एक बात विचित्र है जो प्राचीन रीतिके मतानुसार सिद्ध होती है, वह यह कि लोकमान्य तिलककी और इनकी कुण्डली दोनोंमें लग्न गुरुचान्द्रीयोग, मङ्गल, और शत्रुहन्तायोग इनकी बिल्कुल समानता है। केवल लोकमान्य तिलकजीकी कुण्डलीमें गुरु चान्द्रीयोगको न्यून करनेवाला तथा कारावासादि कष्ट विशेष देनेवाला राहुका योग है जो इसमें नहीं है।

इस कुण्डलीमें उच्चगृहमें गुरुचान्द्रीयोग है, इसी कारण जन्मसे ही—

लसल्लक्ष्मीलीलावसतिरनिशं वेदविहित-
स्फुरद्-धर्माचारः स्मितमुखपयोदः प्रतिदिनम्।
अतीव प्रख्यातः स जयति गुणानांजननभू-
र्मदीयोऽयं देशो हरिरिव सदानन्दजनकः॥

इस परम पवित्र मन्त्रका उच्चारण अहर्निश हुआ करता रहेगा।

पण्डित रामव्यास शास्त्री,
ज्यौतिषाध्यापक,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

मल्लई ब्राह्मण

जब तक्षशिलाका ज्ञानदीपक ख़ैबरके दर्रेसे आनेवाली आँधियोंने बुझा दिया और बेचारा नालन्दा अपने ग्रन्थोंका अपूर्व भाण्डार लिए हुए आगमें जल मरा, तब भी हिन्दुस्थानने किस जतन और लगनसे अपनी पुरानी विद्या और अपने ज्ञानको बनाए रक्खा, यह कम अचरजकी बात नहीं है। जब तलवारकी धारपर चोटी और जनेऊ चढ़ाए जा रहे थे, जब विदेशी भालोंकी नोकोंपर कायरोंने अपने प्यारे धर्मको सूली देनेमें भी लाज न की, तब भी हिन्दुस्थानमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं थी जिन्होंने बड़ी साँसत सहकर, दुख भोगकर, मुसीबत झेलकर, राम और कृष्णके नामकी माला अपने कण्ठमें कसकर बाँधे रक्खी। काशी, काश्मीर और मालवामें हिन्दुओंका राज उठ जानेपर भी, उनके मन्दिरोंके कङ्करोंमेंसे मस्जिदकी मीनारें निकल आनेपर भी उन्होंने हिन्दूपनको कसकर पकड़ रक्खा। दाँतोंके बीचमें जीभकी तरह, सैकड़ों बवण्डरों और तूफ़ानोंको झेलकर भी वे सिरपर चुटिया रक्खे, गलेमें एक जनेऊ डाले पुराने प्रकाशकी बिखरी हुई किरणोंको अपने कण्ठमें लिए हुए कहीं-कहीं अब भी दिखाई पड़ जाते हैं। पर बीसवीं सदीकी बिजलीकी रोशनी उन्हें कबतक जीने देगी, यह सोचना पड़ेगा।

चार सौ बरस पहलेकी कथा है। कबीरदासने कहा है—'देस मालवा गहिर गँभीर, पग-पग रोटी डग-डग नीर'। सचमुच यही बात थी। मालवाके खेतोंमें सोना उगता था। सबके दाँत मालवापर गड़े हुए थे। भोज परमारने धारमें संस्कृत विद्याके पढ़नेके लिये एक सरस्वतीभवन नामका विद्यालय खोला था, जिसके खँडहर बड़ी करुणासे आजभी कमाल मौला मस्जिदकी मीनारोंमेंसे झाँक रहे हैं। सब तरहसे मालवा सुखी था, फिर भला उसकी बढ़ती, मतवाले लुटेरोंकी आँखमें क्यों न खटके! पर जबतक हिन्दू राजा एक दूसरेकी बाँह पकड़कर खड़े रहे तबतक बाहरी धक्के उन्हें न हिला सके, किन्तु जिस दिन उन्होंने हाथ छुड़ाकर एक दूसरेपर हाथ छोड़ना शुरू कर दिया उसी दिनसे हिन्दू साम्राज्यमें भूकम्प आने लगे और एक-एक राज्य पके हुए फलके समान टप-टप गिरने लगा। हिन्दुस्थानके इतिहासमें ये नई घटनाएँ नहीं थीं।

पर हम जिस दिनकी याद दिला रहे हैं उस दिन मालवाका भाग्य हिंदू राजाके हाथमें था। बैठे-बैठे एक दिन उन्हें यह सनक सवार हुई कि ब्राह्मणोंके दोनों दलोंको एक पङ्क्तमें बैठाकर भोजन करावें। इनमें एक थे पञ्चगौड़, दूसरे थे पञ्चद्रविड़। थे दोनों ही ब्राह्मण, पर उनमें रोटी-बेटीका व्यौहार न था। वे एक दूसरेको बुरा और नीचा समझते थे, एक दूसरेकी छायासे डरते थे। पर सचमुच बात यह थी कि दोनोंके रहन-सहन, खान-पान, बोल-चालमें आकाश-पातालका अन्तर था। एक सिन्धु-गङ्गाके हरियाले मैदानमें पले थे, दूसरे दक्खिनके पठारमें। इतना ही नहीं बल्कि पञ्चगौड़ोंके साथ भगवान्‌ने भी कुछ पक्षपात किया था। वे सुन्दर थे, सुडौल थे और आर्य्योंकी बपौती पाए हुए थे। फिर भला वे काले द्रविड़ोंके साथ बैठना-उठना और खान-पान कैसे सह सकते थे। निदान इसके विरोधी ब्राह्मण अपना टण्ट-घण्ट बाँधकर अपनी जन्मभूमिको नमस्कार करके जिधर देखा उधर चलते बने, क्योंकि पानीमें रहकर वे मगरसे बैर नहीं करना चाहते थे। सचमुच कैसे नेमके पक्के थे वे ब्राह्मण जिन्होंने अपनी आन और अपनी चाल बचाए रखनेके लिये अपनी जन्मभूमि, अपने बापदादोंकी धन-ज़मीनको लात मार दी। इस जुगके लोग ऐसी बातें सुनकर हँस देंगे और कहेंगे कि ऐसा क्या पागल कुत्तेने इन्हें काटा था कि ज़रासी बातके लिये अपना कारबार सब छोड़कर चल दिए, पर जो अपनी आन और अपने नेमका मोल आँक सकता होगा वह इन ब्राह्मणोंके त्यागकी बड़ाई किए बिना नहीं रहेगा।

इन्दौरके पास एक कोड़िया या कुरहरा नामका गाँव था। वहाँ श्रीगौड़ ब्राह्मणोंकी बड़ी भारी बस्ती थी। उन्हें भी न्यौता मिला था और उन्होंने भी राज छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया। इनके दो-तीन कुटुम्बोंके आठ-दस ब्राह्मण पूरबकी ओर चल दिए। उन दिनों सड़कें नहीं थीं, जो थीं वे भले आदमियोंके लिये न थीं। उन सड़कोंपर चोर डाकुओंका ही राज्य था। उनके दोनों ओर जङ्गल पड़ते थे। जङ्गलोंमें गोंड और भील थे जो प्राण लेते समय किसीका सङ्कोच नहीं करते थे। धनुषपर तीर चढ़ानेके बाद बस वे यही देखते थे कि निशाना ठीक बैठता है या नहीं। पर निशाना कौन बन रहा है यह जाननेकी न तो उन्हें बुद्धि ही थी और न शिक्षा। ये बेचारे कुरहरेके ब्राह्मण भी इन्हीं भीलोंके हाथमें पड़ गए। पर कुछ भगवान्‌की कृपा ही समझनी चाहिए कि ये इन भीलोंके निर्दयी हाथोंसे छूट गए। पर इनका छुटकारा सेंतमें ही नहीं हुआ। उन्हें यह वचन हारना पड़ा कि उनके कुलमें सब मङ्गल कामोंमें भैरवजीकी पूजा होगी और तभीसे पूरबकी ओर आए हुए सभी श्रीगौड़ोंके घरमें सब शुभ कामोंमें कुल-देवताका मन्त्र "कारे गोरे कुरहरेके भैरो" अबतक प्रचलित है। अपने पुरुखोंके दिए हुए वचनोंका जो अबतक पालन हो रहा है, इसका श्रेय श्रीगौड़ोंकी गृह-लक्ष्मियोंको ही दिया जा सकता है। मध्यप्रान्त और मालवासे पूरबकी ओर रहनेवाले सभी श्रीगौड़ ब्राह्मणोंमें इस मन्त्रका प्रचार है।

हाँ, तो ये ब्राह्मण अपने कुरहरा या कोड़िया गाँवसे पूरबकी ओर चले और बढ़ते-बढ़ते पटनातक पहुँच गए। बहुत दिनोंतक मगधकी राजधानीमें डटे रहनेसे इनका कुटुम्ब बढ़ा, यश बढ़ा और उसके साथ-साथ फिर इनका फैलना भी आवश्यक हो गया। बड़ी बात तो यह थी कि ये लोग केवल पूजा-पाठ करनेवाले मामूली बाँभन नहीं थे। इन्होंने कड़ी तपस्या करके विद्याधन कमाया था और जब विद्याके साथ-साथ किसीमें विनय और सदाचार हो तब तो सोनेमें सुगन्ध समझनी चाहिए। बस ये विद्वान्, कर्मनिष्ठ, तपस्वी ब्राह्मण पुजने लगे। एक मिश्रजी, नाम तो पता न चला, इनमेंसे कुछको प्रयागकी ओर ले आए, जिनमेंसे कुछने मिर्ज़ापुरको आबाद किया और कुछ त्रिवेणीपर डेरा जमाकर बैठ गए। मिर्ज़ापुरमें अभीतक इन ब्राह्मणोंके डेढ़ सौ घर होंगे और प्रयागमें तो एक भारती-भवन मुहल्लेमें ही इकट्ठा इनके लगभग पचास घर हैं। नौकरी-चाकरीमें लग जानेके कारण अब तो ये और भी जगह फैल गए हैं। इनमेंसे कुछ चतुर्वेदी (चौबे), कुछ दूबे और कुछ व्यास कहलाते हैं।

मिर्ज़ापुरमें जो श्रीगौड़ ब्राह्मण पहुँचे उनमेंसे तीन घरानोंने अपनी बँभनई छोड़कर व्यापारपर ध्यान दिया। लक्ष्मी इनपर प्रसन्न हो गईं, और इन लोगोंके घरमें सोना बरसने लगा। पर प्रयागमें जो ब्राह्मण गए वे विद्वान् भक्त ब्राह्मण थे, कथा-वार्त्ता कहते थे, विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे और भगवद्भजन करते थे। सन्तोष ही उनका धन था, व्यापारमें रुचि नहीं थी, विनयके पुतले थे और दूसरेके आगे हाथ फैलानेका पाठ सीखा न था, इसलिये लक्ष्मी तो इनके घर कभी न आईं, हाँ सरस्वतीने इनके घरमें अपना मन्दिर बना लिया। ये मालवासे आए थे इसलिये ये लोग मल्लई या मलैया ब्राह्मण कहलाने लगे।

बड़ोंका प्रसाद

प्रयागके श्रीगौड़ ब्राह्मणोंमें भारद्वाज गोत्री चतुर्वेदी श्रीविष्णु प्रसादके पुत्र पण्डित प्रेमधरजी 'परमभागवत' हो गए हैं। तड़के पौ फटनेसे पहले अन्धेरे मुहँ उठकर गङ्गास्नानको जाना और आना, दिन-रात राधाकृष्णकी पूजा-उपासना करना ही इनका व्यवसाय था। कहना-सुनना, बोल-चाल, लेन-देन उनका सब व्यौहार कन्हैयासे ही था। कभी कपूर जलाकर वे अपने कन्हैयाकी आरती करते तो कभी मस्त होकर भगवानके सामने नाचने लगते थे—कभी माला लेकर राधाकृष्ण जपते तो कभी भावमें डूबकर स्तोत्रपाठ करते। राधाकृष्ण ही उनके सब कुछ थे। उनके कन्हैयाकी मूर्त्ति कोई मामूली नहीं है। दो फ़ीट ऊँची, साँवले रङ्गकी ऐसी सुन्दर मूर्त्ति तो गोकुल-वृन्दावनमें भी न होगी। सचमुच कृष्णकी महिमा वही समझ सकता है जो उनके रङ्गमें रँग गया हो।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै श्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्वल होइ॥

एक दिन किसी दुष्टने यह मूर्त्ति ले जाकर कूएँमें फेंक दी। पण्डित प्रेमधरजी लौटे तो देखा मूर्त्ति ग़ायब। पछाड़ खाकर गिर गए, बच्चोंकी तरह रोने लगे और खाना-पीना बन्दकर मनमारे बैठ गए, जैसे उनका सर्वस्व लुट गया हो। सचमुच कृष्ण उनके सर्वस्व थे भी तो। उसी मूर्त्तिके सहारे तो उनका जीवन था और उनकी जीवनचर्य्या थी। वही नहीं रही तो फिर संसारमें उनका रहा ही क्या। जब तीन दिनतक निराहार बीत गए तो रातको भगवान्‌ने सपना दिया कि 'हम कूएँमें पड़े हैं निकाल लो।' आख़िर कूएँमेंसे मूर्त्ति निकली तब कहीं प्रेमधरजीने जलपान किया। ऐसे अनन्य भक्त थे वे राधाकृष्णके।

पण्डित प्रेमधरजीके श्री राधाकृष्णकी मूर्त्ति।

चारों ओर जङ्गल तो था ही, एक दिन एक शेरकी शामत आई। वह तड़के निकला और उनके मुहल्लेमें नालेके पासके एक मकानमें घुसकर बैठ गया। पण्डित प्रेमधरजी जब गङ्गास्नानसे लौटे तो देखा कि एक भीड़ जमा है। किसी की हिम्मत न होती थी कि मकानके भीतर पैर रक्खे।

लोगोंके लाख रोकने और मना करनेपर भी वे अपना कमण्डलु लिए हुए निडर होकर भीतर पहुँचे तो देखा कि एक बड़ासा सिंह बड़े रौबसे वहाँ चुपचाप बैठा हुआ है। इन्हें देखकर वह न तो ग़ुर्राया और न झपटा। पण्डित प्रेमधरजीकी सौम्य सात्त्विक मूर्त्तिके आगे उसकी पशुता ठण्ढी पड़ गई। वह शेर सचमुच बिल्ली बन गया। प्रेमधरजी आगे बढ़े और उसके खुले मुँहमें गङ्गाजल डाल दिया मानो वह सिंह अपनी मुक्तिकी लालसासे ही वहाँ आया हो। उसे गङ्गाजल देकर प्रेमधरजी बाहर निकले। फिर क्या था। उन्हें जीता-जागता लौटते देख लोगोंके हौसले बढ़ गए और बात-की-बातमें बाहर इकट्ठे हुए लोगोंने लाठियोंसे उस सिंहका कचूमर निकाल दिया।

पण्डित प्रेमधरजी कितने बड़े भक्त थे यह तो एक इसी बातसे साफ़ हो जाती है कि उन्होंने १०८ दिनमें भागवतका १०८ बार पारायण किया था। पण्डित प्रेमधरजीने चौरासी बरसकी बड़ी उमर पाई। संसारसे विदा लेनेके दिन उन्होंने अपने सब कुटुम्बियोंको आदेश दिया कि हमें गङ्गाके किनारे ले चलो। सारा परिवार प्रेमधरजीको लेकर गङ्गातटपर जा पहुँचा। वहाँ स्नान-ध्यान करके प्रेमधरजी पद्मासन लगाकर बैठ गए। थोड़ी ही देर बाद उस वृद्ध तपस्वी शरीरको चिताकी अग्निमें प्रज्वलित होनेके लिये छोड़कर उनकी दिव्य आत्मा सदाके लिये राधाकृष्णमें लीन हो गई।

पण्डित प्रेमधरजी पाँच भाई थे। पण्डित साधोधर अद्वितीय वैयाकरणी थे, पण्डित मुरलीधर साधु हो गए, पण्डित वंशीधर संस्कृत साहित्यके धुरन्धर पण्डित थे, पण्डित बालाधर अद्वितीय ज्योतिषी थे। पण्डित प्रेमधरजीके चार सन्तान हुईं—लालजी, बच्चूलालजी, गदाधरजी और ब्रजनाथजी।

पण्डित ब्रजनाथ चतुर्वेदी अपने परम भागवत पिताके सुयोग्य पुत्र निकले। अपने पिताजीसे उन्होंने भव्य सुन्दर शरीर पाया, विमल बुद्धि पाई और राधाकृष्णकी अनन्य भक्ति पाई। और उनके पिताके पास था ही क्या। सदाचारी ब्राह्मण अपनी सन्तानको इससे अधिक और दे ही क्या सकता है? इस महानिधिके साथ-साथ पण्डित ब्रजनाथजीने संस्कृत विद्याको बड़ी मेहनत और लगनसे अपनाया और संस्कृतके अच्छे पण्डित हो गए। सदाचार, भगवद्भक्ति और विद्या यही उनका धन था, और एक मकान था वह भी बहुत बड़ा नहीं कहा जा सकता, जिसमें वे अपने चार भाइयोंके परिवारके साथ कोठरियाँ बाँटकर रहते थे।

पण्डित ब्रजनाथजीका मकान। इसीमें मदनमोहनने जन्म लिया था।

पण्डित ब्रजनाथजीने अपना कुछ बचपन ननिहालमें ही बिताया और सच पूछिए तो संस्कृत विद्याका कुछ धन उन्होंने ननिहालसे भी पाया था। चौबीस-पचीस वर्षकी नई जवानीमें ही वे व्यास बन गए और भागवतकी कथा कहनी प्रारम्भ की। सुडौल

परम भागवत पण्डित प्रेमधर चतुर्वेदीके पुत्र पण्डित व्रजनाथ व्यासजी। मदनमोहन इन्हींके तीसरे पुत्र हैं।

सुन्दर देहके साथ-साथ उन्हें मधुर कण्ठ भी मिला था। जब बोलते थे तो मानो मिश्री घोलते थे। एक तो मीठी बोली और फिर व्रजभाषा—कोयल और वसन्त—बस सुननेवाले लट्टू हो जाते थे। रीवाँ, दरभङ्गा और काशीके महाराजाओंने उनका बड़ा सम्मान किया। कितने ही रजवाड़े इन्हें गुरु मान चुके थे। वे वंशी बजाकर जब गाते थे—

गावो मधुरा गोपा मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं कलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं॥
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं वचनं मधुरं चरितं मधुरं।
वलितं मधुरं चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं दलितं मधुरं॥
अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं वसनं मधुरं।
हसितं मधुरं कलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं॥

—तो मधुका ऐसा सोता बहता था कि श्रोतागण मन्त्र-मुग्ध होकर नाच उठते थे। उनकी कथा भावमय होती थी—कभी हँसते थे, कभी रोते थे—कभी आवेश था तो कभी शान्ति थी। जान पड़ता था कि नाट्य-शास्त्रके सारे रस पण्डित व्रजनाथ व्यासजीके रूपमें साकार होकर विराजमान हैं। नये-नये दृष्टान्तोंसे सजाकर शान्त, गम्भीर, तन्मय भावसे जब वे भगवान्‌की कथाका रस बाँटते थे उसका वर्णन भला कौन कर सकता है—गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।

वे मीठा तो बोलते ही थे, पर सन्तोषी भी पूरे थे। उन्होंने कभी किसीके आगे हाथ नहीं फैलाया। जो कुछ कथापर चढ़ गया उसे तो स्वीकार कर लिया, पर किसीसे दान नहीं लिया। मृदुभाषिताने क्रोधको और सन्तोषने लोभको उनके पास फटकने न दिया और इसीलिये इतने बड़े परिवारको लेकर भी ये सुखी रहे। वे पण्डिताऊ ढङ्गका कलीदार अङ्गा पहनते और चौगोशिया टोपी या पगड़ी सिरपर रखते थे। गलेमें एक दुपट्टा पड़ा रहता, जिसपर जाड़ेके दिनोंमें एक दुशाला डाल लिया करते थे। बाहरसे आनेके बाद ये बाहरी कपड़े उतारकर एक ओर रख दिया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि ये पाठ कर रहे थे। अचानक एक अंग्रेज़ उधरसे आ निकला और उसने इनसे प्रश्न किया। ये मौन भावसे पाठ करते रहे, उसका कुछ उत्तर न दिया। इसपर उसने इन्हें बेंतसे छू दिया। ये तत्काल घर वापस आए और गोबर मलकर सचैल स्नान करके फिर पञ्चगव्य, पञ्चामृत ग्रहण करके अपनी शुद्धि की। इतने नेमके पक्के थे पण्डित व्रजनाथजी।

सौभाग्यकी वर्षा जब होने लगती है तो वह भरपूर होती है। पण्डित व्रजनाथ व्यासजीका विवाह सहजादपुरमें हुआ। सौभाग्यसे इनकी धर्मपत्नी श्रीमती मूनाजी बड़ी सरल और कोमल हृदयवाली मिलीं। अड़ोस-पड़ोसकी जो सेवा बन पड़े कर देना और सबसे प्रेमसे बोलकर बड़ी शान्तिसे सारे घर-भरका काम देखना यही उनका काम था। वे किसीको दुखी न देख सकती थीं और इसीलिये उनकी उदारता निस्सङ्कोच भावसे हर घड़ी सेवाका अवसर ढूँढती रहती थी। उन्होंने किसीको निराश न किया। मुहल्ले भरके बच्चे उनके घरके बच्चे बन गए थे। सबको प्यारसे बुलाना, बैठाना, पुचकारना, कुछ खिला-पिला देना—बस बच्चे अपनी-अपनी माँ भूल गए थे।

पण्डित व्रजनाथ व्यासजीकी धर्मपत्नी तथा मदन मोहनकी माता श्रीमती मूना देवीजी

सचमुच ऐसी माँ पानेके लिये बड़ा भाग होना चाहिए। पण्डित व्रजनाथजी भी जो कुछ कथामें पाते थे सब उन्हें सौंप देते थे और सारी गृहस्थी वे ही सँभालती थीं।

पण्डित व्रजनाथजीको चौवन बरसकी अवस्थामें रोगने घर दबाया और ऐसा पकड़ा कि फिर वे बाहर न जा सके। यद्यपि पाँच महीनेमें ही इन्होंने रोगसे छुट्टी ले ली, किन्तु पुरानी शक्ति न वापस आ सकी। तबसे लेकर सतहत्तर वर्षकी अवस्थातक ये बराबर भागवत, रामायण आदि धर्मग्रन्थोंका अध्ययन और उनकी मनोहर व्याख्या करते रहे। उन्होंने एक भक्तिप्रतिपादक 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ भी लिखा था, जो सन् १९०६ ई० में अभ्युदय प्रेसद्वारा उनके तीसरे पुत्र मदनमोहनने प्रकाशित कराया। क़रीब साठ वर्षकी अवस्थामें आपकी आँख ख़राब हो गई। लखनऊके कर्नल एण्डरसनने उसका ऑपरेशन किया। कर्नलने कहा कि 'आजतक इतना अच्छा ऑपरेशन किसीका नहीं हुआ। सावधानीसे रहना, हिलना-डोलना मत।' दो घण्टे बाद प्यास लगी। आप उठकर पानी पीना चाहते थे पर अपने पुत्र श्यामसुन्दरके रोकनेपर आपने पड़े-पड़े पानी पी लिया। पर उनकी धार्मिक भावना सन्ध्याको खटियापर पड़े हुए शौच करना न सह सकी, अतः वे उठकर गए और नित्य कर्म किया और थोड़ीसी नित्यके अनुसार भाँग भी ली। यह सब कुछ होते हुए भी उनकी आँख ठीक उतरी।

डाक्टरके मना करनेपर भी उन्होंने अपना पढ़ना-लिखना न छोड़ा। पिछले दिनोंमें उनकी धारणाशक्ति कम हो गई थी। उन्हें यह भी न याद रहता था कि भोजन किया है या नहीं। सुख और दुःख दोनों उनके लिये समान हो गए। अपने बड़े पुत्रकी मृत्यु सुनकर वे 'हरिइच्छा' कहकर रह गए। उनके मुखपर किसी प्रकारका शोक या दुःख नहीं दिखाई दिया। अन्तमें सन् १९१० ई० में सतहत्तर वर्षकी अवस्थामें उन्होंने भी गोलोककी शरण ली।

भगवान्‌की भक्तिका प्रसाद यदि सचमुच किसीको प्रत्यक्ष देखना हो तो वह मालवीय परिवारको देखे। बड़ा भारी परिवार—पुत्र-पुत्रियाँ, नाती-पोते—घरमें दुधारू गौएँ—सभी प्रकारका सुख है। जिसे कहते हैं—'दूधों नहाओ पूतों फलो' वह आशीर्वाद व्रजनाथजीको साक्षात् रूपसे मिल गया था।

पण्डित व्रजनाथजीके छः पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। क्रमसे उनके नाम हैं:—लक्ष्मीनारायण, सुखदेई, जयकृष्ण, सुभद्रा, मदनमोहन, श्यामसुन्दर, मनोहर, और बिहारीलाल।

सबसे बड़े पुत्र लक्ष्मीनारायणजीने महाजनीकी शिक्षा पाई थी। कुछ दिन प्रयागके लाला मनोहरदासके यहाँ गुमास्ता रहे। थोड़े दिन बाद इसे छोड़कर अपना स्वतन्त्र आढ़तका काम करते थे और अन्ततक यही

करते रहे। एक्यावन वर्षकी अवस्थामें बद्रीनाथ-यात्राको गए। वहाँसे आनेपर 'पर्वत संग्रहणी' हो गई और उसीमें तीन-चार महीनेके बाद आपका शरीर-लाभ हो गया।

जयकृष्णजी थोड़ी संस्कृत और अंग्रेज़ी जानते थे। रेलवे डाक-विभागमें नौकर थे। इनको बचपनसे ही कसरतका शौक़ था। कुश्ती बहुत अच्छी लड़ते थे। सङ्गीतमें उनकी बड़ी रुचि थी। सितार बहुत अच्छा बजाते थे। कहते हैं कि सितारमें इनका हाथ इतना तैयार था कि किसीने कुछ जादू-टोना कर दिया था, जिससे आपको हाथमें इतना कष्ट हुआ था कि दिनरात नींद नहीं आया करती थी और चिल्लाया करते थे। क़रीब बीस दिनके बाद भिक्षा माँगते

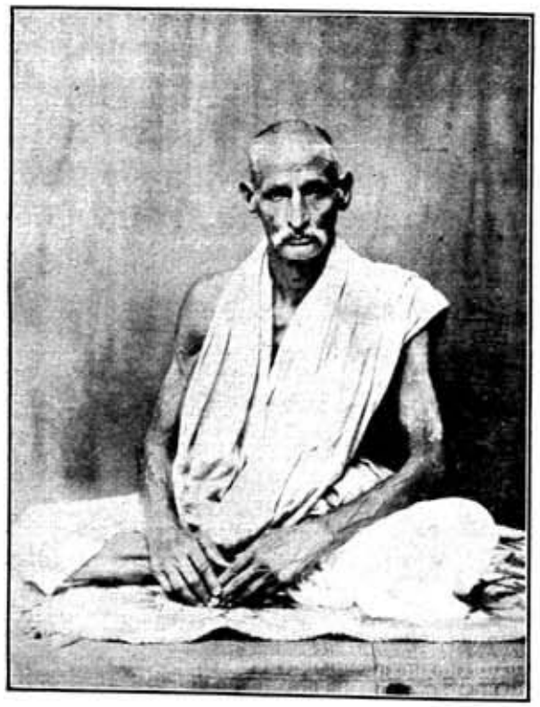

पण्डित मदनमोहन मालवीयके छोटे भाई श्रीश्यामसुन्दरजी जो अब भी उसी पुराने मकानमें रहते हैं

हुए एक फ़कीर आया और उसने पूजा आदि करके उसी दिन आपको अच्छा कर दिया था। क़रीब एक्यावन वर्षकी अवस्थामें आपका भी शरीरान्त हुआ।

श्यामसुन्दरजीने पहले धर्मज्ञानोपदेश पाठशालामें संस्कृत शिक्षा पाई। बादमें थोड़ी अंग्रेज़ी पढ़ी। पच्चीस वर्षकी अवस्थाके लगभग आपने बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यूके दफ़्तरमें नौकरी करना प्रारम्भ किया। सन् १९२१ ई० में पेन्शन ली, तबसे पूजा-पाठ करते और सात्त्विक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

मनोहरलालने भी थोड़ी संस्कृत और अंग्रेज़ीकी शिक्षा पाई थी। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और होनहार थे। विवाह होनेके थोड़े ही दिन बाद उन्होंने न जाने किस कारण अफ़ीम खा ली। डाक्टर आए। पिचकारी देकर विष निकाला गया। होशमें लानेके सब उपाय हुए। विष रक्तमें भिद चुका था। मनोहरलाल अपनी नव-विवाहिता वधूको अकेली छोड़कर दूसरे लोकको चले गए। पुलीस पहुँची। मृत्यु-परीक्षाके लिये लाश माँगी गई। उस समय सरकारी डाक्टर महेन्द्रनाथ ओहदेदारने कहा—'मिट्टी हमारे ही पास तो परीक्षाके लिये भेजोगे। मैंने परीक्षा कर ली है। मैं सार्टीफ़िकेट देता हूँ कि अफ़ीम खानेसे मृत्यु हुई है।' तब पुलीस हटी और दाह-संस्कार हुआ। इन भाइयोंमें यही एक जवान मौत हुई थी।

बिहारीलालने भी संस्कृत और अंग्रेज़ी पढ़ी थी, पर व्यापारकी ओर इनकी अधिक प्रवृत्ति थी। वे ठीकेदारी किया करते थे और रेलवेके प्रधान ठीकेदारोंमेंसे थे। संग्रहणी होनेके कारण सन् १९२१ ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

बड़ी बहनका विवाह मिर्ज़ापुरमें हुआ था। ४८ वर्षकी अवस्था (सन् १९०३) में आपका शरीरान्त हुआ। आपके अनेक सन्तानें हुईं, पर कोई जीवित न रहीं।

छोटी बहनको छोटी अवस्थासे ही वैधव्य-दुःख भोगना पड़ा।

मदनमोहनने धर्मात्मा परम भागवत दादा और पिताका अमर प्रसाद पाकर, उनकी धार्मिक छाया लेकर, उनके सम्पूर्ण गुणोंकी बपौती पाकर जन्म लिया था। पितामह और पिताकी भगवद्-भक्तिका मदनमोहनपर कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा था और इसलिये आज सारा राष्ट्र पण्डित प्रेमधर और पण्डित ब्रजनाथ व्यासके अमर पवित्र गुणोंके साक्षात् मूर्त्तिमान् स्वरूप मदनमोहनके चिरजीवनकी कामनासे हाथोंमें फूल-माला लिए भगवान्से मङ्गल कामना करता है और सारे देशवासी बड़ी आशा लगाए उस धवल मूर्त्तिकी ओर ताक रहे हैं मानो उनका सारा भविष्य, उनका सारा सुख, उनकी सारी अभिलाषाएँ उसी एक धवल देहमें छिपी हुई हैं। धन्य हैं वे पुत्र जिन्हें पण्डित ब्रजनाथजी जैसे पिता और श्रीमती मूनादेवीजी जैसी माता मिलें और धन्य हैं वे माता-पिता जिन्हें मदनमोहन जैसा पुत्र मिले।

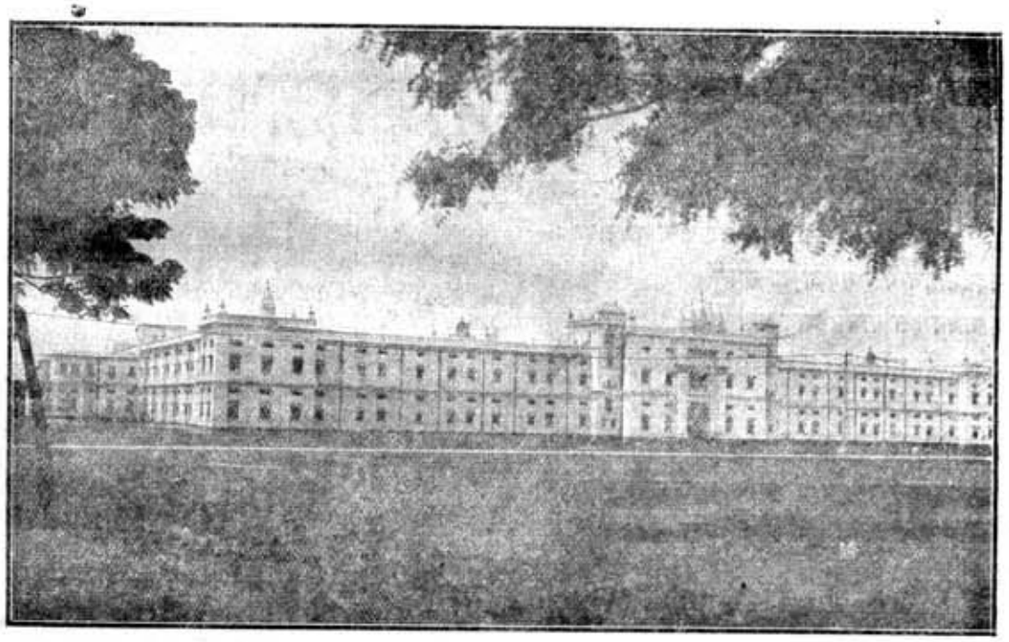

होनहार बिरवा

मदनमोहनके जीवनमें एक बार झाँक लेनेके बाद कोई भी यह माननेमें न हिचकेगा कि 'मदनमोहन' नाम भी किसी दैवी प्रेरणाका फल है। परम भागवत वैष्णव परिवारमें भगवान् कृष्णके नामको छोड़कर भला और कोई नाम टिकने ही क्यों लगा, किन्तु मदनमोहन 'किसी' के भेजे हुए आए थे और इसी लिये इन्हें बड़ा मीठा और कोमल नाम मिला, वैसा ही कोमल जैसा मक्खन और वैसा ही मीठा जैसी मिश्री।

'मदनमोहन'—एक बार मुँहसे मदनमोहन तो कहिए, जान पड़ेगा कि आपकी रसना पवित्र हो गई है, जी हल्का हो गया है और मुँहकी कड़वाहट जाती रही है। एक उर्दू शायरने एक बार सच कहा था :—

है मदनमोहन मेरी मनका का मज़मूँ।
क्या अजब इस नाममें जादू भरा है॥

जान पड़ता है पण्डित ब्रजनाथ व्यासजीकी 'कलितं मधुरम्' की धारामें यह नाम भी आ गया होगा, जिसको लेकर उन्होंने अपने पुत्रकी प्रतिष्ठा की।

माताकी गोदसे हँस-खेलकर बालक मदनमोहनने अपने पैरोंपर खड़ा होना शुरू किया और धीरे-धीरे बालक बड़ा होने लगा। इनके परिवारकी चाल है कि जब घरमें कोई ब्याह पड़ता है तो 'माय' बैठती हैं और सभी बालकोंका मुण्डन हो जाता है। इसी कारण कभी दो वर्षपर, कभी छः महीनेपर या कभी-कभी तीन महीनेमें ही बालक मुँड़ जाते हैं। बस, ऐसे ही किसी अवसरपर मदनमोहनका भी मुण्डन हो गया होगा।

पण्डित ब्रजनाथजीने अपने पुत्रोंको शिक्षा देनेमें वह भूल नहीं की थी जो आजकल अधिकतर लोग किया करते हैं। पुराने पण्डितोंके समान उन्होंने अपने बच्चोंको पहले घरपर ही संस्कृत पढ़ाई और

ऊपर पूज्य मालवीयजी महाराजके प्रथम विद्या-गुरु श्रीहरदेवजीकी श्रीमद्भागवतकी पुस्तक है और नीचे उनके ठाकुरजी, उनकी चरणपादुका, शङ्खादि हैं। यह सब सामग्री उनकी पाठशालामें ही रक्खी है, जहाँपर मदनमोहनने अध्ययन किया है।

शिष्टाचारकी सीख दी और तब कहीं उन्हें घरसे बाहर पैर रखने दिया। उसका फल यह हुआ कि बाहरी हवा इनपर कुछ असर न कर सकी। आजकलके माँ-बाप अपने बच्चोंकी देखरेख बेगार समझते हैं और उनको, जितनी जल्दी होता है, आँख मूँदकर किसी अनाड़ी अध्यापक या किसी स्कूलके हवाले कर देते हैं, जहाँसे निकलकर वे परीक्षा भले ही पास कर लेंवें, पर अपना सब कुछ गँवा आते हैं। यह बात समझानेकी नहीं है। सब इस बातको जानते हैं, पर जान-बूझकर अपने बच्चोंको भट्टीमें झोंकनेमें सङ्कोच नहीं करते। हमारे पुरुखा लोग इस बातको भली भाँति समझते थे कि पाठशाला या स्कूलोंमें जाकर बहुत तरहकी सङ्गत मिलती है। उनमें सभी तो पारस होते नहीं, इसलिये अपने बच्चोंको ऐसा पक्का बनाकर भेजते थे कि दूसरा रङ्ग चढ़ने ही न पावे। मदनमोहनने घरपर ही पढ़ना सीखा, नागरी अक्षर सीखे और फिर संस्कृत पढ़ना सीखा। अपने दादा और अपने पिताजीसे नित्य सुनते-सुनते बहुतसे श्लोक, भजन, स्तोत्र और गीत मदनमोहनको याद हो गए थे। अपने दादा और पिताकी असीस पाकर मदनमोहन

इलाहाबाद ज़िला-स्कूल जिसमें अब म्युनिसिपल आफ़िस है।

पण्डित हरदेवजीकी धर्मज्ञानोपदेश पाठशालामें पढ़ने बैठाए गए। वह पाठशाला अब भी भारती-भवन मुहल्लेमें पूज्य मालवीयजीके मकानके दक्खिनकी ओर है और पण्डित हरदेवजीकी पाठशालाके नामसे ही प्रसिद्ध है।

कुछ दिन वहाँ पढ़नेके बाद वे विद्याधर्मप्रवर्द्धिनी सभाकी पाठशालामें भेजे गए। उसके सर्वेसर्वा थे पण्डित देवकीनन्दनजी। वे मदनमोहनको माघ मेलेपर ले जाया करते थे और एक मोढ़ेपर खड़ा करके व्याख्यान दिलाया करते थे। सात बरसका बालक सारे राष्ट्रकी नौका खेनेका पहला पाठ त्रिवेणी सङ्गमपर सीखने लगा, जहाँ विश्व भरकी तीनों पवित्र धाराएँ आकर मिल गई हैं।

अब नाँव पक्की हो गई थी। नौ वर्षकी अवस्था हुई। पिताजीने बालकको बटु बना दिया। पिताजी ही प्रथम आचार्य्य बने, उन्होंने ही सावित्री मन्त्र दिया। कौपीन धारण करके हाथमें पलाश-दण्ड लेकर, कन्धेपर मृगछाला डालकर, हाथमें झोली लेकर, मदनमोहनने माससे जाकर कहा—'भवति भिक्षां मे देहि'। उस समय कौन जानता था कि कौपीन उतार देनेपर भी, मृगछाला और दण्ड फेंक देनेपर भी एक दिन यही बटु बहुत बड़ी झोली लेकर द्वार-द्वार, नगर-नगर सारे राष्ट्रके लिये भिक्षा माँगेगा और 'संसारका

सबसे बड़ा भिखारी' कहलायगा। सचमुच किसे विश्वास होगा कि उस 'भवति भिक्षां मे देहि' के पीछे कितने निर्धन, दीन विद्यार्थियोंकी विवशतासे भरी हुई करुण पुकार छिपी हुई थी? अब मदनमोहन ब्राह्मण बन गए।

बहुतसे दब्बू बालक स्कूल या पाठशालाका नाम सुनकर रो देते हैं, किसीके सिरमें दर्द होने लगता है और कोई-कोई तो सचमुच बीमार हो जाते हैं। पर मदनमोहन ऐसा बालक नहीं था। रोज़ सुबह नौ और दस बजेके बीच, लड़के बग़लमें पोथी दबाए हँसते-कूदते स्कूल जाते थे, नई-नई बातें करते थे, इतिहास और भूगोल, गणित और चित्रकलाका ज़िक्र किया करते थे। मदनमोहनके मनमें भी लालसा हुई कि हम भी क्यों न अंग्रेज़ी पढ़ें? पर स्कूलमें फ़ीस लगती थी। जिस परिवारमें दस मुँहको खिलाना पड़ता हो और कमानेवाला एक हो और वह भी ऐसा हो जो किसीके सामने हाथ न फैलाता हो, जो कथापर चढ़ जाय उसीपर सन्तोष कर लेता हो और जिसे पाँच रुपए महीनेकी भी आमदनी न हो, वहाँ स्कूलकी फ़ीस और किताबोंके लिये दाम कहाँसे आवे? पहले सरस्वतीजी दीनोंकी कुटियामें रूखी-सूखी खाकर ही प्रसन्न हो जाया करती थीं, पर आजकलकी सरस्वतीजी बिना पैसे बात नहीं करतीं। ग़रीबके घर आनेमें उन्हें अब सङ्कोच होता है। जान पड़ता है उनपर भी कुछ पच्छिमका असर हो चला है।

पर पण्डित ब्रजनाथजीने अपने होनहार बच्चेका दिल छोटा न होने दिया और पेट काटकर भी उसे अंग्रेज़ी पढ़ने भेज दिया। जिसके दिन सीधेपर ही बीतते हों उस दीन ब्राह्मण परिवारपर कितना भार पड़ा होगा, इसे वे ही लोग समझ सकते हैं जो ये मुसीबतें झेल चुके हैं! मदनमोहन इलाहाबाद ज़िला स्कूलमें उस समयकी दसवीं कक्षा (आजकलकी तीसरी कक्षा) में भर्ती हो गए। स्कूलमें समयसे जाना पड़ता था, पर मदनमोहनको अक्सर देर हो जाया करती थी। इतने बड़े परिवारमें ठीक समयसे भोजन कैसे बन सकता था और फिर ठाकुरजीको भोग लगाए बिना कोई भोजन करे भी कैसे। बेचारे मदनमोहनको बासी रोटी मट्ठेके साथ खाकर स्कूल जाना पड़ता था। कितनी बड़ी तपस्या थी। प्रयागके चौकमें घण्टाघरके पीछे जिस भवनमें आजकल म्युनिसिपैलिटीका दफ़्तर है, उसीमें पहले ज़िला-स्कूल लगता था। एक अंग्रेज़ गार्डन साहब उसके हेडमास्टर थे। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने स्कूलमें हिज्जे करने, अंग्रेज़ीका उच्चारण करने और सुन्दर लिखनेमें बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली और यह सुन्दर शुद्ध बोलने और सुन्दर लिखनेका अभ्यास उनका आजतक बना हुआ है।

Benares Hindu University.

I appeal to every Indian Prince and peasant to contribute his or her quota to the building up of this National Temple of Learning. I hope they will respond generously to this appeal and help the University to continue its vigorous growth so that it may soon rank among the best Universities of the world and become in an ever-increasing measure an object of pride to the Motherland and in a special degree to the great community whose bounden name it bears.

Madan Mohan Malaviya

Kashi.
17th June 1916.

पूज्य मालवीयजीके अंग्रेजी अक्षर कितने साफ़ और समान हैं।

ये पढ़नेमें बहुत मन लगाते थे। गणितमें ये कमज़ोर थे और शायद संसारके सभी महापुरुष गणितमें कमज़ोर होते हैं, पर बादको परिश्रम करके इन्होंने अपनी कमी पूरी कर ली। इनका मकान दस बारह प्राणियोंके लिये छोटा ही था। घरपर पढ़नेकी सुविधा नहीं थी। बाल-बच्चोंके घरमें कोई

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन सेवानार्हः सदा भव॥

मदन मोहन मालवीय

हिन्दी अक्षर भी बड़े साफ़ और एक विशेष बनावटके लिखते हैं जिनमें सुन्दरताके साथ-साथ स्पष्टता कितनी है।

चाहे कि बैठकर, मन लगाकर पढ़ ले, यह कैसे हो सकता है। कोई रो रहा है, कोई चिल्ला रहा है, कोई गा रहा है, कोई खेल रहा है—सब अपनी-अपनी मौजमें हैं। फिर भला वहाँ पढ़ाई कैसे हो? इनके मकानके पास ही थोड़ी दूरपर सोहनलालके बाग़में इनके एक साथी गङ्गाप्रसाद रहते थे। वहाँ तीन-चार बेरके पेड़ थे, एक कुआँ था और एक कच्ची अटारी थी। बस जहाँ सञ्झा हुई कि ये वहीं लालटेन और पोथी लेकर पहुँच जाते थे और वहीं पढ़ा करते थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि जितनी पढ़ाई होनी चाहिए थी उतनी हुई; पर हाँ, घरसे तो अधिक ही होती थी। क्योंकि जहाँ दो विद्यार्थी साथ पढ़ते हों वहाँ आधी गप होती है और आधी पढ़ाई होती है। यही बात वहाँ भी थी। मदनमोहन बात करनेमें तो एक ही थे। इन्हें कोई साथी मिलने भरकी देर थी, फिर तो कोई भी विषय प्रारम्भ होनेके बाद समाप्त थोड़े ही होता था। रातको वहीं पढ़ते थे और वहीं सोते थे। सुबह उठकर घर चले आया करते थे।

पर इससे यह न समझिए कि मदनमोहन बड़ा पढ़ाकू और पोथीका कीड़ा था। वह अव्वल दर्जेका शरारती, बड़ा खिलाड़ी और अत्यन्त चञ्चल था। स्कूलसे आते ही किताब कहीं फेंकी, जूते कहीं फेंके, कपड़े कहीं फेंके, वह गया, वह गया, मदनमोहन घरसे बाहर। कभी देखो तो गुल्ली-डण्डा खेल रहे हैं, तो किसी रोज़ कबड्डी हो रही है। कसरत ये खूब किया करते थे, रोज़ अखाड़ेमें मुद्गर घुमाते या डण्ड लगाते थे। अब भी इस पचहत्तर वर्षकी अवस्थामें भी इन्हें कसरत करते देखकर किसे आश्चर्य्य न होगा?

मदनमोहनका एक गुट्ट था और वे उसके अगुआ थे। स्कूलसे लौटते हुए अक्सर किसी दूसरे दलसे मुठभेड़ हो जाती थी। कभी-कभी तो ज़बानी युद्धतक ही बात रह जाती थी, कभी-कभी मामला बढ़ जाता था। हाथापाईकी भी नौबत आ जाती थी। पर ये पीछे नहीं हटते थे, डटकर लड़नेवाले थे। ऐसे ब्राह्मण नहीं थे जो मैदान छोड़कर भाग जायँ। होलीके दिनोंमें इनकी शरारत देखने लायक़ होती थी। कई दिन पहलेसे रङ्ग घोले जाते थे, पिचकारियोंमें गिट्टी बाँधी जाती, राहचलतोंपर किधरसे ठीक रङ्ग छोड़ा जा सकता है, यह सब बातें साध ली जाती थीं। मौक़े ठीक कर लिए जाते थे और लालडिग्गीमें होलीके तीन चार दिन पहलेसे ही पिचकारियाँ चलने लगती थीं। पिचकारी भरे सब ताकमें खड़े रहते थे। वह लो, सामनेसे पण्डितजी आ रहे हैं—पिच—पण्डितजी तर हो गए। बहुत बिगड़े। नहा-धोकर आए थे, सब भ्रष्ट कर दिया। इधर इन्होंने क़हक़हा लगाया। कुछ पूछिए मत। भले आदमियोंकी आफ़त थी।

जो उधरसे निकले उसकी शामत ही समझो। बहुतसे छैले, ढाकेका चुन्नटदार कुर्त्ता और चौगोशिया टोपी देकर निकले। इधर मदनमोहन और उनका दल निशाना साधे खड़ा मौक़ा देख रहा था। बस ऐसी पिचकारियाँ चलीं कि वाह वाह। रङ्गरेज़ भी क्या खाकर इतनी ख़ूबीसे रँगेगा? मजाल क्या कि कोई सफ़ेद पोश बिना छींटा खाए वहाँसे बेदाग़ निकल जाय।

होलीकी साँझको बड़ी चहल-पहल रहती थी। मदनमोहनकी धजा निराली ही रहती थी। घुटनेतक धोती चढ़ाए, पेड़ काटे हुए ला रहे हैं तो कहीं भटकटैया काट-काटकर आगे लिए चले आ रहे हैं। कहीं किसीका टूटा मोढ़ा पड़ा उठा लिया, किसीकी लकड़ी उठाई, कहीं चारपाईके टूटे पाए मिले उठा लिए। होली है भाई होली है। कुछ पूछिए मत, मदनमोहनने असली मदनमोहनके भी कान काट लिए थे। क्या धूमकी होली मचती थी।

जन्माष्टमीके उत्सवकी कुछ बात ही निराली थी। कन्हैयाके पालनेकी सजावट और ठाकुरजीकी सजावटका काम मदनमोहनके ज़िम्मे। कहीं मालाएँ लगाई जा रही हैं, कहीं छड़ियाँ बन रही हैं, कहीं पालनेकी सजावट हो रही है तो कहीं झाड़ फ़ानूस झाड़े-पोंछे जा रहे हैं। कहीं गानेवालोंका प्रबन्ध हो रहा है तो कहीं कथाका। एक नया जीवन चारों ओर दिखाई पड़ता था। छठीके दिन तो और भी शोभा बढ़ जाती थी। चारों ओर मोमबत्तियाँ जगमगातीं, सारे आँगन और दालानोंमें ग़लीचे और सफ़ेद चादरें बिछ जाती थीं। रातभर गाना-बजाना, कथा-भजन होता, प्रसाद मिलता, पंजीरी बँटती, पञ्चामृत मिलता। वह समय ही कुछ अजीब था, हर बातमें अनोखापन था, हर काममें मस्ती थी। यही उमङ्ग तो बालकोंमें काम करनेका जोश, नया उत्साह और फुर्त्ती पैदा करती है और आगे जाकर ऐसे ही चञ्चल, कर्मण्य, फुर्त्तीले बालक बड़े कामके निकलते हैं।

यज्ञोपवीत होनेके बाद ये सन्ध्यावन्दन और पूजा-पाठमें भी बड़ा मन लगाते थे। इनका एक सन्ध्यादल भी था, जो सन्ध्याका सामान लेकर नित्य यमुना-किनारे पहुँचा करता था। एक दूसरा दल था, जो भाषण दिया करता था। बात यह थी कि उन दिनों प्रयागमें एक गिरिजाघर था। स्कूलसे लौटते समय ये देखते थे कि कुछ पादरी खड़े होकर हिन्दू-धर्मकी बुराई करते थे और भरपेट गालियाँ देते थे। ये भला कब सहन करने लगे। इन्होंने भी जहाँ अवसर मिला सभा-समाज, मेले-उत्सवमें खड़े होकर व्याख्यान देना शुरू किया। व्याख्यान-सामग्रीकी कमी नहीं थी। अपने पूज्य पिताजीकी कथाएँ सुनी थीं—फिर क्या था, हिन्दू संस्कारोंके बीचमें पले हुए ब्राह्मणकी आत्मा भला हिन्दू-धर्मकी निन्दा सुनकर चुप बैठ जाय, यह कैसे हो सकता था। उन्होंने व्याख्यान-दल बनाया, जिसमें कई सदस्य थे, जो इसी तरह व्याख्यान देते थे।

जहाँ कहीं सेवाका काम पड़ता था वहाँ वे सबसे आगे दिखाई पड़ते थे। मेले-तमाशेमें भीड़का प्रबन्ध करना इन्होंने उसी बालकपनमें सीख लिया। एक बार उनके पड़ोसमें व्यासजीके घरमें आग लग गई। देखते-देखते मदनमोहन पहुँचे और ऊपर चढ़ गए। पचास-साठ घड़े कूएँसे पानी खींच लाए। उस समय आग बुझानेकी कल नहीं थी और नलका इन्तज़ाम भी नहीं था। कुँआ और घड़ा यही साधन थे। मदनमोहनके प्रयत्नसे आग बुझ गई।

सन्ध्यावन्दनमें रुचि तो थी ही,एक बार इन्हें गायत्री मन्त्र जपनेकी धुन सवार हुई। ये चुपचाप घरसे भाग जाते थे और यमुना किनारे बरगद घाटपर एकासन लगाकर गायत्री मन्त्र जपते थे। इनकी माताजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें यह भय हुआ कि कहीं यह लड़का साधू-फ़कीर न हो जाय। पर मदनमोहन जैसी तबीयतका बालक फ़कीरोंके जैसे अकर्मण्य, नीरस और व्यर्थ जीवनकी ओर

आँख उठाकर भी न देख सकता था। उनकी माताजीको यह विश्वास हो गया कि वास्तवमें उनका भय ठीक नहीं था।

मदनमोहनको सङ्गीतसे बड़ा प्रेम था। यह विद्या तो इनकी ख़ान्दानी ही थी। पिताजीकी बाँसुरी सुनी ही थी। मधुर स्वर बपौतीमें ही मिला था। इनके परिवारमें शायद ही कोई ऐसा बालक हो जिसे सङ्गीतका शौक़ न हो। आपने सितार बजाना सीखा और बहुत ही अच्छा सितार बजाने लगे। बिना सङ्गीतप्रेमी हुए मनुष्यकी उदात्त वृत्तियाँ विकसित भी तो नहीं होतीं। सच पूछिए तो सहानुभूति, समवेदना और दूसरेकी व्यथाका अनुभव उसे हो ही सकता है जिसने एक बार तन्त्रीको छूआ हो। इसी सङ्गीतप्रेमके साथ ये अपने पिताजीसे सूरके पद गाते सुनते थे, अतः कविताका भी शौक़ हुआ और इन्होंने सितारके साथ बजानेके लिये जो सूर, मीरा तथा अन्य कवियोंके चुने हुए पदोंका संग्रह किया था, वह नीचे दिया जाता है। महत्त्वपूर्ण होनेके कारण हम उसे ज्योंका त्यों अपने पाठकोंको सौंप देते हैं। शायद इसी बहाने कुछ लोग अपने भक्त कवियोंके रसका पान करलें।

"राग कल्याण"

बन्दौ चरन कमल हरिराई।
जाकी कृपा कटाच्छ आँधरे सबै कछू दरसाई ॥१॥
बहिरे सब्द मूक पुनि बोलै रङ्क चलै सिर छत्र धुराई॥
सूरदास स्वामी करुणामय बार-बार बन्दौं तिहि पाई ॥२॥

"रामकली"

गारी मति दीजो मो गरीबनीको जायो है।
जो-जो बिगारि कियो सोतो मोसौं आन कह्यो,
मैं तो काहू बातनसौं नाहीं तरसायो है ॥१॥
दधिकी मटुकी भरी धरी लाय आँगनमें,
तौलि-तौलि लेहु भटू जाको जेतो खायो है ॥२॥
सूरदास प्रभु प्यारे निमिष न होहु न्यारे,
कान्ह ऐसो पूत मैं तो पूरे पुन्य पायो है ॥३॥

खेलतमें को काको गोसैंया।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही किन करत हँसैया ॥१॥
जाति-पाँति हमते बड़ नाहीं ना हम बसत तिहारी छैया।
अति अधिकार जनावत काहे याते अधिक तिहारी गैया ॥२॥
रूठि करै तासौं को खेलै रहे बैठि जहँ-तहँ सब गोय्याँ।
सूरदास प्रभु खेलोइ चाहत दाँव दियो करि नन्द दोहैया ॥३॥

"षट्राग"

नाहिनै जगाय सकत सुन सुबात सजनी।
अपने जान अजहु कान्ह मानत है रजनी॥
जब-जब हौं निकट जात लाग रहत लोभा।
तनकी सुधि बिसरि जाति निरखत मुख-सोभा ॥१॥
बचननको बहुत करत सोंचत जिय ठाढ़ी।
नैननि बिचार परति देखत रुचि बाढ़ी ॥२॥
इहि बिध बदनारबिन्द जसुमति जिय भावै।
सूर स्याम सुखकी रास कापै कहि आवै ॥४॥

"बिहाग"

कोऊ कहूँ देखे री इत जात।
रूप गरबीली प्यारी राधा॥
चम्पक बरन गात मनरंजन,
खंजन चकबकु रव मदगंजन।
अमल कमल मुख जोति बिलोकत,
होत सरद ससि आधा ॥१॥
अहो मराल! मानसके बासी,
अहो मलिन्द! मकरन्द उपासी।
देउ बताय अब मोहि दयाकर,
होत अपद अपराधा ॥२॥
अहो कदम्ब! अहो अम्ब, निम्ब, बट,
सोभित सुखद छाँह यमुना तट।
हरत तापकी बाधा ॥३॥
सन्तत देत गोप गोधन सुख,
कबहुँ न सहि न सकत मेरो दुख।
उपकारी बपुवेद बखानत,
अबहीं जो मौन क्यौं साधा ॥४॥
आरत बचन पुकारत लालन,
मन जो फँसी बिरहीके हारन।

मदन-जाल सौं बाँधा ॥ ५ ॥
अतिसै दुखित देखि बनवारी,
प्रगट भई वृषभान दुलारी।
सूरदास प्रभुको लगाय उर,
पूरब सरसकी साधा ॥ ६ ॥

ऊधो अब नहिं स्याम हमारे।
मधुबन बसत बदलिसे लीन्हें माधव मधुप तिहारे ॥१॥
एतनेहि दूर भए कछु औरै जोइ-जोइ मग हारे।
कपटी कुटिल काक कोयल ज्यौं अन्त भए उडि न्यारे ॥२॥
रस लै भँवर जाइ स्वारथ हित प्रीतम चेत बिसारे।
सूरदास तिनसो कहा कहिए जे तनहूँ मन कारे ॥३॥

"परज"

अँखियाँ स्याम मिलनकी प्यासी।
आप तो जाय द्वारिका छाए लोक करत मेरी हाँसी ॥१॥
मेरे तो मन अस आवति है करवट लौं चलि कासी।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर चरन कमलकी दासी ॥२॥

आजु अभिषेकत पियको प्यारी।
धरि दृग ध्यान नवल आँसुनके भरि-भरि उमगे बारी ॥१॥
कज्जल मिलित चाह मृगमदसे बिरह परब लखि भारी।
बरखत गलित कुसुम बेना ते सोई फूल झर डारी ॥२॥
व्याकुल कल नहिं लहत तनिक मुख हाय मन्त्र उच्चारी।
हरीचन्द लखि दुखित सखी जन करि न सकत उपचारी ॥३॥

मेरो हठ राखो हठीले लाल।
तुम बिन मान कौन मेरो रखिहै समुझहु जिय गोपाल ॥१॥
हमको तो तुमरो बल प्यारे तुव अभिमान दयाल।
पै तुमहीं ऐसी जो करिहो कहँ जैहैं ब्रजबाल ॥२॥
एक बेर बृजको फिरि आओ लखि गौअन बेहाल।
हरीचन्द बरु फेर जाइयो मधुपुर कृष्ण कृपाल ॥३॥

राखिए अपुनेनको अभिमान।
तुव बल जो जग गिनत न काहू दीजै तेहि सनमान ॥१॥
तुमरे होय सहैं इतनो दुख यह तो अनय महान।
तुमहि कलङ्क हमैं लज्जा अति कहिहै कहा जहान ॥२॥
एक बेर फिर तू बृज आओ देहु जीवको दान।
हरीचन्द गिरि कर धारनकी करिकै सुरति सुजान ॥३॥

ऊधो अब वे दिन नहिं ऐहैं।
जिनमैं स्याम सङ्ग निसि-बासर छिन सम बिलस बितैहैं ॥१॥
वह हँसि दान माँगनो उनको अब हम लखन न पैहैं।
जमुना न्हात कदम चढ़ि छिपि अब हरि नहि चीरै चोरैहैं ॥२॥
वह निसि सरद दिवस बरखाके फिर बिधि नाहिं फिरैहैं।
वह रस-रास हँसन-बोलन हित हम छिन-छिन तरसैहैं ॥३॥
वह गलबाहीं दै पिय बतियाँ अब नहि सरस सुनैहैं।
हरीचन्द तरसत हम मरिहैं तऊ न वे सुधि लैहैं ॥४॥

वे दिन सपन रहे कै साँचे।
जे हरि सँग बिहरत याही बृज बीति गए रँग राचे ॥१॥
कहाँ गई वह सरद रैन सब जिन में हरि सँग नाचे।
कहँ वह बोलन हँसन-मिलन सुख मिले जौन बिनु जाँचे ॥२॥
हाय दई कैसी कीनी दुख सहत करे जे जाँचे।
हरीचन्द हरि बिनु सूनो बृज लखनहि हित हम बाँचे ॥३॥

हरि हो अब मुख बेगि दिखाओ।
सही न जात कृपानिधि माधो एहि सुनतहि उठ धाओ ॥१॥
लखि निज जन डूबत दुख सागर क्यौं न दया उर लाओ।
आरत वचन सुनत चुप ह्वै रहे निठुर बानि बिसराओ ॥२॥
करुनामय कृपाल केसव तुम क्यौं निज प्रनहि डिगाओ।
लखि बिलखत हरिचन्द दुखी जन क्यौं नहि धीर धराओ ॥३॥

"जैतश्री"

कहाँ लौं मानौं अपनी चूक।
बिना गोपाल सखी यह छतिया ह्वै न गई द्वै टूक ॥१॥
तन मन धन जोबन सब ऐसे भए भुवङ्गम फूँक।
हृदय जरत है दावानल ज्यौं कठिन बिरहकी हूक ॥२॥
जाकी मनि सिरते हरि लीन्हीं कहा कहति अति मूक।
सूरदास बृजवास बसी हम मनो दाहिने सूक ॥३॥

"मल्लार"

सखी इन नैननि ते घन हारे।
बिनही ऋतु बरसत निसि-बासर सदा मलिन दोउ तारे ॥१॥
ऊरध स्वास समीर तेज अति सुख अनेग द्रुम डारे।
दिसन दसन करि बसे वचन खग दुख पावसके मारे ॥२॥
ढुरि-ढुरि बूँद परत कञ्चुकिपर मिलि अञ्जनसौं कारे।
मानो परनकुटी सिव कीन्हीं विधि मूरति धरि न्यारे ॥३॥

सुमिरि-सुमिरि गरजत जल छाँड़त आँसु सलिलके धारे।
बूड़त बृजहि सूर को राखै बिनु गिरवरधर प्यारे ॥४॥

"सारङ्ग"

लोचन-चातक जीवो नहिं चाहत।
अवधि गए पावसकी आसा क्रम-क्रम करि निरबाहत ॥१॥
सरिता सिन्धु अनेक अवर सखि बिलसत सजन सनेह।
ये सब ही यदुनाथ जलद बिनु अधिक दहत हैं देह ॥२॥
जब लगि नहि बरषत बृज ऊपर नौ घन स्याम सरीर।
त्यौं यह तृषा जाइ क्यौं सूरज आनि ओसके नीर ॥३॥

"सारङ्ग"

मनकी मन ही माहिं रही।
पठै देहु मेरो लाल लड़ैतो वारौं ऐसी हौंसी ॥१॥
भली करी कंसादिक मारे सब सुर काज किए।
अब इन गैयन कौन चरावै भरि-भरि लेत हिए ॥२॥
खान-पान परिधान राज सुख जो कोइ कोटि लड़ावै।
तदपि सूर मेरो वारो कन्हैया माखन ही सचुपावै ॥३॥

"मल्लार"

अब कछु औरहि चाल चली।
मदनगोपाल बिना या तनकी सबै बात बदली ॥१॥
गृह कन्दरा मसान सेज भई चाही सिंह थली।
सीतल चन्द सुतौ सखि कहियत तिनहू अधिक जली ॥२॥
मृग मद मलय कपूर कुमकुमा सींचति आनि अली।
एक न फुरत बिरह जुरते कछु लागति नाहिं भली ॥३॥
वह रितु अमृत लता सुनि सूरज अब बिष फलनि फली।
हारि बिधु मुख नाहिनै फूलति मनसा कुमुद कली ॥४॥

"सारङ्ग"

अब यौंही दिन लागे जान।
सुमिरत प्रीति लाज लागत है उर भयो कुलिस समान ॥१॥
लोचन रहत बदन बिनु देखे बचन सुने बिनु कान।
हृदय रहत हरि पानि परस बिनु छेदित मनसिज बान ॥२॥
मानो सखी रहे नहि मेरे वे पहले तन प्रान।
बिधि समेत रुचि चले नन्द-सुत बिरह बिथा दै आन ॥३॥
बिधि वह छरे और पुनि कीन्हें वैसेइ बेत बिषान।
सूरदास ऐसीयै कछु यह समुझत है अनुमान ॥४॥

——:o:——

"सूर-सागर"

"राग कल्यान"

जौ बिधिको अपनो करि पाऊँ।
तौ सखि कह्यो होय कछु तेरो अपनी साध पुराऊँ ॥१॥
लोचन रोम-रोम प्रति माँगौं पुनि-पुनि त्रास दिखाऊँ।
एक टक रहैं पलक नहिं लागै पद्धति नई चलाऊँ ॥२॥
कहा करौं छबिरासि श्यामघन लोचन द्वै नहिं ठाऊँ।
एतेपर ये निमिष सूर सुनि यह दुख काहि सुनाऊँ ॥३॥

"टोड़ी"

श्याम भए राधावस ऐसे।
चातिक स्वाति चकोर चन्द्र ज्यौं चक्रवाक रवि जैसे ॥१॥
नाद कुरङ्ग मीन जलकी गति ज्यौं तनके बस छाया।
एक टक मैन अङ्ग छबि जो है थकित भए पति जाया ॥२॥
उठे उठत बैठे तौ बैठत चले चलत सुधि नाहीं।
सूरदास बड़ भागिनि राधा समुझि मनहि मुसुकाहीं ॥३॥

"बिहाग"

मनते ये अति ढीठ भए।
वो तौ आह बोलतौ कबहूँ ये जुगए सुगए ॥१॥
ज्यों भुवङ्ग केचुरी बिसारत फिरि नहिं ताहि निहारत।
तैसेहि जाइ मिले एक टक ह्वै डरते लाज निवारत ॥२॥
इन्द्रिन-सहित मिल्यो मन तबहीं नैन रहे वहि सालत।
सूर श्याम सँग-ही-सँग डोलत औरनिके घर घालत ॥३॥

"बिहाग"

मनै मन पछितायो रहि जैहैं।
सुन सुन्दरि यह समौ गए ते पुनि न सूल सहि जैहैं ॥१॥
मानहुँ मीन मजीठ प्रेम रँग तैसे ही गहि जैहैं।
काम हरष हररै हर अम्मर देखत ही बहि जैहैं ॥२॥
इते भेदकी बात सखी री कत-कत कोउ कहि जैहैं।
बरत भवन खनि कूप सूर त्यौं मदन अगिनि दहि जैहैं ॥३॥

"बिलावल"

द्वै कर जोरि लेत जमुहाई ॥
सोभा कहति बनति नहिं मोपै आजु सखी पिय सँगहुते आई।
सोइ आभा पुनि फेरि फबत है बिधि आपुन रुचि रचित बनाई ॥
मनहु कुमुदिनी कनक मेरु चढ़ि ससि सनमुख मृदु सहित सिधाई।

सोभित चिकुर लिलाट वदनपर कुञ्चित कुटिल अलक बियुराई ॥
नागबधू मनु अमी कोसतें लै मधुपान अमर ह्वै आई।
झुकि-झुकि परत प्रेम-मदमाती उमगि-उमगि तन देत दिखाई ॥
सूरदास प्रभु सखी सयानी चुटुकिनि देति तबहिं लखि पाई।

"कान्हरा"

नाहींनै री अति नीको।
मेरो कह्यो सुनहु वृज सुन्दरि मानि मनायो नागरि पीको ॥
सोइ अति रूप सुलच्छन नारी रीझै जाहि भावतो जीको।
प्यासे प्रान जाइ ज्यौं जल बिनु पुनि कहँ कीजै सिन्धु अमीको ॥
तौ जौ मान तजहुगी भामिनि रविकिर सम काम-फल कीको।
कीजै कहा समै बिनु सुन्दरि भोजन पीछे अचवन घीको ॥
सूर सरूप गरब जोवन कै जानति हौ अपने सिर टीको।
जाके उदय अनेक प्रकासत ससिहिं कहा डर कमल कलीको ॥

"सारङ्ग"

चितए चपल नैनकी कोर।
मनमथ बान दुसह अनियारे निकसे फूटि हिए को फोर ॥१॥
अति व्याकुल धुकि धरनि परे जिमि तरुन तमाल पवनके जोर।
कहुँ मुरली कहुँ लकुट मनोहर कहुँ पट कहूँ चन्द्रिका मोर ॥२॥
बन बूड़त बनहीं बन उछरत बिरह-सिन्धुके बड़े हिलोर।
प्रेम-सलिल भींज्यौ पीरो पट फट्यौ निचोरत आँचल कोर ॥३॥
फुरै न बचन नयन नहिं उघरत मानहु कमल भए बिनु मोर।
सूर सुअधर सुधारस सींचहु मेटहु मुरछा नन्द-किसोर ॥४॥

"मल्लार"

यह रितु रूसिबेकी नाहीं।
बरषत मेघ मेदिनीके हित प्रीतम हरखि मिलाहीं ॥१॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाही ते तरवर लपटाहीं।
जे जल बिन सरिता ते पूरन मिलन समुद्रहि जाहीं ॥२॥
"यौवन" धन है द्यौस चारिको ज्यौं बदरीकी छाहीं।
मैं दम्पति रस रीति कही है समुझि चतुर मन माहीं ॥३॥
यह चित धरहु सखी राधिका दै दूतीको बाहीं।
सूरदास हठ चलहु राधिका संग दूती पिय पाहीं ॥४॥

"बिलावल"

हतो श्रम नाहिंन तबहुँ भयौ।
सुनि राधिके जितो श्रम मोंको तू यह मान दयौ।
धरनीधर विधि वेद उधार्‌यौ मधु सो सत्रु हयौ ॥१॥
द्विज नृप कियौ दुसह दुख मेट्यौ बलिको राज लयौ।
तोर्‌यौ धनुष स्वयम्बर कीन्हौं रावन अजित जयौ ॥२॥
अघ बक बच्छ अरिष्ट केसि मथि दावानल आँचयौ।
त्रिय वपु धर्‌यौ असुर सुर मोहे को जग जो न द्रयौ ॥३॥
जानौं नहीं कहा या रस मैं जेहि सिर सहज नयौ।
सूर सुबल अब तोहि मनावत मोहिं सब बिसरि गयौ ॥४॥

"सारङ्ग"

उलटि पग कैसे दीन्हैं नन्द।
छाँड़े कहाँ उभय सुत मोहन धिग जीवन मतिमन्द ॥१॥
कै तुम धन जोवन मद-माते कै तुम छूटे बन्द।
सुफलक-सुत बैरी भयो हमकौं लै गयो आनँदकन्द ॥२॥
रामकृष्ण बिन कैसे जीजे कठिन प्रीतिके फन्द।
सूरदास प्रभु भई अभागिनि तुम बिन गोकुल चन्द ॥३॥

"रामकली"

कहियौ स्यामसौं समुझाइ।
यह नातो नहिं मानत मोहन मनो तुम्हारी धाइ ॥१॥
एक बार माखनके काजै मैं राखी अटकाइ।
याको बिलग मानो जिन मोहन लागत मोहिं बलाइ ॥२॥
बारहि बार इहै लौ लागी गहे पथिकके पाइ।
सूरदास या जननीको जिय राखौ बदन देखाइ ॥३॥

"सारङ्ग"

सँदेसो देवकीसों कहियौ।
हौं तो धाय तुम्हारे सुतकी मया करति तुम रहियौ ॥१॥
यदपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हको माखन रोटी भावै ॥२॥
तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम पकरि नहाते ॥३॥
सूर पथिक सुनि सोहि रैनि दिन बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरो अलप लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सकोच ॥४॥

"सारङ्ग"

जौ परि राखत हौं पहिचानि।
तौ अबकै वह मोहन मूरति मोहि देखावहु आनि ॥१॥
तुम रानी वसुदेव गेहिनी हौं गँवारि वृजवासी।

"मल्लार"

सिखिन सिखर चढ़ि टेर सुनायो।
बिरही सावधान ह्वै रहियो सजि पावस दल आयो ॥ १ ॥
नव बादल बानै तप बनता जो चढ़ि चुटकि दिखायो।
चमकत बीजु सेलकर मण्डित गरजि निसान बजायो ॥ २ ॥
दादुर मोर चातक पिकके गन सब मिलि मारू गायो।
मदन सुभट कर बान पञ्च लै वृज तन सनमुख धायो ॥ ३ ॥
जानि विदेस नन्दको नन्दन अबलनि त्रास दिखायो।
सूर स्याम पहले गुन सुनि रहि प्रान जात बिरमायो ॥ ४ ॥

"मल्लार"

सखी री चात्रिक मोंहि जियावत।
जैसेहि रैनि रटति हौं पिय-पिय तैसेहि वह पुनि गावत ॥१॥
अतिसै करुट दाहु प्रीतमको तारू जीभ न लावत।
आपुन पिवत सुधारस सजनी बिरहिनि बोलि पियावत ॥२॥
जौ ये पंछि सहाइ न होतो प्रान बहुत दुख पावत।
जीवन सुफल सूर ताहीको काज पराए आवत ॥३॥

"कान्हरा"

छूटि गई ससि सीतलताई।
मनु मोहि जारि भसम कियो चाहत सजत मनो कलङ्क तन काई ॥
याहिते स्याम अकाम देखिए मानो धूम रह्यो लपटाई।
ता ऊपर दौ देति किरिनि उर उडगन कनै उबटइयत आई ॥२॥
राहु केतु दोउ जोरि एक करि कहि इहि समैं जरावहि आई।
ग्रसे ते न पचि जात पापमय कहत सूर बिरहिनि दुखदाई ॥३॥

"मल्लार"

कोऊ बरजो री या चन्दहि।
अति ही क्रोध करत हम ऊपर कुमुदिनि कुल आनन्दहि ॥१॥
कहा कहौं बरषा रवि तमचुर कवल बलाहक कारे।
चलत न चपल रहत थिरकै रथ बिरहिनिके तन जारे ॥२॥
नीन्दत सैल उदधि पन्नग कौं श्रीपति कमठ कठोरहि।
देति असीस जरा देवी कौं राहु केतु किनि जोरहि ॥३॥
यौं जलहीन मीन तन तलफति ऐसी गति वृज बालहि।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदन गोपालहि ॥४॥

"सारङ्ग"

मनकी मन ही माँहि रही।
जब हरि रथ चढ़ि चले मधुपुरी सब अज्ञान भरी ॥१॥
मति बुधि हरी परी धरनीपर अति बेहाल खरी।
अक्रूस अलक कुटिल भए तासौं ताते अवधि बरी ॥२॥
ज्यौं बिनु मनि अहि मूक फिरे यौं बिधि बिपरीत धरी।
मन तौ रह्यो पन्थि सूर प्रभु माटी रही करी ॥३॥

"मल्लार"

किधौं घन गरजत नाहिन उन देसनि।
किधौं हरि हरषि इन्द्र हठि बरजै कैधौं दादुर खाए सेसनि ॥१॥
किधौं वह देसनि गव निगम न छाड़े धरननि बूँद प्रवेसनि।
चात्रिक मोर कोकिला उहि वन बधिकन बधे बिसेसनि ॥२॥
किधौं उहि देस बाल नहि भूलति गावत सखिन सुदेसनि।
सूरदास प्रभु पथिक न चलहीं कासौं कहौं सँदेसनि ॥३॥

"मल्लार"

इहाँ नाहिन नन्द-कुमार।
इहै जानि अजान मघवा करी गोकुल आर ॥१॥
नैन जलद निमेष दामिनि आँसु बरषत धार।
दरस रबि ससि दुरयौ धीरज पास पवन अकार ॥२॥
उरज गिरि मैं मरन भारी अगम काम अपार।
गरजि बिकल बियोगि बानी हरति अवधि अधार ॥३॥
पथिक मथुरा जाइ हरिसौं बात कहै बिचार।
सत्रुसेन सुधाम घेरयौ सूर लगहु गोहार ॥४॥

"मल्लार"

अब या तनहि कहो कहा कीजै।
सुनि री सखी स्याम सुन्दर बिन बाँटि बिषम बिष पीजै ॥१॥
कै गिरिपै गिरि चढ़ि सुनि सजनी कै सीस सङ्करहि दीजै।
कै दहिए दारुन दावानल कै जाइ जमुन धँसि लीजै ॥२॥
दुसह बियोग बिरह माधौको दिनहीं-दिनहीं छीजै।
सूर स्याम पीतम बिनु राधे सोचि-सोचि जिय जीजै ॥३॥

"बिलावल"

ऊधो इतनो कहियो जाइ।
हम आवहिंगे दोऊ भैया मैया जिन अकुलाइ ॥१॥

याको विलग बहुत हम मान्यौ जब कहि पठयो धाइ।
वह गुन हमको कहा बिसरिहै बड़े किए पय प्याइ ॥२॥
और जो मिलौ नन्द बबासौं तब कहिए समुझाइ।
तौलौं दुखी होन नहि पावैं धवरी धूमरि गाइ ॥३॥
जद्यपि इहाँ अनेक भाँति सुख तद्यपि रह्यौ न जाइ।
सूरदास देखौं बृजवासिन तबहीं हियो सिराइ ॥४॥

"मल्हार"

कोउ बृज बाँचत नाहिन पाती।
कत लिखि-लिखि पठवत नँद-नन्दन कठिन विरहकी काती ॥१॥
नैन सजल कागद अति कोमल कर अँगुरी अति ताती।
परसत जरै विलोकत भीजै दुहूँ भाँति दुख छाती ॥२॥
क्यौं ये वचन सुअङ्क सूर सुनि विरह मदन सर घाती।
मुख मृदु वचन बिना सींचे अब जिवहि प्रेम-रस माती ॥३॥

"धनाश्री"

नैननि उहै रूप जो देखौं।
तौ ऊधो यह जीवन जगकौ साँच सुफल करि लेखौं ॥१॥
लोचन चपल चारु खञ्जन मन रञ्जन हृदय हमारे।
सारङ्ग कमलमै मीन मनोहर सेत अरुन अरु कारे ॥२॥
रतन जटित कुण्डल श्रवननि वर गण्ड कपोलनि झाँई।
मनु दिनकर प्रतिबिम्ब मुकुरमँह ढूँढ़त यह छवि पाई ॥३॥
मुरली अधर विकट भौंहैं करि टाढ़े होत त्रिभङ्ग।
मुक्तमाल उर नील सिखर तैं धँसी धरनि जनु गङ्ग ॥४॥
और वेषको कहै बरनि सब अँग-अँग केसरि खौर।
देखे बनै कहत रसनासौं सूर विलोकत और ॥५॥

"कल्यान"

मधुकर कहा कियो अब चाहत।
ये सब भई चित्रकी पुतरी सुने सरीरहि डाहत ॥१॥
हमसौं तोसौं बैर कहा अलि स्याम अजा भयो राहत।
झारि झूरि तौ मन तौ तू लै गयो बहुरि यारहि गारत ॥२॥
अब तो है मारुतको गहिबो का सस मूकी लैहौ।
सूर जु जौ उन हमहि हतेतैं अपनो कीयो पैहौ ॥३॥

"सारङ्ग"

ऊधो भली करी गोपाल।
आपुन पै हरि आवत नाहीं बिरमि रहे एहि काल ॥१॥
चन्दन चन्दहुतैं तब सीतल कोकिल शब्द रसाल।
अब समीर पावक सम लागत सब बृज उलटी चाल ॥२॥
हार चीर कञ्चन कण्टक भए तरनि तिलक भए भाल।
सेज सिङ्ह ग्रह तिमिर कन्दरा सर्प सुमन भए माल ॥३॥
हमतो न्याय हतो दुख पावैं बृज बसि गोपी ग्वाल।
सूरदास स्वामी सुख सागर भोगो भँवर मृनाल ॥४॥

"मल्हार"

ऊधो जो हरि हितू तुम्हारे।
तौ तुम कहियौ जाइ कृपा करि ये दुख सबै हमारे ॥१॥
तन तरिवर उर स्वाँस पवनमैं विरह दवा अति जारे।
नहिं सिरात नहिं जात हाट है सुलगि-सुलगि भई कारे ॥२॥
जद्यपि प्रेम उमगि जल सींचे बरषि-बरषि घन हारे।
जौं सींचै एहि भाँति जतन करि तौ येते प्रतिपारे ॥३॥
कीर कपोत कोकिला चात्रिक वधिक वियोग विडारे।
क्यौं जीवै येहि भाँति सूर प्रभु बृजके लोग बिचारे ॥४॥

"केदारा"

नेह न होइ पुरानो रे अलि।
जल प्रवाह ज्यौं सोभा सागर,
निति नवतन बृजनाथ इहाँ बलि ॥१॥
जीवत है आनन्द रूप रस,
बिन प्रतीतिको मीन चढ़यौ थलि।
अमी अगाध सिन्धु सर बिहरत,
पीवत हू न अघात इते जलि ॥२॥
दिन-दिन बढ़ति नीर नलिनी ज्यौं,
स्याम रङ्गमैं नैन रहे पलि।
सूर गोपाल प्रीति जिय जाके,
छूटत नाहिंन नेह सनी सलि ॥३॥

"सारङ्ग"

मधुकर समुझि कहौ किन बात।
काहेको हियरा सुलुगावत उठि किन ह्याँ ते जात ॥१॥
जेहि उर बसत जसोदानन्दन निरगुन कहाँ समात।
कत डोलत भटकत कुसुमन सँग तुम कित पातन पात ॥२॥
जद्यपि सकल बेलि बन बिहरत जाइ बसत जलजात।
सूरदास बृज मिल बन आए दासीकी कुसलात ॥३॥

"धनाश्री"

ऐसो सुनियत द्वै बैसाख।
जानत हौ जीवन काहेको जतन करौ जौं लाख ॥१॥
मृग-मद मिलै कपूर कुम-कुमा केसरि मलया पाख।
जरत अग्निमैं घृत ज्यौं नायौ तन जरि ह्वैहैं राख ॥२॥
ता ऊपर लिखि जोग पठावत खाहु नींब तजि दाख।
सूरदास ऊधोकी बतियाँ उड़ि-उड़ि बैठी ताख ॥३॥

"मल्हार"

बिरचि मन बहुरि राँचो आइ।
टूटी जुरै बहुत जतननि करि तऊ दोष नहि जाइ ॥१॥
कपट हेतकी प्रीति निरन्तर चौंथि नोथि चोखाइ।
दूध फाटि जैसे होइ काञ्जी कौन स्वाद करि खाइ ॥२॥
केरा पास ज्यौं बेरि निरन्तर हालत दुख दै जाइ।
स्वाति बूँद जस परै फनिक मुख परत विषै ह्वै जाइ ॥३॥
येती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ-बनाइ।
सूर जु दास दिगम्बरपुरते रजक कहा ब्यौसाइ ॥४॥

"नट"

तेरो बुरो न कोई मानै।
रसकी बात मधुप नीरस सुनि रसिक होइ सो जानै ॥१॥
दादुर बसै निकट कमलिनिके जनम न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उड़त मन बाँध्यौ कही सुनत नहिं कानै ॥२॥
सरिता चली मिलन सागरकौं कूल सबै द्रुम भानै।
कायर बकै लोभते भागै लरै सो सूर बखानै ॥३॥

"धनाश्री"

ऊधो मन मानेकी बात।
दाख छोहारा छाँड़ि अमृत फल विष कीरो विष खात ॥
जो चकोरको देइ कपूर कोउ तजि न अँगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठमैं बँधत कमलके पात ॥
ज्यौं पतङ्ग हित जानि आपनो दीपकसौं लपटात।
सूरदास जाको मन जासौं सोई ताहि सोहात ॥

"नट"

कहियो जसुमतिकी आसीस।
जहाँ रहौ तहँ नन्द लाड़िले जीवो कोटि बरीस ॥
मुरली दई दोहनी घृत भरि ऊधो धरि लई सीस।
इह घृत तौ उनही सुरभिनको जो प्यारी जगदीस ॥
ऊधो चलत सखा मिलि आए ग्वाल बाल दसबीस।
अबके इहाँ बृज फेरि बसायो सूरदासके ईस ॥

इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे ओतप्रोत होकर यह बालक समाज तथा देशके विस्तृत अखाड़ेमें आ कूदा और ऐसे करतब दिखाए कि बड़े बड़े अखाड़िये मात हो गए और कितने ही पुराने सरदार इस नये जवानका लोहा मानने लगे। नई उमङ्गें, नया जोश और नई आशाओंकी उँगली थामकर मदनमोहन ऊपर चढ़ने लगे और इतने ऊपरतक चढ़ते चले गए कि उनतक पहुँचनेकी बात तो दूर रही, उतनी ऊँचाईको देखकर ही आँखें चुँधियाने लगती हैं। मदनमोहनका कार्य्यक्षेत्र अब बढ़ने लगा।

एक पग आगे

विवाह

आज-कलकी सुधारक मण्डली यदि सुन पावे कि किसीका ब्याह छोटी अवस्थामें ही हो गया तो वह आपेसे बाहर हो जाय और उन्हें भारतकी दरिद्रता और पराधीनताके सब कारण उसी विवाहमें दिखाई पड़ने लगें। पर भगवान्‌ने जिसे कृपा करके थोड़ी भी बुद्धि दे दी है वह यह अवश्य समझ सकेगा कि पहले विवाह भले ही बालकपनमें हो जाते थे, पर संयम इतना कड़ा था कि उसका परिणाम बुरा नहीं होता था। आजकल हम लोग पच्चीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करानेका उपदेश तो देते हैं, पर पच्चीस वर्षतक अपनेको तेजस्वी बनाए रखनेके साधन और उसकी शिक्षा नहीं देते। इसका कुफल यह हुआ है कि विवाह तो देरमें होने लगे हैं, पर विवाहके समय हमारे नौजवान मित्रोंके चेहरोंसे जवानी हवा हो जाती है। मनस्तत्त्वके विद्वानोंका कहना है कि यदि मनुष्यकी इच्छाकी पूर्त्तिमें बाधा होती है तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी भयङ्कर होती है और उसीके फलस्वरूप वह पागल होता या आत्महत्या कर बैठता है किन्तु यदि उस इच्छाको उचित धारामें मोड़ दिया जाय तो वह इच्छा उदात्त वृत्तिका स्वरूप धारण कर लेती है। इसी आधारपर सम्भवतः हमारे बड़े लोग बालकोंका विवाह बालपन और युवावस्थाके सन्धिकालमें कर देते थे कि जिससे उनकी स्नेहधारा एक ही मार्गपर चले, इधर उधर फैलकर नष्ट होनेसे बच जाय।

मदनमोहनके विवाहकी भी एक अजीब कहानी है। वे चौदह-पन्द्रह बरसके रहे होंगे—सुन्दर इकहरे बदनके—अभी मसूँ भी न भींगी थीं। काली-काली चमकदार आँखें थीं और खञ्जनके समान चपल अङ्गोंसे ऐसा प्रतीत होता था मानों बस अब उड़नेहीवाले हैं। इनके चाचा पण्डित गदाधरप्रसादजी मिर्ज़ापुरके गवर्नमेण्ट हाइ स्कूलमें हेड पण्डित थे। वे साहित्यके धुरन्धर विद्वान्, मृदुभाषी और हँसमुख थे। मदनमोहन अकसर उनके पास आया-जाया करते थे। एक बार मिर्ज़ापुरमें पण्डितोंकी सभा हो रही थी। आसपासके बहुतसे पण्डित जमा हुए थे। किसी विषयपर शास्त्रार्थ हो रहा था। मदनमोहन भी उसी सभामें बैठे हुए थे। बहुत देरतक सुनते रहे फिर उनको भी कुछ बोलनेकी इच्छा हुई। जिसे जनताके बीचमें बोलनेका ढेठ खुल गया हो वह चुप भला कैसे रह सकता है। मदनमोहन खड़े होकर बोलने लगे। कैसी ज़बान थी, मानो फूल बरस रहे हैं। कितना साधुवाद हुआ। जिसने सुना उसीने बालक मदनमोहनकी पीठ ठोंकी। उसी सभामें मिर्ज़ापुरके पण्डित नन्दराम भी बैठे हुए थे। उन्होंने मदनमोहनको अपना जामाता बनानेका सङ्कल्प कर लिया। बातचीत तै हो गई। मदनमोहनके श्वसुर होनेका सौभाग्य उन्हींको मिला।

पण्डित नन्दरामजीकी तीन पुत्रियाँ थीं। दोका विवाह हो चुका था। सबसे छोटी कुन्दन (कुञ्जन) देवी रह गई थीं। इस बातचीतके दो-तीन साल बाद

सन् १८८१ ई० में मदनमोहनका विवाह हो गया। मदनमोहन उस समय कौलेज़में पढ़ रहे थे।

स्कूल और कौलेज़

हमारा संयुक्तप्रान्त उस समय उत्तर-पश्चिमीप्रान्त तथा अवध कहलाता था। तबतक प्रयाग विश्व-विद्यालयका सूत्रपात नहीं हुआ था। इस प्रान्तकी एण्ट्रेन्स परीक्षाका सम्बन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालयसे था। इलाहाबाद ज़िला स्कूल अपने स्थानसे उठकर मलाकापर चला गया और गवर्नमेण्ट हाई स्कूल हो गया। दूर होनेके कारण अब तो मदनमोहनको प्रायः रोज़ ही देर होने लगी। सन् १८७६ ई० में अट्ठारह वर्षकी अवस्थामें मदनमोहनने एण्ट्रेन्स परीक्षा पास कर ली।

एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करनेके बाद मदनमोहनको कौलेज़में पढ़नेका मन हुआ, पर दरिद्रता मुँह बाए सामने खड़ी थी। किन्तु ब्रजनाथजीने हिम्मत न हारी। मदनमोहनने म्योर सेण्ट्रल कौलेज़में नाम लिखा लिया। उस समय म्योर सेण्ट्रल कौलेज प्रयागकी पब्लिक लाइब्रेरीके उत्तरस्थित दर्भङ्गा कैसिलमें लगता था। वह सरकारी कौलेज़ था और उसके प्रिन्सिपल बड़े नामी विद्वान् श्री हैरिसन् साहब थे।

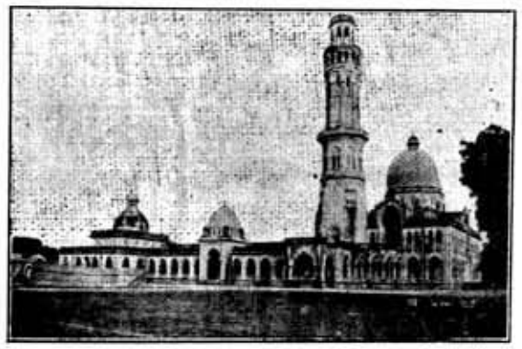

वर्त्तमान म्योर सेण्ट्रल कौलेज, प्रयाग।

कौलेज़में पहुँचनेपर मदनमोहनके गुणोंका तो विकास हुआ ही, साथ ही उनका कार्य्यक्षेत्र भी बढ़ चला। प्रिन्सिपल हैरिसन्‌पर इनके देशानुराग, पवित्र जीवन, धीरता और निर्भयताका बड़ा प्रभाव पड़ा और वे इन्हें बहुत मानने लगे।

अभिनेता

प्रयागमें उन दिनों एक आर्य्य-नाटक-मण्डली थी, जिसमें नगरके प्रायः सभी प्रमुख नागरिक सदस्य थे। स्वर्गीय सर सुन्दरलाल भी उन दिनों इसके सदस्य थे। एक बार उस मण्डलीने शकुन्तला नाटक खेला। बड़ी भीड़ हुई। संस्कृतके पण्डितोंमें एक कहावत प्रचलित है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तलम्।
तत्रापि च चतुर्थाङ्कस्तत्रश्लोकश्चतुष्टयम्॥

—कि काव्योंमें नाटक सबसे श्रेष्ठ है। नाटकोंमें महाकवि कालिदासका अभिज्ञान शाकुन्तल (शकुन्तला) नाटक सर्वश्रेष्ठ है—इत्यादि। नाट्य संसारके सर्वश्रेष्ठ नाटककी प्रधान नायिका महाकवि कालिदासकी सर्वश्रेष्ठ कृति शकुन्तलाका अभिनय करना कोई हँसी-दिल्लगी नहीं है, पर आर्य्य-नाटक मण्डलीवालोंने वहाँके नाचघरमें शकुन्तला नाटक खेला। घण्टी बजी, परदा उठा। अनुसूया और प्रियम्वदाके साथ जलकी गगरी हाथमें लिए हुए शकुन्तला आई। वह हाव-भाव बस देखने ही लायक़ था। आदिसे अन्ततक शृङ्गार और करुणाकी उस महानदीमें तैरकर जब दर्शकगण बाहर निकले तो सबकी ज़बानपर एक ही बात थी—'शकुन्तलाका पार्ट ग़ज़बका हुआ है।' ऐसी ख़ूबीसे वह अभिनय किया गया था कि सबकी कल्पनामें कई दिनतक 'शकुन्तला' विराजमान रही। वह अभिनय किसने किया था—यह कोई पहेली नहीं थी, कोई रहस्यकी बात नहीं थी। सब लोग जानते थे—उन्हीं ब्रजनाथजीके पुत्र मदनमोहनने। एक बार कौलेज़में 'मर्चेण्ट औफ़ वेनिस' अंग्रेज़ी नाटक खेला गया। उसमें पोर्शियाका पार्ट मदनमोहनको मिला। उस नाटकके देखनेवाले अभी जीवित हैं और उनका कहना है कि यदि कोई अंग्रेज़

कौलेज़के तीन सहपाठी पण्डित हरिराम पाण्डे, पण्डित मदनमोहन मालवीय तथा पण्डित श्रीकृष्ण जोशी

महिला भी उस पार्टको करती तो शायद इतनी ख़ूबीके साथ न कर पाती। जिस समय 'उस' पोर्शियाने दयाके गुणोंका वर्णन करना शुरू किया तो जान पड़ा कि आकाशसे दयाके अमृतकी वर्षा हो रही है और सारा संसार उस अमृतकी एक-एक बूँद पानेके लिये तरस रहा है। मदनमोहन उस समय कौलेज़में पढ़ रहे थे।

मदनमोहनने कौलेज़में एक डिबेटिङ्ग सोसाइटी (वादविवाद-समाज) स्थापित किया, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विषयोंपर वाद-विवाद हुआ करते थे और इनके मित्रगण भाषण दिया करते थे। सभी लोगोंमें तो इनके समान लगन थी नहीं, पर ये ज़बर्दस्ती सबको पकड़-पकड़कर खींच-खींचकर ले जाया करते थे।

मदनमोहनका कौलेज़का वेश भी वही था जो आज है। वही साफ़ा, वही दुपट्टा, वही अचकन, और वही पाजामा। गरमीके दिनोंमें सन्दली दुपट्टेसे इन्हें बड़ा प्रेम था और ख़ासकर आपके लिये ही मँगवाया जाता था। हाथमें पहाड़ी डण्डा और पैरोंमें कभी वार्निशदार जोड़े कभी नागला। इनके साफ़ेकी कथा भी कुछ कम मनोरञ्जक नहीं है। पहले तो ये मामूली इलाहाबादी चौगोशिया टोपी लगाते और कलीदार अङ्गा पहनते थे। मिर्ज़ापुरके एक मल्लई पण्डित दुर्गाप्रसाद महाराजा बनारसके यहाँ नौकर थे। उनकी सफ़ेद पगड़ी इन्हें बड़ी जँची और तभीसे इन्होंने उस तरहकी पगड़ी बाँधनी आरम्भ कर दी और फिर आजतक उसी तरहकी पगड़ी बाँधते हैं। उनकी देखा-देखी पण्डित भगवतीप्रसाद वाजपेयी बाँधने लगे और अब तो बहुत लोग उस मार्गके पथिक बन गए हैं।

गुरुसे भेंट

मदनमोहनकी सर्वतोमुखी शक्तिने उन्हें पाठ्य-पुस्तकों और कौलेज़की चारदीवारीमें ही बन्दी न रहने दिया। जिसका हृदय विशाल हो जाता है और जो अपना सङ्कुचित क्षेत्र छोड़कर सारे संसारसे नाता जोड़ लेता है, जिसके सुख-दुःख एक व्यक्तिके नहीं बल्कि सारे संसारके प्राणियोंके सुख-दुःखमें ओत-प्रोत हो जाते हैं, वह फिर कौलेज़की छोटीसी परिधिके भीतर कैसे समा सकता है। सौभाग्यसे उन दिनों म्योर सेन्ट्रल कौलेज़में संस्कृतके अध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजी थे। मदनमोहन संस्कृत तो पढ़े हुए थे ही, यहाँ आकर उन्हें पण्डित आदित्यरामजीसे पढ़नेका अवसर हुआ। पारसको छूते ही सोना बन गए। पण्डित आदित्यरामजी आदर्श गुरु थे। उन्होंने अपने शिष्य मदनमोहनको परख लिया। उन्होंने समझ लिया कि इस मदनमोहनके स्वरूपमें कोई महापुरुष छिपा बैठा है। उन्होंने मदनमोहनको उत्साहित करना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही समयमें गुरु-शिष्यमें अत्यन्त स्नेह हो गया और यह स्नेह इतना प्रबल हुआ कि पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य केवल कौलेज़के गुरु ही नहीं रह गए बल्कि वे इनके वास्तविक पथप्रदर्शक गुरु बन गए और सच बात तो यह है कि आजके महापुरुष महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयके बनानेमें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीका बड़ा हाथ था।

हिन्दू समाज

उस समय प्रयागके महाजनी टोलेके पास ही मुन्शी काशीप्रसाद वकीलके भवनमें ही सन् १८८० ई० में हिन्दू समाजकी स्थापना हुई और वहीं उसकी बैठकें होने लगीं। इस हिन्दू समाजकी स्थापनामें पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यजीका प्रबल हाथ था। मदनमोहन समाजके प्रधान कार्य्यकर्त्ताओंमें थे। जहाँ किसी बातमें कोई अड़चन पड़ी, झट मदनमोहन उसे अपने हाथमें ले लेते थे और इस ख़ूबीके साथ उसे सुलझाते थे कि बड़े-बड़े लोग दङ्ग रह जाते थे। मदनमोहनकी इस बातसे कुछ लोग चिढ़ भी गए थे कि यह कलका छोकरा बड़ों-बड़ोंके कान काटनेको तैयार है। इनकी बातोंको लोग 'छोटे मुँह बड़ी बात' समझते थे। पर ये भी अपनी आदतसे लाचार थे। क्या करते, किसी-न-किसी तरह काम तो करना ही था। निर्भय होकर ये अपने रास्तेपर चले जाते थे। किसीके कहने-सुननेपर कान नहीं देते थे। शायद इनकी सफलताका एक यह भी कारण है। इन्हीं दिनों मदनमोहनका पण्डित अयोध्यानाथजी तथा पण्डित विश्वम्भरनाथजी जैसे देश-हितैषी नेताओंसे सम्पर्क हुआ।

मध्य हिन्दू समाज

'हिन्दू समाज' में हिन्दुओंको ऊपर उठाने, अपने बलपर खड़ा होने और अपने मिटानेवालोंसे लोहा लेनेका पाठ व्याख्यानों और वादविवादों-द्वारा हो ही रहा था। इधर मदनमोहनने उसीके साथ सन् १८८४ ई० में 'मध्य हिन्दू समाज' के नामसे प्रयागमें एक सभा स्थापित की और दशहरेपर बड़ी धूमधामसे उसका उत्सव किया। दूर-दूरसे उत्तरीय भारतके बड़े-बड़े विद्वान् पधारे, हिन्दू-धर्म और समाजको सुसङ्गठित करनेके अनेक उपायोंपर गम्भीर विचार किया गया। यमुना किनारे महाराज बनारसकी आलीशान कोठीमें मदनमोहनके उद्योगसे दशहरेपर मध्य-हिन्दू-समाजका धूमधामसे उत्सव हुआ। तीन दिनतक उत्सव होता रहा और उसकी चहल-पहल किसी भी राजनीतिक महोत्सवसे कम न थी। उस उत्सवमें विलायतसे ताज़ा लौटे हुए कालाकाँकर-नरेश स्व० राजा रामपाल सिंह भी पधारे। इस अधिवेशनके अध्यक्ष बरावाधिपति वैष्णवचर श्री महावीरप्रसादजी चुने गए थे। पण्डित लक्ष्मी-नारायण व्यास वैद्यके प्रस्तावसे उन्होंने सभापतिका

आसन ग्रहण किया। राजा रामपाल सिंह बीच-बीचमें उठकर सभापतिके काममें इस प्रकार बाधा देते थे और अपना ही भाषण प्रारम्भ कर देते थे जो मदनमोहनको बड़ा कसकता था। वे ही नहीं और भी बहुत लोग इससे असन्तुष्ट थे। पर राजा साहबका नाम बड़ा था और उन्हें रोकनेका प्रयत्न करना सचमुच बड़े साहसका काम था। पर मदनमोहन इसे देरतक न बरदाश्त कर सके। जब कभी राजा साहब ऐसा कहते, वे खड़े होकर कानमें कुछ कहते हुए कई बार देखे गए। वे राजा साहबको रोकते थे। पर राजा साहब मुस्कुरा देते थे।

जलसा समाप्त होनेपर राजा साहबने अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्रमें मध्य-हिन्दू-समाजके इस अधिवेशनकी प्रशंसा तो की पर साथ ही यह भी लिखा कि—"उसमें दो एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि बड़े-बड़े राजा-रईसों और बावदूकों (वक्ताओं) को व्याख्यान देते समय उनके कानमें सलाह देनेकी धृष्टता करते थे।"

मदनमोहनसे राजा साहब कितने चिढ़ गए थे यह छिपा नहीं है, पर यह नाराज़गी बहुत दिन न टिक सकी क्योंकि राजा रामपाल सिंह बड़े गुणोंको परखते थे। इसलिये इसके थोड़े ही दिनों बाद राजा साहब मदनमोहनसे मिले और उन्हें अपने पत्र "हिन्दुस्तान" का सम्पादक बना दिया। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

इस प्रकार सन् १८९१ ई० तक प्रतिवर्ष मध्यम हिन्दू-समाजके महोत्सव हुए जिनमें लोक-कल्याण और देशहितके अनेक विषयोंपर बहुत कुछ कहा-सुना और सोचा-विचारा गया।

लिटरेरी इन्स्टिट्यूट

इसी हिन्दू समाजके साथ-साथ इन्होंने लिटरेरी इन्स्टिट्यूटकी स्थापना की, जिसका उद्देश था साहित्यिक विषयोंकी चर्चा करना, काव्य और साहित्यके गुण-दोषोंपर बातचीत करना, अपना साहित्य-भण्डार भरनेका प्रयत्न करना और जैसे बने वैसे समाजमें साहित्यका प्रचार करना, जिससे लोगोंमें अपने राष्ट्रीय साहित्यका भी ज्ञान हो, साथ ही दूसरे साहित्योंका भी ज्ञान होता चले।

बोलनेका रोग

मदनमोहनको बोलनेका रोग था। यद्यपि उनकी ज़बान कैंचीकी तरह नहीं चलती थी पर उसका प्रवाह पर्वतसे उतरती हुई गङ्गाकी धारासे कम न था जो पवित्र और शुद्ध तो था पर अत्यन्त तीव्र था, इतना तीव्र था कि मदनमोहनके बड़े भाई लक्ष्मीनारायणको छड़ी लेकर इनकी ज़बानका पहरा देना पड़ता था। प्रयागके वैद्य शिवरामजीने इसका अत्यन्त विशद वर्णन दिया है। उसे हम ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देते हैं:—

"पण्डित सरयूप्रसाद मेरी चिकित्सामें थे और मालवीयजी उनके यहाँ आया जाया करते थे। मालवीयजी भी रक्त-पित्तकी बीमारीमें ग्रस्त थे। पण्डित सरयूप्रसादकी सलाहसे उन्होंने भी मेरी चिकित्सा आरम्भ कर दी। मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मैंने बहुत दिनोंतक मालवीयजीकी दवा की थी मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर ही न होता था। मगर मदनमोहनका विश्वास मेरे ऊपर अटल था। उनके घरवाले उनसे नाराज़ होते थे। कहते थे—'शिवरामकी दवा मत करो। वे तुम्हारा बहुतसा रुपया ख़र्च कराते हैं और तुमको ठगते हैं।' उनको मदनमोहका उत्तर विलक्षण था। वे लोगोंसे यही कहते थे कि मेरे ही कुपथ्यसे मेरा रोग नहीं छूट रहा है। शिवरामजीकी चिकित्सामें और उनकी आदमियतमें कोई कमी नहीं है।

मगर घरवाले चिन्तित थे। उनकी चिन्ता भी अकारण न थी। वे मुझसे भी मिलते थे और सचिन्त होकर पूछते थे कि क्या कारण है कि मदन-मोहन आपकी दवामें इतने दिनोंसे हैं मगर अभीतक आरोग्य नहीं हुए। अवस्थामें परिवर्त्तनका भी कोई चिह्न उनमें नहीं मिल रहा है। मैं भी परेशान था। मेरी दवामें रोग दूर करनेकी शक्ति ज़रूर थी मगर पथ्य-हीनको पथ्यसे रहनेके लिये विवश करनेकी ताक़त उसमें न थी। मैंने मालवीयजीके घरवालोंसे कहा कि इनकी बोलनेकी आदत बहुत चढ़ी-बढ़ी है। जबतक यह आदत न छूटेगी तबतक मुँहसे ख़ूनका जाना बन्द न होगा। मगर मदनमोहनको बोलनेका नशा था। चेष्टा करनेपर भी वे बोलना नहीं छोड़ सकते थे।

मदनमोहनके बड़े भाई पण्डित लक्ष्मीनारायणको मेरी सलाह जँच गई। फिर क्या था, वे छड़ी लेकर मदनमोहनके साथ रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मालवीयजीसे एक बड़े सम्मानित व्यक्ति मिले। उस अवसरपर मैं भी मदनमोहनके पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्तिसे और मालवीयजीसे बातें होने लगीं। प्रहरी पण्डित लक्ष्मीनारायण भी छड़ी लिए मौजूद थे। जब उन्होंने देखा कि बात-चीतका ताँता अब पथ्यसे रहनेकी सीमाका उल्लङ्घन कर रहा है तब उन्होंने इस तरफ़ मदनमोहनका ध्यान आकर्षित किया। मदनमोहन तो लीन थे। उन्हें पथ्यापथ्यकी कोई परवाह न थी। लाचार होकर लक्ष्मीनारायणजीको कहना पड़ा—'बस भाई!' उस समय मदनमोहनको बहुत बुरा लगा। वे झुँझला गए। वे यह कहते हुए वहाँसे चल दिए—"हमें ऐसी दवाकी ज़रूरत नहीं।" मगर पण्डित लक्ष्मीनारायण-पर उनकी इस झुँझलाहटका कुछ भी असर न पड़ा। उन्होंने छड़ी लेकर मदनमोहनके साथ रहना न छोड़ा।"

बातके धनी

मदनमोहन अपनी हठके धनी हैं। जो एक बार मनको जँच गई उसका चाहे जितना विरोध हो, कितनी गालियाँ मिले, सारा संसार ही क्यों न रूठ जाय, पर मदनमोहन टस-से-मस होनेवाले नहीं। एक बार जिन दिनों ये कौलेजमें पढ़ते थे उन दिनों लौर्ड रिपन प्रयागमें आए। लौर्ड रिपन भारतके बड़े हितैषियोंमें समझे जाते थे किन्तु अंग्रेज़ लोग उन्हें बड़ी बुरी निगाहसे देखते थे। जब मदनमोहनको मालूम हुआ कि लौर्ड रिपन आ रहे हैं तो उन्होंने उनका धूमधामसे स्वागत करनेका आयोजन किया। प्रिन्सिपल हैरिसन् यद्यपि बड़े नेक और सज्जन अंग्रेज़ थे किन्तु रिपनके स्वागतकी बात वे नहीं सह सके। उन्होंने आज्ञा दे दी कि यह स्वागत न होगा। पर मदनमोहन तो डरनेवाले नहीं थे, इन्होंने प्रिन्सिपलको तो ख़बर न होने दी और रातोरात स्वागत करने और जलूस निकालनेकी पूरी तैयारी कर ली। अगले दिन लौर्ड रिपन आए, बड़े गाजे-बाजे और धूमधामके साथ लौर्ड रिपनका शानदार जलूस निकला, उनका स्वागत किया और मानपत्र दिए गए। इनके विरोधी बेचारे अवाक् होकर मुँह ताकते रह गए। करते क्या। यह सभी जान गए थे कि इस सारी धूमधामकी तहमें मदनमोहनका उद्योग छिपा बैठा था।

कौलेज-जीवन

सन् १८८१ ई० में आपने म्योर सेण्ट्रल कौलेजसे ही एफ़्० ए० पास किया। सन् १८८३ ई० में आप बी० ए० की परीक्षा देने आगरा गए। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आप उस साल असफल रहे। बहुधन्धी आदमीके साथ यह भी तो एक मुसीबत होती है कि वह यदि दूसरोंकी भलाई सोचनेमें लग जाता है तो उसे फिर अपनी उन्नतिकी चिन्ता नहीं रहती, उसे दूसरोंकी चिन्तासे ही फ़ुरसत नहीं मिलती। पर अगले वर्ष सन् १८८४ ई० में मदनमोहनने कलकत्तेसे बी० ए० पास कर लिया और बी० ए० पास करनेके साथ ही स्वतन्त्र मदनमोहनको नून, तेल, लकड़ीकी फ़िक्र करनेका आदेश मिला। मदनमोहनकी बड़ी इच्छा थी कि एम्० ए० करें। एक दिन यों ही 'हिन्दू समाज' की बैठकमें पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीके पितासे भेंट हुई और बातचीतमें यही तै हुआ कि संस्कृतमें एम्०ए० दिया जाय और उसके लिये सिद्धान्त मुक्तावली पढ़ें। बस, मदनमोहन उनके पास सप्ताहमें तीन दिन पढ़नेको जाने लगे। उनके पास वे अपनी पोशाकमें नहीं जाते थे बल्कि ठेठ विद्यार्थीके ढङ्गसे जाते थे—धोतीपर एक दुपट्टा ओढ़े। उस समय मदनमोहन

लम्बी शिखा रखते थे। आजकलके कौलेज्के नौजवानोंके समान उन्होंने हिन्दुत्त्वके चिह्नको वहा नहीं दिया था बल्कि बड़े गौरवके साथ उसकी रक्षा और उसका निर्वाह किया।

गृहस्थीका भार

घरकी दशा ठीक नहीं थी। अब अधिक दिनोंतक इन्हें ख़र्च नहीं मिल सकता था और इसी लिये न चाहते हुए भी इन्हें अपने विद्या-मन्दिरसे विदा लेनी पड़ी। जो व्यक्ति ऊपर चढ़ा चला जा रहा हो और शिखरके बिलकुल पास पहुँचकर उसे उतर आनेका आदेश मिले, उसे कितना दुःख होता होगा यह तो कहनेकी बात नहीं है। पर लाचारी थी। पिताजी कहाँतक सहायता करते! उन्होंने इतना भी कर दिया, क्या कम था? फिर सारे परिवारकी आँख मदनमोहनपर लगी थीं। पढ़-लिख गया है, कुछ कमायगा। ऐसे समयमें मदनमोहनने यही उचित समझा कि पढ़ना छोड़कर कुछ काम करें और इन्होंने दो-तीन महीने एम्० ए० कक्षामें पढ़कर भी कौलेज् छोड़ देनेमें ही कल्याण समझा।

झक्कड़सिंह

कौलेज्के दिन सचमुच इनके मस्तीके दिन थे। न ऊधोका लेना न माधोका देना। जो मौजमें आया वह निश्चिन्त होकर किया, कभी किसीके आगे भयसे सिर नहीं झुकाया। बड़ोंके आगे अदब और श्रद्धासे ज़रूर झुके, पर जो इनसे कड़ा पड़ा उसके आगे ताल ठोंककर खड़े भी हो गए। अपने कौलेज्के दिनोंमें इन्होंने 'जेण्टिलमैन' नामका एक प्रहसन लिखा था उसमें इन्होंने दो कविताएँ लिखी थीं। एकमें तो इन्होंने झक्कड़सिंहके रूपमें अपना चित्रण किया है और दूसरेमें इन्होंने उस समयके पढ़े-लिखे जैण्टिलमैनोंका ख़ाका उड़ाया है। दोनों कविताएँ क्रमसे नीचे दी जाती हैं।

अपने सम्बन्धमें

गरे जूहीके हैं गजरे पड़ा रङ्गी दुपट्टा तन।
भला क्या पूछिए धोती तो ढाकेसे मँगाते हैं॥
कभी हम वारनिश पहनें कभी पञ्जाबका जोड़ा।
हमेशा पास डण्डा है ये झक्कड़सिंह गाते हैं॥
न ऊधोसे हमें लेना न माधोका हमें देना।
करें पैदा जो, खाते हैं व दुखियोंको खिलाते हैं॥
नहीं डिप्टी बना चाहें न चाहें हम तसिल्दारी।
पड़े अलमस्त रहते हैं युँहीं दिनको बिताते हैं॥
न देखें हम तरफ़ उनकी जो हमसे नेक मुँह फेरें।
जो दिलसे हमसे मिलते हैं झुक उनको देख जाते हैं॥
नहीं रहती फ़िकर हमको कि लावें तीर औ लकड़ी।
मिले तो हलवे छन जावें नहीं भूरी उड़ाते हैं॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचड़ेसे गृहस्थीके।
छुट्टो झक्कड़पना ले लो यही हम तो सिखाते हैं॥
हमें मत भूलना यारो बसे हम पास 'मनमोहन'।
हुई है देर जाते हैं तुम्हारा शुभ मनाते हैं॥

जेण्टिलमैनोंकी दशा

अहले यूरप पूरा जेण्टिलमैन कहलाता है हम।
डोरट से बाबू टु मी मिस्टर कहा जाता है हम॥
गङ्गा जाना पूजा जप-तप छोड़ो ये पाखण्ड सब।
घूरनेमें मुँहको गिरजाघरमें नित जाता है हम॥
भाँग गाँजा चरस चण्डू घरमें छिप-छिप पीते थे।
अब तो बेखटके हमेशा 'वाइन' ढरकाता है हम॥
हिन्दुओंका खाना-पीना हमको कुछ भाता नहीं।
बीफ चमचेसे कटे होटलमें जा खाता है हम॥
बाबू ओ चाचाका कहना लाइक हम करता नहीं।
पापा कहना अपने बच्चोंको भी सिखलाता है हम॥
कोट और पतलून पहने हैट एक सिरपर धरे।
ईवनिङ्ग में वाक करने पार्कको जाता है हम॥

इस प्रकार विद्या प्राप्त करके, बड़े-बड़े महापुरुषोंका आशीर्वाद पाकर, सब गुणोंसे अलङ्कृत होकर, यह स्नातक विद्यामन्दिरको नमस्कार करके सारे राष्ट्र, सम्पूर्ण जाति और विस्तृत समाजकी सेवा करनेकी दीक्षा लेकर मैदानमें आ कूदा।

मैदानमें

अध्यापक मालवीयजी

जब मदनमोहनके परिवारकी दरिद्रता उनकी पढ़ाईका द्वार छेंककर खड़ी हो गई तो उन्हें अपनी इच्छा और अपने गुरु पण्डित आदित्यरामजीके अनुरोधका बलिदान करके उसका लोहा मानना पड़ा और वे अपने पूज्य पिताजी और माताजीके बुढ़ापेकी लाठी बननेकी चिन्तामें लगे। मदनमोहनके गुण किसीसे छिपे नहीं थे। छोटे-बड़े उन्हें जानते थे। इधर कौलेज् छूटा उधर गवर्नमेण्ट हाइ स्कूलमें एक अध्यापककी माँग हुई। मदनमोहन बी० ए० अपने पुराने स्कूलमें पचास रुपये महीनेपर अध्यापक हो गए। अब इनके परिवारके दिन फिरे। इन्होंने 'मल्लई' नामको संस्कृत करके उसे 'मालवीय' बना दिया और अब ये मालवीय कहलाने लगे। हम भी अब आगे इन्हें मालवीयजी कहकर पुकारेंगे। अब ये पण्डित मदनमोहन मालवीय बी०ए० हो गए। इनके मालवीय नामका प्रचार इतना हुआ कि इनके परिवार और कुटुम्बवालोंने तो इस नामको अपनाया ही, साथ ही अन्य श्रीगौड़ ब्राह्मण भी अपनेको मालवीय लिखने लगे। यह रोग फिर तो ऐसा बढ़ा कि मालवासे ज़रा सा भी सम्बन्ध रखनेवाले लोग अपने नामके पीछे मालवीय लिखने लगे। महापुरुषोंके नाममें भी तो जादू होता है।

गवर्नमेण्ट हाईस्कूल प्रयागमें अधयपक पण्डित मदनमोहन मालवीयजी

मालवीयजी स्कूलमें पढ़ाने लगे। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि विद्यादान सब दानोंसे बढ़कर है और अध्यापकके समान कोई दूसरा भला काम नहीं है, पर साथ ही यह आवश्यक है कि अध्यापकमें कुछ गुण भी होने चाहिएँ, वे हैं सच्चरित्रता, मृदुभाषिता और अपने विषयका ज्ञान। जिस अध्यापकमें ये तीन गुण न हों वह अध्यापक कैसा। अध्यापक स्वयं एक विद्यालय होता है। उसे देखकर ही विद्यार्थी यदि प्रभावित न हों, और उसे अपना आदर्श न मान लें तो फिर

अध्यापक क्या ख़ाक हुआ। मालवीयजी इन तीनोंसे बातोंमें धनी थे। थोड़े ही दिनोंमें विद्यार्थी इनसे हिलमिल गए। जिन्होंने इनके चरणोंमें बैठकर पढ़ा है उनका कहना है कि ऐसा योग्य अध्यापक तो देखनेमें नहीं आया। अध्यापन-कुशलताकी एक घटना हमें याद है। एक बार वे घूमते-घामते काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजमें आए। वहाँपर कुछ शिक्षक-छात्र पढ़ा रहे थे। उन्हें पढ़ाते देखकर अचानक उन्हें प्रयागका गवर्नमेण्ट हाइ-स्कूल याद आ गया। उनके हृदयके भीतर बैठा हुआ अध्यापक पुरानी याद लेकर जाग उठा। उन्होंने तत्काल वहाँ काम करनेवाले अपढ़ मिस्त्रियों और मज़दूरोंको एकत्र किया और कहा कि देखो हम तुम्हें लिखना सिखाते हैं। और उन्होंने थोड़ी ही देरमें इस ख़ूबीसे उन्हें समझा-समझाकर 'राम' लिखना बताया कि अक्षरोंका ज्ञान हुए बिना भी, अ आ इ ई और क ख ग बिना सीखे भी वे लोग बिना परिश्रमके 'राम' लिखने लगे। उनका यह पढ़ाना देखकर टीचर्स ट्रेनिङ्ग कौलेजके अध्यापक भी दङ्ग रह गए।

अपने वेशसे, अपनी वाणीसे और अपने व्यवहारसे वे आदर्श अध्यापक रहे हैं और अब भी जब कभी वे विद्यार्थियोंको उपदेश देने बैठते हैं, या कभी एकादशी-कथा कहनी प्रारम्भ करते हैं उस समय उनके कण्ठसे केवल कथाकार व्यास ही नहीं बोलता है बल्कि व्यासकी अन्तरात्मामें बैठा हुआ अध्यापक भी संयत भावसे बोलता सुना जाता है।

उसी गवर्नमेण्ट हाइस्कूलमें इनके चचेरे भाई पण्डित जयगोविन्द मालवीय भी संस्कृत पण्डित थे। वे कोरे नाम मात्रके पण्डित न थे, बल्कि व्याकरणके बड़े विद्वान् थे। मालवीयजीका और उनका बड़ा अच्छा साथ रहता। उस स्कूलमें एक बात मालवीयजीको सदा खटकती रहती थी और वह थी धर्म-शिक्षाका अभाव। जी दुखनेकी सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इसाई और मुसलमानोंके लड़के तो अपने धर्मों, धर्म-गुरुओं, धर्म-ग्रन्थों तथा धार्मिक आख्यानोंको बहुत कुछ जानते थे, पर हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्मका क ख ग भी नहीं जानते थे और न जाननेकी चेष्टा ही करते थे। वे ऐसे निकम्मे और निर्जीव थे कि मानों उनके न हृदय है न आत्मा। धर्म एक ढोंग मात्र समझा जाता था और जो धर्मकी बातें करता था वह ढोंगी समझा जाता था। हिन्दू बालकोंकी यह नास्तिकता और उदासीनता मालवीयजीको बहुत अखरी। उन्हें यह भी देखकर बड़ा दुःख हुआ करता था कि हिन्दू बालक अपने धर्मपर, अपने देवी-देवताओंपर, अपने आचार-विचारपर और अपने समाजपर दूसरोंके आक्षेप सुनकर भी अनसुना कर देते थे जैसे वह निस्सार हो, तत्त्वहीन हो। पर मालवीयजी कर क्या सकते थे। इस बातका उन्हें सदा ही खेद रहा।

मालवीयजीकी पगड़ी, दुपट्टे और अङ्गेकी पोशाकमें पूरे पैरके सफ़ेद मोजे अब और बढ़ गए। मालवीयजीके पढ़ानेके ढङ्ग और सबके प्रति इनके मधुर व्यवहारको देखकर दो वर्षमें ही इनका वेतन पचहत्तर रुपए हो गया। इनके विद्यार्थियोंमें प्रयागके प्रसिद्ध नागरिक डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी भी रह चुके थे। स्कूलमें अध्यापन करते समयकी एक घटना कभी नहीं भूल सकती। एक बार लड़कोंकी परीक्षा हो रही थी। एक मुसलमान विद्यार्थी एक दूसरे विद्यार्थीकी नक़ल कर रहा था। मालवीयजीने ताड़ लिया और झट उसे कमरेसे बाहर कर दिया। वह लड़का एक नम्बरका शैतान था। कहने लगा कि कभी समझ लेंगे। पर मालवीयजी इस गीदड़ भभकीसे डरनेवाले जीव नहीं थे। सबने बार-बार मालवीयजीको समझाया कि इस बदमाशके मुँह न लगिए, न जाने क्या कर बैठे। आप पैदल न जाया करें, इक्केपर जायँ। पर मालवीयजीने जवाब दिया कि हमारे क्या हाथ नहीं हैं। हम पैदल ही जायँगे। ये बराबर पैदल ही जाते रहे। मालवीयजीको

छेड़नेकी तो उसे हिम्मत न हुई पर उस दूसरे लड़केको उसने पकड़ ही लिया और दिनभर बैठाए रक्खा। बेचारेको कुछ लोगोंकी मददसे छुटकारा मिला। पर मालवीयजीके व्यक्तित्वका उस दुष्ट लड़केपर इतना असर हुआ कि वह आकर इनके पैरोंमें गिरा और माफ़ी माँगी।

भारती-भवन

मालवीयजी कोरे अध्यापक नहीं थे। पढ़ानेके बाद जो कुछ समय मिलता उसे समाज-सेवा और जन-सेवामें लगाते थे। वह ज़माना भी कुछ दूसरा ही था। सरकारी नौकरी करते हुए भी वे कांग्रेसमें शामिल हुए। सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी स्थापना हुई थी। मालवीयजी अपने निर्भीक गुरु पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यके साथ सन् १८८६ ई० में होनेवाली कलकत्तेकी दूसरी कांग्रेसकी बैठकमें पहुँचे। यहींसे मालवीयजीकी जीवन-धारा बदल गई। किस प्रकार इन्होंने स्कूल छोड़ा, सम्पादक बने और वकालत की, यह भी एक ऐतिहासिक घटना है। इसका ज़िक्र हम आगे करेंगे।

लालडिग्गी मुहल्लेमें लाला गयाप्रसादके पुत्र लाला ब्रजमोहनलाल रहते थे। वे हिन्दीके बड़े प्रेमी थे। बचपनमें उन्हें हिन्दी पुस्तकोंसे प्रेम हो गया था, यहाँतक कि कई सौ हिन्दी पुस्तकें जुटा ली थीं। स्वर्गवासी विद्वत्-शिरोमणि पण्डित जयगोविन्द मालवीय और रायबहादुर बाबू लालबिहारी बी० ए० की प्रेरणा और सहायतासे वही पुस्तकालय, जो पहले एक व्यक्तिका था, सर्वसाधारणके कामका हो गया और १५ दिसम्बर, सन् १८८९ ई० को भारती-भवन पुस्तकालयकी स्थापना हो गई। आरम्भमें पण्डित जयगोविन्दजीने अपनी बहुतसी अमूल्य हस्तलिखित पुस्तकें भारती-भवनको सौंप दीं। इसी तरह बहुतसे महाशयोंने भी अपनी-अपनी कुछ पुस्तकें दे दीं और वह एक छोटासा सार्वजनिक पुस्तकालय बन गया—फिर पण्डित जयगोविन्द मालवीय, रायबहादुर बाबू लालबिहारी, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी, डाक्टर जयकृष्ण व्यास, बाबू कालिकाप्रसाद, पण्डित रामनाथ मिश्र और पण्डित देवकीनन्दन तिवारीके उद्योगसे पुस्तकालय निरन्तर उन्नति करता गया। लाला बृजमोहनलालजीके कोई सन्तान न थी। उनकी इच्छा भारती-भवनको अच्छे रूपमें चलानेकी ही रही। उनकी यही इच्छा थी कि यह अजर-अमर हो जाय। अन्तिम बीमारीकी अवस्थामें भी उनको यही चिन्ता रहती थी कि इसके चिरस्थायी होनेका अच्छा प्रबन्ध हो जावे, इसी कारण बीमारीकी दशामें भी अपने परम मित्र बाबू लालबिहारीजीको भारती-भवनके लिये दान-पत्र लिखवाने तथा उसकी रजिस्टरी करा देनेके लिये उठते-बैठते टोका करते थे। अपनी आरोग्यतासे निराश होकर उन्होंने रायबहादुर लाला रामचरणदास, रईस प्रयागको बुलाकर स्वयं यह इच्छा प्रकट की कि वह भारती-भवनके लिये भवन बनवानेका भार ले लें। सुयोग्य रायबहादुर लाला रामचरणदासके इस भारको स्वीकार कर लेनेपर आपको इतना आनन्द हुआ था कि आपने आनन्दसे अश्रुपात किया। जब उन्होंने बाबू लालबिहारीसे सुन लिया कि भारती-भवनका दान-पत्र लिख गया और अब उसके चिरस्थायी होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं है तब आपको बड़ी शान्ति हुई। लाला ब्रजमोहनलालजीके जीवनीके अन्तिम अङ्कमें यह भी बात सदा स्मरणीय रहेगी कि जबतक भारती-भवनके नए स्थानकी नींव नहीं पड़ी, वे बराबर इसके लिये व्यग्र थे, किन्तु जैसे ही उन्होंने यह सुना कि रायबहादुर लाला रामचरणदासजीने नींव डाल दी त्यों ही मानो इनके जीवनका उद्देश पूरा हो गया और वे तुरन्त ही बेसुध हो गए और दूसरे दिन एकादशीको शरीर छोड़ दिया।

लाला ब्रजमोहनलालजीने अपने अन्तिम समयमें जो दान-पत्र भारती-भवनके लिये लिखा उसके द्वारा भारती-भवनका कार्य्य जिन सज्जनोंको सौंपा गया उनमें

पण्डित मदनमोहन मालवीय, बी० ए०, एल्एल्० बी०, वकील हाइकोर्ट प्रयाग भी थे। इस पुस्तकालयको

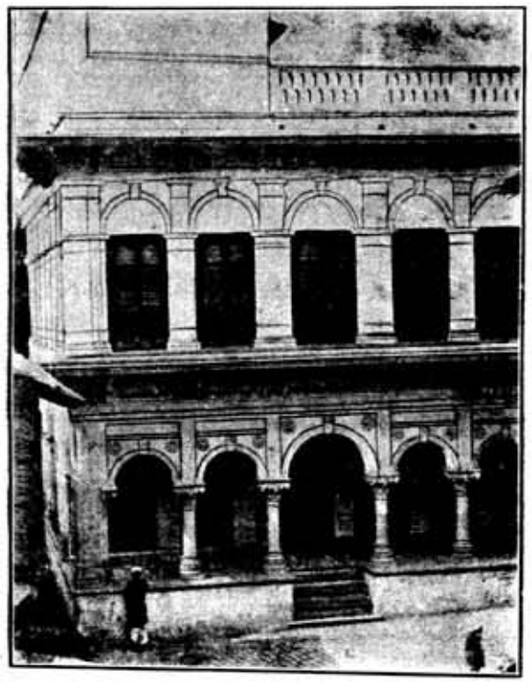

भारती-भवन पुस्तकालय, प्रयाग।

उन्नत करनेमें और इसे स्थापित करनेमें मालवीयजीका कुछ कम हाथ न था। अबतो उस पुस्तकालयके कारण वह मुहल्ला ही भारती-भवन कहलाने लगा है। भारती-भवनमें इस समय लगभग बारह हज़ार पुस्तकें हैं। मालवीयजीके उद्योगसे इसे तीन सौ पचहत्तर रुपये साल डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे और पाँच सौ रुपये साल गवर्नमेण्टसे सहायता मिलती है। भारती-भवनका नाम मालवीयजीसे ऐसा जुड़ गया है कि सब लोगोंका विश्वास है कि भारती-भवन पुस्तकालय मालवीयजीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है।

मैकडोनेल युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस

म्योर सेण्ट्रल कौलेजने तो विद्यार्थियोंको आकर्षित किया ही था, थोड़े दिनों बाद सन् १८८७ ई० में जब इलाहाबाद विश्वविद्यालयकी नींव पड़ी तब तो और भी विद्यार्थी प्रयाग आने लगे। यह युक्तप्रान्तका सबसे पहला विश्वविद्यालय था इसलिये चारों ओरसे विद्यार्थियोंके झुण्ड-के-झुण्ड आने लगे। पर छात्रालय काफ़ी नहीं थे, इसलिये विद्यार्थियोंको बड़ी असुविधा होने लगी। ख़र्च भी अधिक होता था और रहने, खाने-पीने और पढ़नेमें भी अड़चनें पड़ने लगीं। मुसलमान और इसाई विद्यार्थियोंकी संख्या भी कम थी और उनके रहन-सहन हिन्दुओंसे भिन्न होनेके कारण उन्हें असुविधाएँ भी उतनी न होती थीं। हिन्दू विद्यार्थियोंका यह कष्ट मालवीयजीने भली प्रकार समझ लिया, क्योंकि वे कष्टका अनुभव करते थे और दूसरेकी व्यथाका अन्दाज़ा लगा सकते थे। उन्होंने झट यह तै कर लिया कि हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेके लिये एक आदर्श छात्रालय बनवाया जाय जिसमें प्रयागमें पढ़नेके लिये आनेवाले हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेका सुपास हो। कर्मण्य पुरुषको तो विचार करने भरकी देर होती है। गुप्त शक्तियाँ स्वयं उसका हाथ बटानेको व्याकुल रहा करती हैं। मालवीयजीके सङ्कल्पका सारे प्रान्तने जी खोलकर स्वागत किया। उस समय म्योर सेन्ट्रल कौलेज ही प्रथम श्रेणीका विद्यालय था। सभी लोग अपने लड़कोंको वहीं भेजना चाहते थे और सभीके मनमें छात्रालयका अभाव खटकता था। फिर इस उत्साहके पीछे गवर्नर साहबकी प्रेरणाका इशारा पाकर बहुत लोगोंने अपनी थैलियाँ खोल दीं। जिसके मनमें दया, उदारता, करुणा, परोपकार आदि सद्भावोंका सर्वथा अभाव होता है वे भी अफ़सरोंके एक इशारेपर सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्य बन जाते हैं। यह भाव इस जागृतिके युगमें भी अपना असर बनाए हुए है। युक्तप्रान्त भरमें घूम-घूमकर उन्होंने रुपया एकत्र किया। किस-किस तरह उन्हें रुपया मिला, उसकी एक ही घटना देना काफ़ी होगा। प्रयागमें जब हिन्दू छात्रावास बनना जारी था, उस समय मालवीयजी रायबहादुर लाला साँवलदासके

पास गए जब वे कार्य्यालय जा रहे थे और उनसे एक हज़ार रुपया देनेको कहा जिससे उनके नामसे एक कमरा बन जाय। मालवीयजीकी मधुर वाणीसे वे इतने प्रभावित हुए कि बिना सोचे विचारे उन्होंने एक हज़ारका चैक उन्हें दे दिया। पीछेसे उन्होंने सोचा कि इसपर कुछ विचार करना चाहिए था और शीघ्रता नहीं करनी चाहिए थी किन्तु पण्डितजीकी प्रभावशाली प्रार्थनासे वह उनके वशमें हो गए थे।

सन् १९०३ ई० में युक्तप्रान्तके उदारचेता गवर्नर सर एण्टनी मैकडोनल्के नामपर दो सौ पचास हिन्दू विद्यार्थियोंके रहनेके योग्य एक विशाल भवन बन गया जिसका नाम पड़ा 'मैकडोनल् युनिवर्सिटी हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस'। यह भवन प्रयागके दर्शनीय भवनोंमेंसे एक है। मैकडोनल् साहबका जो यश-फैला वह तो था ही, बहुत दिनोंतक वह छात्रालय 'मालवीयजीका बोर्डिङ्ग हाउस' कहलाता रहा। कम-से-कम उस बोर्डिङ्ग हाउसके साथ-साथ जिसे मालवीयजीका परिश्रम और उनकी तत्परता स्मरण नहीं हो आती उसे यदि लोग कृतघ्न कहें तो कुछ बुरा नहीं।

मिण्टो पार्क

पहले अध्यायमें ही हम लौर्ड कैनिङ्गके शानदार दरबारका उल्लेख कर चुके हैं। उस दरबारको हुए पचास वसन्त बीत गए किन्तु महारानी विक्टोरियाकी उस उदार घोषणाको पुनर्जीवित करने और उसकी याद दिलानेके लिये भारतने कुछ भी न किया। सन् १९११ ई० में जब लौर्ड मिण्टो यहाँसे विदा लेनेवाले थे उस समय मालवीयजीको यह सूझा कि जिस स्थानपर लौर्ड कैनिङ्गका दरबार हुआ था उसी स्थानपर एक घोषणा-स्तम्भ (प्रोक्लेमेशन पिलर) स्थापित किया जाय और उसके चारों ओर एक सुघर वाटिका लगाई जाय जिसके साथ लौर्ड मिण्टोके नामका सम्बन्ध हो। घरमें सूत न कपास, मालवीयजीने झट वाइसरायको जमुना किनारे मिण्टो पार्कके शिलान्यासके लिये निमन्त्रित कर दिया। लौर्ड मिण्टोने स्वीकार करके एक दिन भी नियत कर दिया। गोखलेजीको यह बात मालूम हुई तो वे बड़े चिन्तित हुए। वे जानते थे कि अभी रुपया एकत्र नहीं हुआ है। उन दिनों सुप्रीम कौन्सिलकी बैठक हो रही थी और मालवीयजी भी वहीं थे। गोखलेजी उनके पास गए और बोले, "पण्डितजी! यह आपने क्या किया? आपके पल्ले एक पैसा तो है नहीं और आपने वाइसरायसे पार्कका शिलान्यास कराने की तिथि भी तै कर ली। बहुत थोड़ा समय रह गया है, कृपाकर कौन्सिलकी बैठक छोड़ दीजिए और

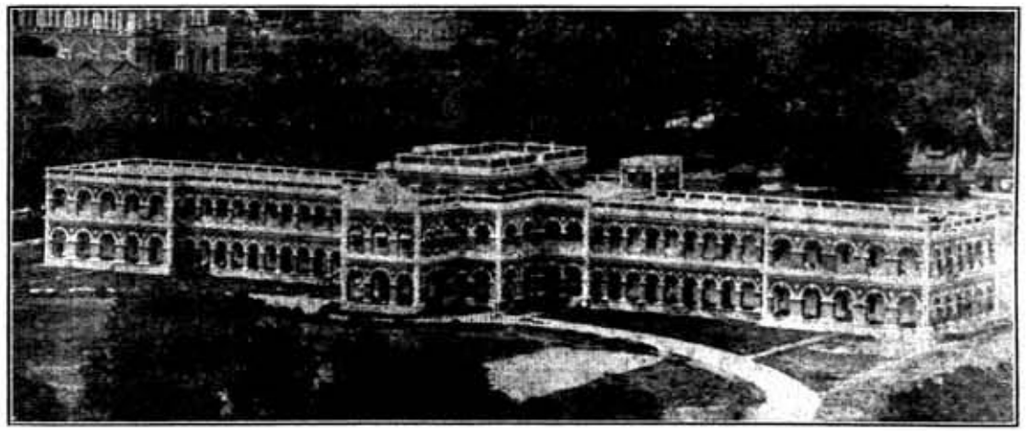

युनिवर्सिटी मैकडोनल् हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस

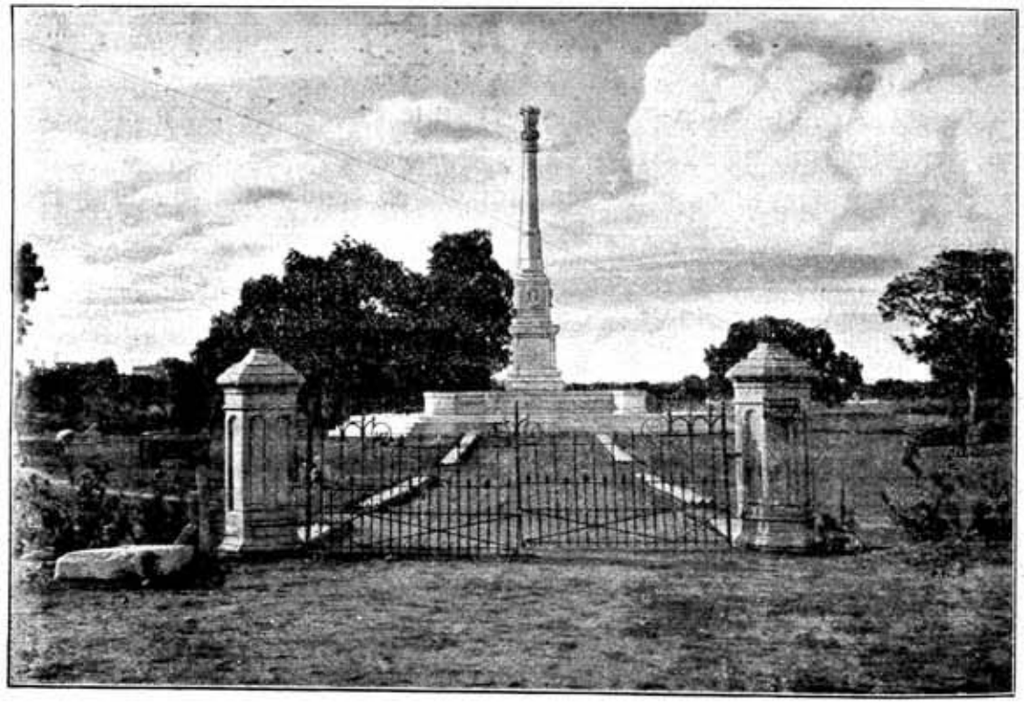

प्रयागमें ६ नवम्बर सन् १६१८ ई० को स्थापित मिण्टो पार्क

जाकर रुपया इकट्ठा कीजिए। यदि समयसे रुपया न मिला और आपकी बेइज़्ज़ती हुई तो हम लोगोंको भी बेइज़्ज़ती होगी।" सचमुच उन्होंने बड़ी उत्सुकतासे कहा था। पर मालवीयजी मुस्कराए। उनकी मुस्कराहट जिन्होंने देखी है वे तो उसकी भली प्रकार कल्पना कर सकते हैं। उन्होंने गोखलेजीसे कहा, "आपको इस चिन्ताके लिये धन्यवाद। घबराइए नहीं, सब रुपये आ जाते हैं। मुझे इसके लिये कहीं जाना नहीं होगा। मेरे पत्र ही रुपया ले आवेंगे।" मालवीयजी सचमुच कहीं नहीं गए। उनकी चिट्ठियाँ ही एक लाख बत्तीस हज़ार आठ सौ सत्तानवे रुपया ले आईं। गङ्गा-यमुनाके पवित्र सङ्गमपर ६ नवम्बर सन् १६१० ई० को बड़ा भारी महोत्सव हुआ। वह ज़माना ज़रा टेढ़ा था। वाइसराय लोग अपनी जान हथेलीपर लिए चलते थे। न जाने कब क्या हो जाय। इसी लिये लौर्ड मिण्टोके आनेके समयकी सूचना न दी गई और वे चुपचाप आए जैसे आषाढ़का पहला बादल आता है—अचानक। चारों ओर बड़ा पहरा था। मिण्टो पार्कके अहातेमें आने जानेकी बड़ी रोक-टोक थी पर मालवीयजीने सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और सबके लिए द्वार खोल दिया। प्रातःकाल ११ बजे सदलबल लौर्ड मिण्टो और लेडी मिण्टो पधारे। क़िलेकी सेनाने तोपोंकी सलामी दी। औल इण्डिया मिण्टो मेमोरियल कमिटीके संयुक्त मन्त्री पण्डित मोतीलाल नेहरूने स्वागतपत्र पढ़ा जिसका लौर्ड मिण्टोने उत्तर दिया और उक्त पार्कका शिलान्यास किया। एक ताँबेके पात्रमें अभ्युदय, लीडर, पायोनियर तथा अन्य पत्रोंकी प्रतियाँ तथा उक्त घोषणा-स्तम्भका विवरण-पत्र रखकर नींवमें रख दिया गया। इसके बाद वाइसराय अपने दलबल सहित प्रदर्शिनी और बेलकम क्लबको देखने गए। आकाश अबतक तो साफ़ था। धूप निकली हुई थी। पर अचानक घटा घिर आई और बात-की-बातमें ज़ोरोंकी वर्षा होने लगी जो वाइसरायके विदा होनेतक होती रही। पैंतालीस मिनट घूमनेके बाद ये लोग द्वारपर पहुँचे जहाँ मालवीयजीसे कुछ देरतक बात करके और हाथ मिलाकर लौर्ड मिण्टो बनारसके लिये रवाना हो गए। धूमधामसे उत्सव समाप्त हो गया। समयपर रुपये भी आ गए, मालवीयजीकी भी बेइज़्ज़ती न होने पाई और गोखलेजीकी इज़्ज़त भी बच गई। जिस जगह खड़े होकर बड़े-बड़े वीर आगेका मार्ग नहीं खोज पाते उसी जगह खड़े होकर आशाकी एक बड़ी हल्की किरणके सहारे मालवीयजी आगे बढ़ते चले जाते हैं। यही आशा उनके सफल-जीवनकी कुञ्जी है। पर जैसे बहुतसे ताले कुञ्जी मिल जानेपर भी नहीं खुल पाते उसी प्रकार जान पड़ता है कि इस कुञ्जीके प्रयोग करनेका गुर उन्हींको आता है। देखें यह गुर वे अपने किस चेलेको दे जाते हैं।

अख़बारी दुनियामें

सन् १८८६ ई० की राष्ट्रीय महासभाने मालवीयजीको सारे भारतवर्षसे परिचय करा दिया। राष्ट्रीय महासभाके मञ्चपर पहली बार खड़े होते ही उन्होंने सारे देशको अपनालिया। मालवीयजी कभी-कभी कहा भी करते हैं कि यही राष्ट्रीय महासभा मेरी सारी सफलताकी पहली सीढ़ी थी। किस मन्त्रसे इन्होंने सबके हृदयपर विजय पाई थी, सबके नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित किया था और सबके प्रेम-पात्र बने थे यह तो आगे कहा जायगा पर इतना ही कहना बहुत होगा कि उस राष्ट्रीय महासभामें उपस्थित सभी नेताओंने समझ लिया कि प्रयागका यह ब्राह्मण मामूली आदमी नहीं है। वहाँ बैठे हुए कई महापुरुषोंने प्रगट और मनमें यह भविष्यवाणी की थी कि निकट भविष्यमें सारा देश मिलकर अपनी रास इस जवानके हाथमें सौंप देगा।

कालाकाँकरके स्वर्गीय राजा रामपालसिंह उन्हीं दिनों विलायतसे योरोपियन महिलासे विवाह करके लौटे थे। उनके खानपान और उनके रहन-सहनके ढङ्गको देखकर तो कोई भी यह विश्वास नहीं कर सकता था कि उनके विलायती कोटके नीचे उदार हृदय, उनके अंग्रेज़ी टोपके नीचे विचारशील मस्तिष्क और उनकी शराबकी प्यालीमें देशभक्तिका नशा छिपा हुआ है। पर जब वे किसी सभाके सभापतिका आसन ग्रहण करनेके लिये बुलाए जाते तो वे अपना विलायती ठाठ बदल देते थे और चौगोशिया टोपी, चपकन और पाजामा पहनकर जाते थे। राष्ट्रीय महासभाके ज़ोरदार नेताओंमें वे भी एक थे और वहाँके मञ्चपर वे शेरकी तरह दहाड़ते थे। पूर्व और पश्चिम दोनों राजा साहबमें मिलकर रहते थे। राजा साहब मख़मली गद्दोंपर नींद लेनेवाले कोरे राजा साहब नहीं थे। उन्होंने विलायत तो देखा ही था पर हिन्दुस्थानको भी अच्छी तरह पहचाना था। टूटी हुई मड़ैयामें किसानके परिवारकी भूख और ग़रीब मज़दूरके आँसू उनसे छिपे न थे। साथ ही वे यह भी समझ गए थे कि अपनी बोलचालकी भाषा मातृभाषाको बिना ऊपर उठाए दीन भारत गूँगा रह जायगा, वह अपनी व्यथा कह न पावेगा। इसीलिये उन्होंने 'हिन्दुस्थान' नामका एक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। वे उसे दैनिक बनाना चाहते थे पर उन्हें किसी ऐसे आदमीकी तलाश थी जो 'हिन्दुस्थान' को सँभाल सके। कलकत्तेमें होनेवाली दूसरी राष्ट्रीय महासभाके मञ्चपर मीठे, पर प्रभावशाली शब्दोंकी अटूट धारा बहाता हुआ एक ब्राह्मण दिखाई दिया जिसके तेजस्वी मुखसे और धौले चिट्टे कपड़ोंसे सचाई, निडरपन, उत्साह और योग्यताका प्रकाश निरन्तर बरस रहा था। सन् १८८४ ई० के मध्य हिन्दू-समाजके जल्सेमें धृष्टता करनेवाले जिस लौंडेसे राजा रामपालसिंह बेतरह चिढ़ गए थे उसे आज उन्होंने परख लिया। जिसे वह काँचका टुकड़ा समझे हुए थे वह हीरा निकला। जौहरी भला हाथमें आया हीरा क्यों छोड़ने लगा। राजा साहबने मालवीयजीसे कहा कि अपनी साठ रुपयेकी नौकरी छोड़कर 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन करो, देशकी सेवा करो और वकालत पढ़ो। मैं आपको दो सौ रुपया मासिक दिया करूँगा।

मालवीयजी दुविधामें पड़ गए। देशसेवा करनेकी तो उन्हें धुन थी सही पर उन्हें 'हिन्दुस्थान' का सम्पादकत्व ग्रहण करनेसे पहले बहुतसी बातें सोचनी पड़ीं। वे कट्टर ब्राह्मण थे, किसीका छुआ भोजन न करते थे। पूजा-पाठ, नेम-धरमके बड़े पक्के थे। उधर राजा साहबको खान-पानका कुछ विचार न था, सबके साथ वे सब कुछ खा पी सकते थे। मालवीयजीका पञ्चपात्र और राजा साहबका प्याला एक साथ भला कैसे रह सकते थे। मालवीयजी वकालत पेशेको भी सौतेली माँकी आँखोंसे देखते थे। बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद मालवीयजीने यह शर्त्त लगाई कि 'मैं अंग्रेज़ी और हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन इस शर्त्तपर सकारता हूँ कि जिस समय आपने मद्य पी हो उस समय न मुझसे बोलें और न मुझे अपने पास बुलावें।' आज कितने ऐसे निडर और आत्म-प्रतिष्ठावाले लोग हैंगे जो अपने सहायक और पालकसे इस शर्त्तपर सहायता लें। मालवीयजी दीन ब्राह्मणके पुत्र भले ही थे पर उन्होंने आत्माको बेचना नहीं सीखा था।

राजा साहबके लिये यह बड़ी कठोर तपस्या थी, पर वे मालवीयजीको बहुत मानते थे और उनकी यही इच्छा थी कि मालवीयजी जैसे योग्य पुरुषके लिये स्कूल एक निकम्मी जगह है। उन्होंने शर्त्त मान ली और सन् १८८७ ई० के जुलाई मासमें न चाहते हुए भी स्कूलसे पद-त्याग कर दिया और प्रयाग छोड़कर वहाँसे तीस मील दूर कालाकाँकरमें रहकर हिन्दीके सर्वप्रथम दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। जो स्कूलमें तीस-बत्तीस विद्यार्थियोंकी कक्षा पढ़ाता था, अब वह बहुत बड़ी जनसंख्याकी कक्षाको पढ़ाने-सिखानेवाला सम्पादक बन गया।

मालवीयजीकी लेखनीसे मँजकर 'हिन्दुस्थान' चमक उठा। ग्राहकोंकी संख्या तूफ़ानी समुद्रकी लहरोंकी तरह बढ़ती चली गई। मालवीयजीका अधिक समय अब पत्र-सम्पादनमें ही लगता था। सप्ताहमें छः दिन ये कालाकाँकरमें रहते थे, एक दिन प्रयागमें। रविवारको पत्रका साप्ताहिक संस्करण राजा साहबके सम्पादकत्वमें निकलता रहा। इनके लेख बड़े मार्केके होते थे। सभी विषयोंपर इनके सम्पादकीय लेख निकलते थे, सबमें एक असर होता था, ज़ोर होता था और आकर्षण होता था। कभी-कभी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक समस्यापर गहरी चोट भी कर जाते थे पर वह चोट ऐसी होती थी जिसे पढ़कर चोट खानेवाला भी एकबार फड़क उठता था और 'वाह-वाह' करने लगता था। ऐसे सूरमा बहुत कम दिखाई पड़ते हैं जिनके वार भी ख़ाली न जायँ और घायल एक बार तड़फ भी उठे, साथ ही उस सूरमाकी तीरन्दाज़ीकी प्रशंसा भी करे। मालवीयजी ऐसे ही तीरन्दाज़ थे। 'हिन्दुस्थान' पढ़नेके लिये लोग बेकल रहते थे। सबसे पहले हिन्दीमें 'तड़ित समाचार' इसी पत्रमें निकले थे। जनता और सरकार दोनोंने इस पत्रको अपनाया।

यहाँपर मालवीयजीकी एक विशेषताका उल्लेख करना असङ्गत न होगा। वे बड़े भयङ्कर 'प्रूफ़-रीडर' हैं। एक बार लिखकर उसको कई बार काट-छाँट, घटा-बढ़ाकर तो वे अपने लेखोंको छपने भेजते ही हैं पर यह जानकर कम अचरज न होगा कि मशीनपर छपते-छपते भी वे शुद्ध करते रहते हैं। मालवीयजीके लेखका नाम सुनकर ही अभ्यस्त प्रेसवाले एक बार काँप उठते हैं। पहली बार जब प्रूफ़ उठाकर उनके पास भेजा जाता है, उसे ऐसी तरह रँग देते हैं कि उसे शुद्ध करना भी एक मुसीबत हो जाती है। पर एक बात सभी एक स्वरसे स्वीकार करते हैं कि वे जो शुद्धियाँ करते हैं उससे लेख निखरता चला जाता है। उनसे सम्बन्ध रखनेवाले जितनी पत्र-पत्रिकाएँ हैं और रही हैं उनमें प्रायः वे प्रूफ़की

अशुद्धियोंको देखते और उनपर निशान लगा देते हैं। उनका सदासे यह आदेश रहा है कि अच्छे पत्रके लिये प्रूफ़की अशुद्धियाँ होना बड़े अपजसकी बात है।

अढ़ाई बरसतक मालवीयजीने बड़ी शानसे सम्पादकत्व किया और बड़ा नाम कमाया। मालवीयजीके साथ रहनेका यह असर हुआ कि राजा साहबकी बहुतसी बुरी आदतें उन्हें छोड़कर भाग गईं। उनका नशा-पानी भी बन्दसा हो गया। पर आख़िर वे आदमी ही तो थे। आदत कोई ऐसी चीज़ तो है नहीं कि बस कह दिया, छूट गई। राजा साहबने अढ़ाई बरसतक तो मालवीयजीकी शर्त्तको निबाहा, पर एक दिन एक ऐसी घटना हुई कि मालवीयजीने 'हिन्दुस्थान' के सम्पादकत्वसे और राजा साहबके सहवाससे हाथ खींच लिया। एक दिन राजा साहब प्याला चढ़ा चुके थे, उन्होंने किसी ज़रूरी बातकी सलाहके लिये मालवीयजीको बुलवा भेजा। बातचीत कर चुकनेके बाद उन्होंने राजा साहबसे कहा कि "आजसे मेरा अन्न-जल आपके पाससे उठ गया। आपने मुझसे जो शर्त्तकी थी, वह आज टूट गई। मैं आज ही रातको या कल सुबह चला जाऊँगा। आप अपने पत्रका इन्तज़ाम कर लीजिए। आपकी उदारता और स्नेहको मैं कभी नहीं भूलूँगा।" राजा साहब यह सुनकर सन्न हो गए। राजा साहबने बहुत समझाया पर हिमालय तो अपने स्थानसे टलता नहीं है। मालवीयजीके बड़े भाई भी समझाकर हार गए। अन्तमें राजा साहबने कहा—'अच्छा जाओ, वकालत पढ़ो, जितने दिन पढ़ोगे, सारा ख़र्च मैं दूँगा।' मालवीयजी सन् १८८९ ई० में 'हिन्दुस्थान' छोड़कर चले आए। इतने अच्छे पदका त्याग कोई मामूली त्याग नहीं था। त्यागके हवन-कुण्डमें मालवीयजीकी यह सबसे पहली महत्व-पूर्ण आहुति थी।

'हिन्दुस्थान' से बिदा लेकर जब मालवीयजी घर लौटे तो युक्तप्रान्तके सिंह पण्डित अयोध्यानाथके अंग्रेज़ी पत्र 'इण्डियन ओपिनियन' (भारतीय मत) ने उनका स्वागत किया और वे उसमें पण्डित अयोध्यानाथजीके सम्पादनमें हाथ बँटाते रहे। पण्डित अयोध्यानाथजी जैसे दबङ्ग, निडर और स्पष्टवक्ता थे वैसा ही उनका पत्र भी था। प्रयागके लब्धप्रतिष्ठ नागरिक पण्डित बलदेवराम दवे भी इनके साथ ही थे और इन दोनोंके सम्मिलित परिश्रमने पत्रको लोक-प्रिय बना दिया, पीछे यह पत्र लखनऊके 'एडवोकेट' से जा मिला। वह भी मालवीयजीके सहयोगसे वञ्चित न रहा।

'अभ्युदय'

सोए हुए लोगोंको कुम्भकर्णी नींदसे जगानेके लिये यदि सबसे अच्छा और सीधा कोई उपाय है तो वह 'पत्र' है। इलाहाबादके उर्दूके महाकवि अकबरने एक बार कहा था :—

खींचो न कमानोंको न तलवार निकालो।
जब तोप मुक़ाबिल हो तो अख़बार निकालो॥

चाहे यह शेर अख़बारोंकी बढ़ती हुई बाढ़पर फबती ही क्यों न हो पर इसकी सचाईमें तिलभरका भी सन्देह नहीं है। उस ज़मानेमें जब कि सारी आर्य्य जाति अपनी प्राचीन संस्कृतिको पुराने बेठनोंमें लपेटकर और अपनी प्राचीन वीरता और आत्म-सम्मानको म्यानमें डालकर गहरी नींद ले रही थी, उस समय पत्र निकालनेके सिवाय और कोई ऐसा साधन नहीं रह गया था जिससे सरकारकी क्रोधाग्निसे बचते हुए उनको जगा सकें। मालवीयजी यह बात अच्छी तरह समझ चुके थे। कौलेज़में पढ़नेके समय ही मालवीयजी उस दिनका सपना देखा करते थे जब गङ्गाजीके किनारे-किनारे प्रयागसे काशीतक ऐसे आश्रम बनें, जिनमें लोग संयम-पूर्वक रहकर अपना ज्ञान बढ़ावें और एक ऐसा विश्वविद्यालय बने जिसमें सब विद्याएँ, सारे शिल्प-शास्त्र विलायतकी तरह पढ़ाए जायँ और हिन्दुस्तानी विद्यार्थियोंको विलायत न जाना पड़े। मालवीयजीके

साथी उस समय उनकी हँसी उड़ाते थे कि 'मदनमोहन पागल हो गया है।' उन साथियोंमेंसे अब भी एक-दो जीवित हैं, जिन्हें पागल मदनके सपनेकी दुनियामें रहने और काम करनेका सौभाग्य मिला है। उस समयके मदनमोहनके विचारोंको सुननेवाले सज्जनोंको यह देखकर तो सचमुच अचरज होता है कि मालवीयजीके सपनेके सत्य हो जानेपर भी उसी विश्वविद्यालयमें विलायती डिग्रीकी ही अधिक पूछ होती है। यह दुनिया कैसे उलट गई, यह सचमुच अचम्भेकी बात है। हाँ, तो हिन्दू विश्वविद्यालयकी चर्चा मन और हृदयसे निकलकर बाहर आ चुकी थी और सन् १९०५ ई० की अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभाके अवसरपर काशीमें महाराज बनारसके सभापतित्वमें मिण्टो हाउसमें होनेवाली सभामें वह प्रत्यक्ष स्वरूप धारण करके खड़ी हो गई। उसको जीवित रखनेके लिये यही सोचा गया कि कोई ऐसा पत्र निकाला जाय जो हिन्दू-विश्वविद्यालयकी निरन्तर चर्चा छेड़ता रहे जिससे कि लोग अपनी पुरानी आदतके अनुसार एक कानसे सुनकर दूसरेसे निकालने न पावें।

अचानक सन् १९०७ ई० का वसन्त अपने साथ-साथ भारतका 'अभ्युदय' भी लाया। वसन्तपञ्चमीके शुभ दिनपर 'अभ्युदय' का जन्म हुआ। प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक पण्डित बालकृष्ण भट्टजीने ही उसका नामकरण किया। पैदा होते ही यह बालक 'अभ्युदय' मालवीयजीको सौंप दिया गया। उसके बचपनमें दो बरसतक मालवीयजीने उसे पाला, पोसा और बोलना सिखाया। दूधके दाँत गिरनेसे पहले ही इस बालकने धूम मचा दी। उस धूमका मतलब तो यही था कि गङ्गाके तटपर जो सरस्वती मन्दिर बनवानेकी वे कल्पना कर रहे थे वह कल्पना अदृष्ट जगत्से दृष्ट जगत्में आ जाय। पर वह समाचार-पत्र था, देश और समाज दोनोंकी नींद खोलनेका काम भी 'अभ्युदय' ने अपने सिर ले लिया। आख़िर 'अभ्युदय' ही तो ठहरा। पर यह बालक बड़ा ख़र्चीला निकला। थोड़े ही दिनोंमें इसने अपने पालकोंकी जेबें ख़ाली कर दीं। मालवीयजी दो बरस बाद प्रान्तीय कौन्सिलके सदस्य हो गए और 'अभ्युदय' का भार पुरुषोत्तमदास टण्डनजीके योग्य हाथोंमें सौंप दिया। उनके बाद पण्डित सत्यानन्द जोशीजीने इसे सँभाला और सन् १९१० ई० से सुप्रसिद्ध लेखक पण्डित कृष्णकान्त मालवीयजीने इसकी बागडोर अपने हाथमें ली। बीच-बीचमें पण्डित कृष्णकान्त मालवीयजीके स्थानपर स्वर्गीय श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी और प्रसिद्ध लेखक पण्डित वेङ्कटेशनारायण तिवारीका सहयोग भी इसे प्राप्त हुआ है। आजकल पण्डित कृष्णकान्त मालवीयके सुपुत्र पण्डित पद्मकान्त मालवीयके सम्पादकत्वमें यह पत्र निकल रहा है। शुरूमें तो 'अभ्युदय' सप्ताहमें एक बार ही दर्शन देता था, किन्तु फिर सन् १९१५ ई० में वह दैनिक हो गया और फिर कभी अर्द्ध साप्ताहिक कभी साप्ताहिक होकर बराबर निकलता आ रहा है।

'अभ्युदय' ने कभी किसीके आगे सिर नहीं झुकाया और निडर होकर सच बात कहनेमें कभी सङ्कोच नहीं किया। इसी कारण 'अभ्युदय' सरकारकी आँखोंमें बड़ा खटका और कई बार इसको ज़मानतें देनी पड़ीं, कई बार ज़मानतें ज़ब्त हो गईं और बेचारा महीनों घरमें बन्द होकर पड़ा रहा। इस पत्रकी नीति उसके नाममें ही छिपी हुई है। उसकी नीति है 'अभ्युदय'। जिस तरहसे हो अपने देश, समाज, जाति, साहित्य और लोकका अभ्युदय करे।

'लीडर'

लौर्ड कर्ज़न भारतवासियोंकी यादमें बहुत दिनोंतक बने रहेंगे। उन्होंने सन् १९०५ ई० में बङ्गालके दो टुकड़े कर दिए जिससे केवल बङ्गाल ही नहीं बल्कि सारा हिन्दुस्तान काँप उठा और उस कम्पनने एक बार अंग्रेज़ी राज्यको बड़े ज़ोरसे झकोर दिया। सोता हुआ सिंह जब जागकर गरज उठता है तो उससे एक बार सारा जङ्गल दहल उठता है। लौर्ड कर्ज़नने सारे

भारतको जगा दिया। उस ठोकरसे हिन्दुस्थानके हृदयमें चिर कालसे विश्राम करनेवाले आत्म-सम्मानको भी ठेस लगी और इसी लिये वह ज्वालामुखीके समान भड़क उठा। धूल भी ठोकर मारनेसे सिरपर चढ़ जाती है, तिसपर वे तो आदमी थे, समझ रखते थे।

ऐसी दशामें एक दैनिक अंग्रेज़ी पत्रकी ज़रूरत पड़ी। मालवीयजीके परम उद्योगसे २४ अक्तूबर सन् १९०९ ई० को विजया दशमीके दिन प्रयागसे सबको मार्ग दिखानेके लिये 'लीडर' निकला। उसका इतिहास स्वयं मालवीयजीने लीडरमें नई मशीन लगानेके समय जो वर्णन किया था उसे हम ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देते हैं:—

"'लीडर' के स्थापित होनेके पूर्व एक दैनिक समाचार-पत्रकी इलाहाबादमें बड़ी आवश्यकता जान पड़ती थी। सन् १८७९ ई० में स्वर्गीय पण्डित अयोध्यानाथजीने 'इण्डियन हेराल्ड' निकाला था और उसपर बड़ा धन व्यय किया। वह पत्र तीन वर्षतक चला और अभाग्यवश उसके बाद बन्द हो गया। 'लीडर' के स्थापित होनेका एक यह कारण भी था। मैंने वकालत छोड़नेका निश्चय कर लिया था, और उस समय मेरा यह विचार था कि सार्वजनिक कार्य्योंसे भी अलग हो जाऊँ जिससे हिन्दू विश्वविद्यालयका कार्य्य ठीक तरहसे कर सकूँ। उस समय मेरे मनमें आया कि यदि मैं सार्वजनिक जीवनसे विना एक पत्र स्थापित किए अलग होता हूँ, तब मैं अपने प्रान्तके प्रति अपने धर्मको नहीं निबाहता हूँ। मुझे उसकी आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवार्य्य जान पड़ी कि मैंने विचार किया कि सार्वजनिक जीवनसे अलग होनेके पहले एक पत्र अवश्य यहाँ स्थापित हो जाना चाहिए। मैंने इसका कुछ मित्रोंसे ज़िक्र किया और उन्होंने प्रसन्नतासे उसके लिये धन दे दिया। आरम्भमें इसके लिये चौंतीस हज़ार रुपया जुटा। इतना रुपया एक दैनिक पत्र चलानेके लिये बहुत कम था। लेकिन मुझे अपने मित्रोंपर विश्वास था जिन्होंने सहायता करनेको कह दिया था और वह आशा सफल भी हुई। लीडरने निःस्वार्थ भावसे देशकी और प्रान्तकी बड़ी लगनसे सेवा की है। नीति और विचारोंमें सदा मतभेद रहा है और रहेगा, लेकिन उसके कारण कोई उसकी सेवामें सन्देह नहीं ला सकता। शायद ही ऐसा कोई पत्र हो जो अपने मित्रोंके विचारोंको सारे प्रश्नोंपर प्रकट कर सके। श्री चिन्तामणि और पण्डित कृष्णाराम मेहता दोनों 'लीडर' की जान हैं और दोनोंने बाँटकर उसे चलानेका सौभाग्य प्राप्त किया है। लीडरके बढ़ते हुए प्रभावको और उसकी सेवाओंको सारे प्रान्तने स्वीकार किया है। आपको याद होगा, जब असहयोग आन्दोलनका आरम्भ हुआ तब मेरे मित्र पण्डित मोतीलाल नेहरूने 'इण्डिपेण्डेण्ट' पत्र चलाया जिसमें वे अपने विचारोंको और 'लीडर' से मतभेद रखनेवाले विचारोंको फैला सकें। उसपर दो लाख पचास हज़ार रुपया ख़र्च किया गया। जिसमें एक लाख स्वयं पण्डित मोतीलालने दिया और पचास हज़ार श्री जयकरने दिया था। सरकारी अधिकारियोंने भी यह बात स्वीकार की है कि 'लीडर' सार्वजनिक प्रश्नोंका न्यायोचित दृष्टिसे विचार करता है।"

श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त और श्री सी० वाई० चिन्तामणि उसके सम्पादक-मण्डलमें नियुक्त हुए। एक धुर पूर्वके बङ्गाली थे तो दूसरे धुर दक्षिणके मद्रासी थे। जब 'लीडर' स्थापित हुआ था, तब कुछ लोगोंने भविष्यवाणी की कि यह बेवक़ूफ़ी शहनाई है; कोई सुनेगा नहीं। पत्र शीघ्र ही बन्द हो जायगा। कुछ लोग कहते थे 'कि इसके सम्पादक और अधिकारी शीघ्र ही किसी विपदामें फँसेंगे।' उस समयके प्रयागके कमिश्नर और 'पायोनियर' पत्रने आवाज़ कसी कि 'लीडर' इतना नेक और भला है कि अधिक दिनोंतक नहीं ठहरेगा। लेकिन इन पिछले वर्षोंने उन सारी भविष्यवाणियोंको झूठा साबित कर दिया। इसकी सारी सफलताका श्रेय इसके जन्मदाता और युवकोंमें उत्साहका सञ्चार करनेवाले पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको है। लीडरके इतिहासकी एक लम्बी विपदाभरी कहानी है। उसके जन्मकालके डेढ़ वर्षके अन्दर ही उसकी पूँजी समाप्त होनेको आ गई। यहाँतक कि जब बैङ्कमें केवल पाँच हज़ार रुपया बक़ाया रह गया फिर भी डाइरेक्टरोंकी रायसे साहस करके लीडरका अङ्क निकाला जा रहा था। लेकिन ऐसी दशा कितने दिनोंतक चल सकती थी। निदान उसका कारबार समेटनेके लिये एक दिन भी तै कर दिया गया। किन्तु इस घोर निराशामें भी एक प्रकाशकी रेखा पण्डित मदनमोहन मालवीय थे जो इस समय अपने प्राणोंसे प्रिय महान् हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये देशमें घूम-घूमकर धन बटोर रहे थे। उनके मुखसे केवल ये आत्म-विश्वाससे भरे शब्द निकलते थे—"दि लीडर विल नौट डाइ" 'लीडर जीवित रहेगा'। उनकी उस आशाके प्रकाशने निराशाके अन्धकारमें उजाला कर दिया और तबसे 'लीडर' हमेशाके लिये बन्द होनेके बजाय दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। सन् १९२६ ई० में उसकी अपनी नई इमारतें बनीं और सन् १९२९ ई० में उसके लिये नई मशीनें और छापेकी कलें विदेशसे मँगाई गईं और एक हिन्दीका साप्ताहिक 'भारत' —अब दैनिक 'भारत'—भी प्रकाशित होने लगा।

पण्डित मोतीलाल नेहरू 'न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड' के अन्तर्गत 'लीडर' के प्रथम अध्यक्ष हुए। इसके बाद पूज्य मालवीयजी दस वर्षतक उसके चेयरमैन रहे। उनके बाद सर तेजबहादुर सप्रू, सच्चिदानन्द सिनहा, श्री ब्रजनारायण गुर्टू, और मुन्शी ईश्वरशरण क्रमसे इसके अध्यक्ष चुने गए और इसके सहायक तथा कार्य्यकर्त्ता रहे। अन्य उत्साही प्रारम्भिक कार्य्यकर्त्ता पण्डित बलदेवराम दवे और डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी थे। बनर्जीकी असामयिक मृत्युसे देश और प्रयाग नगरको एक उदार और उत्साही कार्य्यकर्त्तासे वञ्चित होना पड़ा। इसके बाद सङ्कटकालमें लीडरके हाथ बँटानेवाले राजा मोतीचन्द और बाबू गोविन्द दास थे। रायकृष्णजी सर तेजके सरकारी लौ-मेम्बर नियुक्त होनेपर चेयरमैन चुने गए, तबसे वे निरन्तर लीडरके द्वारा देशकी सेवा कर रहे हैं। आरम्भमें इसके सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणिको अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे और कभी-कभी बीस-बीस घण्टोंतक काम करना पड़ता था। उस समय वे ही उसके कर्त्ता-धर्त्ता थे, वे ही सम्पादक, उप-सम्पादक, मन्त्री, मैनेजर, मुद्रक, प्रकाशक सभी कुछ एकमें जुटे हुए थे। अब लीडर उनके जीवनका एक अङ्ग हो गया है। मसल मशहूर है कि 'लीडर चिन्तामणि है, और चिन्तामणि लीडर है।' श्री चिन्तामणिका प्राण लीडर है और लीडरके प्राण श्री चिन्तामणि हैं।

आरम्भिक जीवनसे इसके दो-तीन लेखोंपर सरकारकी कृपादृष्टि पड़ी। उनमें विद्रोहकी भावनाका लेश भी न था। इसलिये सरकारका वह वार ख़ाली गया। इसके डेढ़ वर्ष बाद फिर एक चेतावनी मिली। श्री गोखलेने इसमें आगे आकर सर विलियम वेडरबर्नको लिखा, जिन्होंने तत्कालीन भारत-सरकारके लौर्ड क्यू और श्री मौण्टेग्यूसे मिलकर सब प्रकारका आश्वासन प्राप्त किया।

लीडरकी नीति सदा एकसी नहीं रही। इसने समय पड़नेपर शायद ही कोई ऐसा सार्वजनिक नेता छोड़ा हो, जिसकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना न की हो। श्री पण्डित मदनमोहन मालवीयसे लगाकर पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री गोखले और यहाँतक कि महात्मा गान्धी भी इसकी आलोचनासे नहीं बच पाए। बहुतसे लोग इसके सम्पादकसे इसलिये चिढ़ते हैं कि वे ऐसी बातें क्यों करते हैं। किन्तु हम समझते हैं कि सम्पादकको अपनी ज़िम्मेदारी समझकर किसीके बड़प्पनका लिहाज़ करके अपने विवेककी हत्या नहीं करनी चाहिए। इस बातको कौन नहीं स्वीकार करेगा कि लीडरके सम्पादक श्री चिन्तामणि उन इने-गिने लोगोंमें हैं, जो समयकी गतिको बहुत ही अच्छी तरह समझते हैं।

'मर्य्यादा'

लीडरकी स्थापनाके एक बरस बाद ही

मालवीयजीने 'मर्य्यादा' नामक पत्र निकलवानेका प्रबन्ध किया। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी जनताके लिये तो 'लीडर' काफ़ी था, पर हिन्दी समझनेवाले लोगोंको भी तो बुद्धिका भोजन मिलना चाहिए। इसमें बहुत दिनोंतक राजनीतिक समस्याओंपर योग्यतापूर्ण निबन्ध लिखे गए।

'हिन्दुस्तान टाइम्स'

पहले कुछ सिक्ख सज्जनोंने दिल्लीसे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक अंग्रेज़ीपत्र निकाला था, पर उसकी व्यवस्था ठीक नहीं थी और उसका प्रचार भी कम था। मालवीयजीने सन् १९२४ ई० में वह पत्र अपने हाथमें ले लिया और उसकी सुव्यवस्था कर दी। तबसे मालवीयजी ही उसके सर्वेसर्वा हैं और उसकी प्रबन्धक-समितिके अध्यक्ष हैं। श्री पोथान जोसेफ़ उसके सम्पादक हुए और उन्होंने बड़ी योग्यतासे अपना काम निबाहा। अब तो 'हिन्दुस्तान' नामक एक हिन्दीपत्र भी इसी प्रेससे निकलता है। यह दिल्लीका अंग्रेज़ी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' भी मालवीयजीकी प्रेरणासे निकला और थोड़े ही दिनोंमें इस महापुरुषके आशीर्वादने उसे वह पद दिला दिया जिसपर आज उसे अभिमान है।

'सनातनधर्म'

२० जुलाई सन् १९३३ ई० को गुरुपूर्णिमाके अवसर-पर साप्ताहिक 'सनातनधर्म' नामक पत्र मालवीयजीकी संरक्षतामें काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयसे पण्डित गणेशदत्त आचार्यजीके प्रबन्धमें निकला, जो उदार सनातनधर्मका निरन्तर प्रचार कर रहा है। इसमें धार्मिक विषयोंके अतिरिक्त विज्ञान, कलाकौशल, अर्थशास्त्र, समाज, साहित्य इत्यादि सभी विषयोंपर महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। यह 'समाचार-पत्र' नहीं है बल्कि 'विचारपत्र' है। प्रारम्भमें छः महीनेतक इसका सम्पादन पण्डित भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधवने बड़ी योग्यताके साथ किया। उसके बादसे पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ही उसका सम्पादन कर रहे हैं।

जब सन् १८९९ ई० में श्री सच्चिदानन्द सिनहाने 'हिन्दुस्तान रिव्यू' चलाया, उस समय मालवीयजीने उसकी सब प्रकारसे अमूल्य सहायता की और उसी प्रकार सन् १९०३ ई० में चलाए हुए उनके दूसरे पत्र 'इण्डियन पीपिल' की भी की।

इन सब बातोंसे प्रकट हो गया होगा कि मालवीयजी पत्रों-द्वारा जनतामें प्रचार करनेमें कितना विश्वास रखते आए हैं। मालवीयजी बड़े कुशल सम्पादक रहे हैं। प्रूफ़ संशोधनके विषयमें तो हम कह ही चुके हैं। एक बात और स्मरण रखनेकी है कि हिन्दी संसारमें 'मालवीयजीकी हिन्दी' का एक अलग ही स्थान है। वे ठेठ संस्कृतके शब्दोंके बहुत काममें लानेको अच्छा नहीं समझते हैं। अचरज, जतन, लगन, पैठना, प्रानी आदि बहुतसे बोलचालके शब्द उनके लेखोंमें मिलेंगे। ये बड़ी सरल, सबकी समझमें आनेवाली हिन्दी लिखते और बोलते हैं, ऐसी नहीं कि जिसे समझनेके लिये कोश टटोलना पड़े और घण्टों मग़ज़पच्ची करनी पड़े।

पत्रमें अश्लील विज्ञापन छापनेको भी मालवीयजी बड़ा बुरा समझते हैं। एक बार अभ्युदयमें पण्डित शिवराम वैद्यजीके औषधालयकी बनी 'कामवटी' का विज्ञापन छाप दिया गया। मालवीयजीने उसे काटकर आदेश दिया कि इसके स्थानपर 'ज्वरवटी' का विज्ञापन छापो। 'सनातनधर्म' में तो उन्होंने तीन वर्षतक भी किसी तरहका कोई विज्ञापन छपने ही नहीं दिया। महापुरुष केवल हृदयमें ही महान् नहीं होते बल्कि अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तुको वह महापुरुषके योग्य बना देते हैं। महापुरुषके साहित्यमें 'हाथीके दाँत' को कोई स्थान नहीं मिल सका है।

कचहरीके भीतर

'हिन्दुस्थान' का सम्पादक काफ़ी नाम कमा चुका था। उस समय भगवान्‌की दयासे राजनीतिके मैदानमें ऐसे लोग बहुत कम थे जो दूसरेकी बढ़ती देखकर ख़ाक हो जायँ और उसकी जड़ खोदनेकी तैयारी करने लगें। वह गुणी लोगोंका ज़माना था। कसौटीपर कसे हुए सोनेकी क़द्र की जाती थी। राष्ट्रीय महासभाके पिता श्री एलेन् ऑक्टेवियस ह्यूम मालवीयजीको बड़ा मानते थे। इधर पण्डित अयोध्यानाथ, श्री राजा रामपालसिंह और पण्डित सुन्दरलाल भी इन्हें देशसेवामें जुटाना चाहते थे। सबने मालवीयजीको वकालतकी परीक्षा देनेके लिये बाध्य किया। पर मालवीयजी वकालतको बहुत बुरा काम समझते थे। जिस ब्राह्मणने सन्तोष, परो-पकार और सचाईके बीचमें अपना बचपन बिताया हो उसे कचहरी भला क्यों सुहाने लगी। यद्यपि मालवीयजी पैसे खींचनेमें उस्ताद हैं, पर पैसा कभी उन्हें अपनी ओर न खींच सका। एक ओर गुरु और मित्र, दूसरी ओर सङ्कोचमें लिपटा हुआ एक युवा पण्डित। जो चींटीका भी दिल दुखानेसे पहले काँप उठता हो वह अपने गुरुओं और मित्रोंके अनुरोधको कैसे टाल सकता था। 'हिन्दुस्थान' से पान सुपारी लेकर ये प्रयागमें आ ही चुके थे, पर राजा रामपालसिंह हर महीने मालवीयजीके बहुत मना करनेपर भी ढाई सौ रुपया वेतन भेजते ही रहे। वे अपने सम्पादनके कामसे समय बचाकर वकालत पढ़ने लगे। राय-बहादुर पण्डित बलदेवराम दवे उन दिनों जौन्सन-गञ्जमें रहते थे। उनके परिवारके साथ मालवीयजीका बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है। उन्हींके कोठेके बड़े कमरेमें नित्य जाकर मालवीयजीने वकालतकी परीक्षाकी तैयारी शुरू कर दी। इसी पढ़ाईके समयमें उन्होंने व्यवस्थाविधान (कौन्स्टिट्यूशनल लौ) पर एक टिप्पणी तैयार की जिसके कुछ अंश तो बड़े ही क्रान्ति-कारी हैं। उस टिप्पणीको पढ़नेसे मालूम हो जाता है कि इनकी राजनीतिक बुद्धि किस ओर चली जा रही थी। अपने कलकत्तेके अध्यक्षपदके भाषणमें उन्होंने इसके कुछ अंश कहे थे।

मालवीयजी पढ़ते तो बहुत कम थे क्योंकि उन्हें फ़ुरसत ही कहाँ मिलती थी, लेकिन उनकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी और वे पढ़ते भी समझकर ही थे। ये लौ कौलेजमें पढ़ते थे, परीक्षा होनेवाली थी। अचानक इनके छोटे भाई मनोहरलालकी अफ़ीम खानेसे मृत्यु हो गई। इनको इसका इतना धक्का लगा कि इन्होंने परीक्षा न देनेका ही इरादा किया और बड़े मनमारेसे रहने लगे। सात दिन परीक्षाके रह गए, सब पढ़ना-लिखना बन्द। पण्डित अयोध्यानाथजीको जब यह हाल मिला तो उन्होंने मालवीयजीको बुलाकर समझाया और शान्त किया। मालवीयजी क़ानून पढ़नेमें फिर जी लगाकर जुट गए। विजयनगर हौलमें परीक्षा हुई और सन् १८९१ ई० में इन्होंने एल् एल्० बी० पास कर लिया। दो वर्ष बाद ही ये हाईकोर्टमें पहुँच गए। वकालत करते समय एक बार पण्डित अयोध्यानाथजीने ह्यूम महोदयसे शिकायत की थी कि वकालतके चक्करमें पड़कर पण्डित मदनमोहनने कांग्रेसके काममें ढिलाई कर दी है।

ह्यूम साहबने बड़े सन्तोष और स्नेहसे उत्तर दिया, "ठीक तो है। इन्हें क़ानूनकी ओर ही पूरा चित्त लगाना चाहिए।" फिर मालवीयजीकी ओर घूमकर बोले कि "देखो मदनमोहन! ईश्वरने तुम्हें बड़ी बुद्धि दी है। अगर मन लगाकर तुम दस बरस भी वकालत कर लोगे तो तुम निश्चय सबसे आगे बढ़ जाओगे। तब तुम अपनी प्रतिष्ठाके कारण अधिक जनसेवा कर सकोगे और तब तुम देशकी भी अधिक सेवा कर सकोगे।" पर मालवीयजीके हृदयमें यह उपदेश बहुत दिनोंतक न टिक सका।

कुछ दिनोंतक इन्होंने पण्डित बेनीरामजी कान्यकुब्जके पास काम सीखा और फिर स्वतन्त्र रूपसे वकालत शुरू कर दी। पहले पहल इन्होंने नौ रुपये कमाए।

इनकी वकालत थोड़े ही दिनोंमें चमक उठी। मवक्किलोंके ठट्ट-के-ठट्ट इन्हें घेरे रहते। पौ फटते-फटते उनका द्वार ख़ैराती शफ़ाख़ाना बन जाता था। उनके मित्रों और सम्बन्धियोंकी भी एक अच्छी ख़ासी संख्या थी। मालवीयजीको दम लेनेकी फ़ुरसत न थी। मवक्किलोंसे छुट्टी पाकर पूजा-पाठ करते और फिर कभी भोजन मिला, कभी बिना भोजन ही पीताम्बर पहने ही कचहरी जानेके लिये गाड़ीमें बैठ जाते थे। उसीमें इनकी पूरी पोशाक रक्खी रहती थी। कचहरी पहुँचते-पहुँचते ये वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते थे।

एक दिन ये सब काग़ज़-पत्र देख-सुनकर उठे थे कि एक अनजान आदमीने अपने काग़ज़ इनके हाथमें दिए। उसकी आँखोंकी कोरें भींगी हुई थीं। जान पड़ता था कि कोई विपत्ति उसका गला दबाए खड़ी है। डरते-डरते वह बोला, "मुन्शी कालिन्दीप्रसाद मेरे वकील हैं। फ़ीस ले चुके हैं। आज तारीख़ है। वे कहाँ चले गए हैं। मेरे पास रुपए नहीं। कहाँ जाऊँ?" मालवीयजी भी बझे हुए थे, पर वे करुणाको अपने द्वारसे निराश नहीं भेजना चाहते थे। वे उतना ही काम लेते थे जितना कर सकते थे। पैसेके लोभी वकीलोंकी तरह स्वार्थी नहीं थे। जब काम अधिक होता तो अपने मित्रोंको दे देते थे। उन्होंने कहा, "देखो भाई! मुझे तो आज फ़ुरसत नहीं है। तुम इनके साथ मुन्शी गोकुलप्रसादके पास चले जाओ। तुम्हारा काम हो जायगा।" यह कहकर उन्होंने वह आदमी मधुमङ्गल मिश्रजीको सहेज दिया।

आजके सर तेजबहादुर सप्रू भी मालवीयजीके ही बनाए हुए हैं। एक बार मालवीयजी किसी कामसे मुरादाबाद गए हुए थे। वहाँ उन्होंने सप्रू साहबको देखा और होनहार लड़का समझकर उन्हें प्रयाग ले आए और उन्हें अपनी वकालतमेंसे मुक़दमे देने लगे। आज वही सप्रू व्यवस्था-विधान (कौन्स्टिटयूशनल लौ) के आचार्य्य माने जाते हैं और भारतके सर्वश्रेष्ठ वकीलोंमें हैं।

हाइकोर्टके जजोंने भी समय-समयपर मालवीयजीकी बड़ी प्रशंसा की है। पहले तो इनकी सौम्य मूर्त्ति और इनका धवल वेश ही अपना पूरा प्रभाव डालता है, फिर इनकी मधुर वाणी किसको नहीं लुभाती। मालवीयजीमें दो अद्भुत शक्तियाँ काम कर रही थीं—सुन्दर, सरस, प्रभावशाली वाणी और समझानेका ढङ्ग। वे इतनी अच्छी तरहसे मुक़दमा समझाते थे कि उनकी बात माननेको विवश होना पड़ता था। शेरकोटकी रानीका मुक़दमा उनकी वकालतकी सर्वश्रेष्ठ कीर्त्ति समझी जाती है। और उसी मुक़दमेके कारण इन्हें इतना धन भी मिला कि इनका ऋण भी पट गया और इन्होंने जन्मस्थानसे सटे हुए मकानमें कई हज़ार रुपए लगाकर पक्का मकान बनवा लिया। इस बस्तीमें यही सबसे पहला पक्का मकान बना था।

अब तो मालवीयजीका यश दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। मालवीयजीकी आमदनी भी बढ़ी, पर साथ ही उनके काम भी बढ़ चले। इधर मवक्किल घेरे हुए थे, उधर प्रयाग भरकी सभाएँ और संस्थाएँ उनको तङ्ग किए रहती थीं। राष्ट्रीय महासभाका अलग काम था और फिर बहुत दिनोंसे विद्यार्थी जीवनसे ही विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी जो

भावना धीरे-धीरे सुलग रही थी वह अब चेतन हो उठी। भला वकालतको फिर कहाँ जगह मिल सकती थी। जिसके दिलमें दूसरोंके दर्दके कारण हूक उठा करती हो वह भला अपनी कहाँतक देख-भाल कर सकता है।

४ फ़रवरी, सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भयङ्कर दुर्घटना हो गई थी, जिसमें जनताने जोशमें आकर एक पुलीस थानेमें आग लगा दी थी, जिसमें इक्कीस पुलीसके थानेदार और सिपाही बुरी तरह जल मरे और दो स्वयंसेवक मारे गए। उसमें दो सौ पचीस आदमियोंपर मुक़दमा चला। सेशन जजने उनमेंसे एक सौ सत्तरको फाँसीका हुक्म दे दिया था। जब यह मामला चीफ़ जस्टिस और जस्टिस पिगोटके सामने प्रयाग हाइकोर्टमें पेश हुआ तो सबकी दृष्टि मालवीयजीपर पड़ी। मालवीयजी वकालत छोड़ चुके थे, पर निर्बलके बल तो थे ही। सात दिनतक मुक़दमेको समझा और अध्ययन किया और ऐसी ख़ूबीसे बहस की कि एक सौ इक्यावन अभियुक्त फाँसीके फन्देसे उतार लिए गए। उस समय कहा गया था कि—"इन अभियुक्तोंको चाहिए कि ये मालवीयजीको धन्यवाद दें, क्योंकि उन्हींके कारण आज इनकी जान बच पाई है।" इसमें कोई सन्देह नहीं है, यदि मालवीयजी वकालत करते रहते तो वे अपने साथियोंको तो पीछे छोड़ ही देते, साथ ही अपनेसे आगेवालोंसे भी आगे बढ़ जाते।

जबसे मालवीयजीने 'हिन्दुस्थान' को अपने हाथमें लिया था तबसे ही राजा साहब उनको दो सौ रुपया मासिक वेतन देते रहे। जब मालवीयजीकी वकालत जग उठी तब भी बार-बार मना करनेपर भी राजा साहब हर मास ढाई सौ रुपया मालवीयजीके पास भेज दिया करते थे। एक दिन मालवीयजीने राजा साहबसे कहा कि—"महाराज, अब तो मैं आपका कुछ काम नहीं करता। आपकी नौकरीमें भी नहीं हूँ।" इतना कहना था कि राजा साहब बिगड़ गए और बोले, "नौकरीमें? मालवीयजी! क्या आपने कभी मेरे मनमें या बर्त्तावमें अपने साथ या किसीके साथ नौकरका भाव पाया है। आपके पास विद्या है और आप गुणोंकी खान हैं। उसके द्वारा आप मेरी सहायता करते हैं और मैं भी थोड़े पैसोंसे आपकी सहायता करता हूँ। मुझे आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर बहुत दुःख हुआ है। ऐसी बातें आपको शोभा नहीं देतीं।" राजा साहब सचमुच पारखी थे। यही उनका सबसे बड़ा गुण था और उन्होंने मालवीयजीको ख़ूब परखा भी था।

प्रयागके वकीलोंमें इतने आगेतक बढ़कर भी मालवीयजी क्यों लौट आए? पीछेसे कोई उन्हें पुकार रहा था—बड़े दर्दसे कराह-कराह कर। मालवीयजी हाथमें आई अपनी सोनेकी दुनिया छोड़कर उस पुकारपर लौट पड़े। तपस्वी ब्राह्मण! कितना अद्भुत तेरा त्याग है? इस दुनियामें कितने लोग हैं जो आँखवाले होकर भी तुझे पहचान सकेंगे? ऐसे कितने लोग हैं जो सहृदय कहलाकर भी तेरी थाह पा सकेंगे? जिस शोरमें लोग रुपयेकी खनखनाहट और स्वार्थकी बातोंके सिवाय और कुछ नहीं सुन पाते वहीं तुमने बेचारी लुटी हुई, कसी हुई माँकी क्षीण पुकार सुन ली और पागलकी तरह सोनेकी ढेरपर लात मारकर उसी पुकारपर दौड़ पड़े—वैसे ही जैसे द्रौपदीकी पुकार पर कृष्ण दौड़े थे। प्रयागके एक प्रतिष्ठित जजने कहा था कि—'मालवीयजीके पैरोंके पास गेंद पड़ी थी पर उन्होंने उसमें लात मारनेसे इनकार कर दिया।' पर यदि हम इसी बातको इस तरह कहें तो कुछ अनुचित न होगा कि 'लक्ष्मी द्वार खोलकर आरती और फूलमाला लिए इनका स्वागत करनेको खड़ी थी और द्वारपर पहुँचते-पहुँचते इन्होंने करुणाकी धीमी आवाज़ सुनी और वहींसे लौट पड़े—भिक्षमङ्गेके वेशमें—झोली हाथमें लिए हुए।

गोखलेजीने एक बार सच कहा था—"त्याग किया है मालवीयजीने। ग़रीब घरमें पैदा होकर वकालत की। धन कमाने लगे। अमीरीका मज़ा चखा। चखकर उसे देशके लिये ठुकरा दिया। त्याग है उनका।" पण्डित विशननारायणजीने भी कहा था कि 'सचमुच मालवीयजीके जीवनको आत्म-त्यागके सिद्धान्तपर एक अनुपम भाष्य समझना चाहिए,' वह भाष्य भी ऐसा कि जिसे सब समझ सकें।

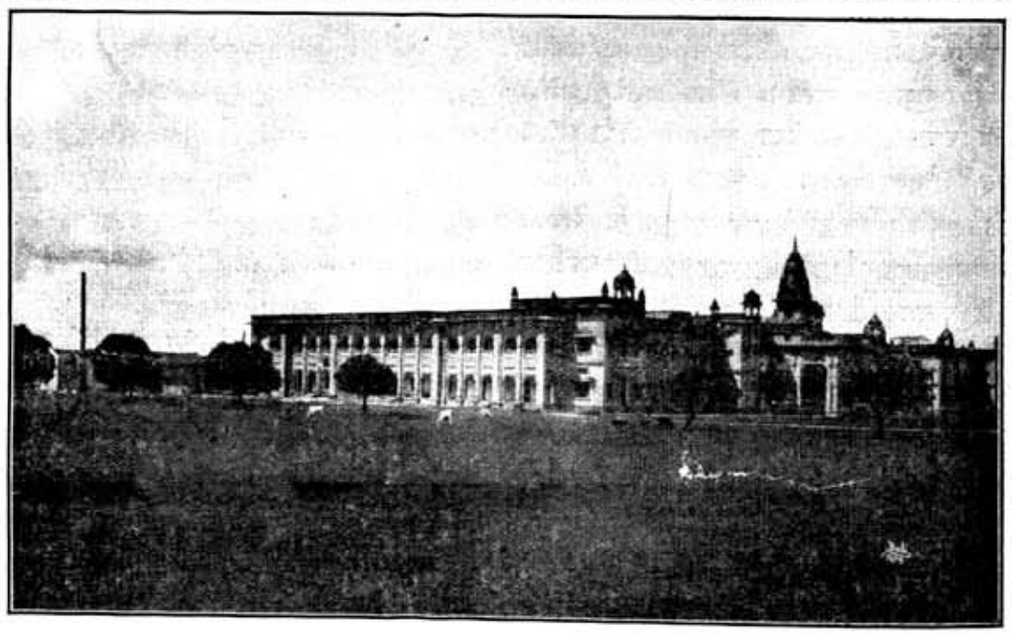

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयका एक भवन।

सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय

कहा जाता है कि हिन्दुस्थानमें जितने प्रकारके अन्न पैदा होते हैं उतने ही प्रकारके धर्म भी। यहाँकी उपजाऊ भूमिमें गङ्गा-यमुना और सिन्धुके जलसे सिंचकर जितने धर्म, मत, और सम्प्रदाय पनपे हैं उतने दुनियाके किसी भागमें भी नहीं सुने गए। यह तो आँखों देखी बात है, कानों सुनी नहीं। इतना ही नहीं बल्कि और देशोंमें भी जो धर्म बोए गए हैं उनका बीज भी भारतसे ही गया और वे सब गङ्गाके जलसे ही सींचे गए। हिन्दुस्तानके जलवायुमें कुछ ऐसी तासीर है कि यहाँके लोग किसी बातको जल्दी नहीं मानते थे और जहाँतक होता था अपनी टेक रखनेकी ताकमें रहते थे। वे हठसे ऐसा नहीं करते थे बल्कि उनका ज्ञान यहाँतक बढ़ा हुआ था कि वे हर बातको अपनी बुद्धिकी कसौटीपर कसते थे और फिर कह देते थे कि इसमें सोना कितना है, खोट कितनी है। "मुण्डे मुण्डेमतिर्भिन्ना" होते हुए भी यहाँवालोंने योरोपके समान धर्मके नामपर अपने हाथ खूनसे नहीं रँगे। धार्मिक मतोंपर जितना खण्डन-मण्डन और शास्त्रार्थ हिन्दुस्तानमें हुआ उतना किसी देशमें नहीं हुआ पर यह हमारे ही देशकी खूबी रही कि एक ही छत्रके नीचे आस्तिक और नास्तिक दोनों हिन्दू बनकर रहे।

पहले अध्यायमें हमने थोड़ेसे शब्दोंमें मालवीयजीके जन्मकालके समयकी धार्मिक दशाका परिचय मात्र दिया। उससे एक बात तो प्रकट हो गई होगी कि उस समय हिन्दू धर्म बड़े सङ्कटमें था। सन् १८५७ ई० के उपद्रवने देशको एक तरहसे सुन्न कर दिया था। सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन भी थोड़े दिनों तक चुप्पी साधे पड़े रहे। राजा राममोहनरायका ब्रह्मसमाज ज़ोर पकड़ रहा था और इधर इसाई पादरी भी हिन्दुओंको प्रभु यीशुके दरबारमें ले जानेके लिये जी-जानसे लगे हुए थे। हिन्दुस्तानकी भेड़ियाधसान तो मशहूर ही है। एक रास्ता खुलना चाहिए, उसपर चलनेवालोंकी कमी न होगी। हज़ारों-लाखों हिन्दुस्तानी, जिनके बाप-दादोंकी चोटी औरङ्गज़ेबकी ख़ूनी तलवार भी न काट सकी, दिखावटी मीठे बहकावेमें आकर मस्जिद और गिरजाघरमें चोटी चढ़ा आए। जिन्होंने गौकी रक्षाके लिये प्राणतक देनेमें आनाकानी न की उन्हींकी सन्तान गौके गलेपर छुरी फेरने लगी। उत्तरीय ध्रुवसे अचानक ये दक्षिणीय ध्रुव कैसे जा पहुँचे, यह हम बता चुके हैं। अनेक मत और सम्प्रदाय तो बने ही, साथ ही हमारे संस्कार बिगड़ चुके थे। अपने धर्मका हमें ज्ञान न था। हम इतना भी तो नहीं जानते थे कि वेद कितने हैं फिर उनके नामका तो पूछना ही क्या। स्वामी दयानन्द हिन्दू जातिको जगानेके लिये सन् १८६३ में ही निकल पड़े, और सन् १८७५ ई० में आर्य्यसमाजकी स्थापना कर दी। उनको देखकर हिन्दू धर्मके शत्रु काँप गए। कारण यह था कि वे डण्डा लेकर जगा भी रहे थे और सोते हुए हिन्दुओंको उठा ले जानेवालोंको भगा भी रहे थे। इसलिये कुछ घरके लोग भी डण्डेकी चोट खा-खाकर स्वामीजीको बुरा-भला कहनेसे बाज़ न आए और फल यह हुआ कि घरमें ही दो दल हो गए और स्वामी दयानन्दके आर्य्य-समाजको एक दल उतना ही घृणा करने लगा जितना मुसलमान या इसाई मतको। स्वामी दयानन्दजीने जिस संयम और उद्देश्यको लेकर वैदिक झण्डा फहराया

था वह संयम उनके अनुयायियोंमें न रहा। वे ब्राह्मणोंको "पोप" कहने लगे, उनका पेट 'लेटरबक्स' कहलाया जाने लगा और देव-मूर्त्तियाँ 'गोल-गोल पत्थर' कहलाए जाने लगे। जिन श्रद्धालु हिन्दुओंने युग-युगान्तरसे अपना विश्वास और अपना सर्वस्व देवमन्दिरोंमें रख छोड़ा था और जिन ब्राह्मणोंने कठोर तपस्या करके पुस्तकालयोंके जला दिए जानेपर भी भारतका सारा साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने कण्ठमें जतनसे रख छोड़ा था, उनका यह अपमान कोई सहृदय भला कैसे सह सकता था। कुछ लोग अवश्य ही ढोंगी और पाखण्डी थे पर जैके साथ घुन पीसना भी लोंगोको न जँचा। पर यह कम सन्तोषकी बात नहीं है कि जो लोग राम और कृष्णको छोड़कर पैगम्बरी एकेश्वरवादके पीछे दौड़े चले जा रहे थे वे सँभल गए और वैदिक एकेश्वरवाद मानकर हिन्दू ही बने रहे। स्वामी दयानन्दके सिद्धान्तोंसे मतभेद रखनेवाले लोग भी उन्हें 'हिन्दू धर्मका रक्षक' माननेमें सङ्कोच नहीं करते।

सन् १८६३ ई० के लगभग ही पञ्जाबमें पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरीके व्याख्यानों और उनकी कथाओंकी बड़ी धूम मची हुई थी। जालन्धरके पादरी गोकुलनाथके व्याख्यानोंने कपूर्थला-नरेश महाराज रणधीरसिंहको इसाई मतकी ओर झुका दिया था। पण्डित श्रद्धारामजी तुरन्त सन् १८६३ ई० में कपूर्थले पहुँचे और उन्होंने महाराजको प्राचीन वर्णाश्रम धर्मके स्वरूपका ऐसा सुन्दर निरूपण किया कि उनकी जितनी शङ्काएँ थीं वे दूर हो गईं और पञ्जाबका एक राज्य इसाई बननेसे बच गया। समूचे पञ्जाबमें घूमकर पण्डित श्रद्धारामजी उपदेश और व्याख्यान देते और रामायण, महाभारत आदिकी कथाएँ सुनाते। इनकी कथाओंने दूर-दूरके लोगोंको अपनी ओर खींचा। इनकी अमृत-वाणीके प्यासोंकी बड़ी भीड़ लगा करती थी। इनकी वाणीमें अजीब रस था और इनकी भाषा बड़ी ज़ोरदार होती थी। ठावँ-ठावँपर इन्होंने धर्मसभाएँ स्थापित कीं और उपदेशकोंका एक मण्डल तैयार कर दिया। इन्होंने पञ्जाबी और उर्दूमें भी कुछ पोथियाँ लिखी हैं, पर अपनी मुख्य पुस्तकें हिन्दीमें ही लिखीं। उधर स्वामी दयानन्दजीका 'सत्यार्थ-प्रकाश' था, इधर इनका अपना सिद्धान्त-ग्रन्थ 'सत्यामृत-प्रवाह' बड़ी प्रौढ़ भाषामें लिखा हुआ था। ये बड़े ही स्वतन्त्र विचारके मनुष्य थे और वेदशास्त्रके असली अर्थको किसी भी मूल्यपर छिपाकर कहना अनुचित समझते थे। इसीसे स्वामी दयानन्दजीकी बहुतसी बातोंका ये बराबर विरोध करते रहे। इन्होंने बहुतसी ऐसी भी बातें कह और लिख डाली थीं जिन्हें कुछ लोग नहीं सह सकते थे, यहाँतक कि कुछ लोगोंने इन्हें 'नास्तिक' तक कहनेमें सङ्कोच न किया, पर जबतक वे जीते रहे तबतक सारा पञ्जाब उन्हें हिन्दू धर्मका स्तम्भ समझता रहा।

पण्डित श्रद्धारामजीने सन् १८६७ ई० में "आत्म-चिकित्सा" नामकी एक "अध्यात्म-सम्बन्धी" पुस्तक लिखी जिसे सम्वत् १८७१ में हिन्दीमें अनुवाद करके छपाई। इसके अतिरिक्त "तत्त्वदीपक" "धर्मरक्षा" "उपदेश संग्रह" (व्याख्यानोंका संग्रह) "शतोपदेश" (दोहे) इत्यादि धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं जिनका बहुत प्रचार हुआ। जिस साल मालवीयजीने एफ़्० ए० परीक्षा पास की उसी साल सन् १८८१ ई० में अपनी उज्ज्वल कीर्त्ति छोड़कर पण्डित श्रद्धारामजी संसारसे चल दिए।

मालवीयजी बचपन ही से अपने दादा और पिताजीकी कृष्ण-भक्तिकी गोदमें पले थे। बड़े होकर जब वे स्कूलमें अध्यापक हुए थे तभी उन्हें यह बात काँटेकी तरह खटकती रही कि हिन्दू बालक अपने धर्मसे बिलकुल अपरिचित हैं। सन् १८८५ ई० में झज्झर-निवासी व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्म्माजीने मथुरासे 'मथुरा समाचार' नामक पत्र निकाला जिसमें सनातनधर्मके सिद्धान्तोंपर निरन्तर प्रकाश डाला जाता रहा। सन् १८६६ ई० में जो कलकत्तेमें दूसरी राष्ट्रीय महासभा हुई उसमें मालवीयजी तो पहुँचे ही थे, पण्डित दीनदयालुजी भी मुन्शी हर सुखरायके लाहौरसे निकलनेवाले 'कोहेनूर' के सम्पादककी हैसियतसे सम्मिलित हुए थे। मालवीयजीका पण्डित दीनदयालुजीसे परिचय हुआ और दोनोंमें उसी राष्ट्रीय महासभाके पुण्य अवसरपर मित्रता की ऐसी गाँठ लगी जो अबतक उसी दृढ़ताके साथ बँधी हुई है। उस राष्ट्रीय महासभाको देखकर दोनों महानुभावोंके मनमें यही विचार उठा कि इसी प्रकार सनातनधर्मकी भी कोई सुसङ्घटित संस्था हो जिसमें सभी सनातनधर्मी बैठकर एक साथ अपने प्यारे धर्मके पुनरुद्धार और उसकी रक्षा करनेका उपाय सोचें।

संयोग अच्छा था। पहले तो हरिद्वारके पास कनखलमें एक 'श्री गोवर्णाश्रमधर्म सभा कनखल' नामक एक संस्था बनी, किन्तु इसका काम ढीला रहा और यह गङ्गाजीकी तीव्र धारामें विलीन हो गई। इसीके आधारपर कमाऊँके पण्डित विनायकदत्त पाण्डेजी तथा पण्डित दीनदयालुजी आदिके परिश्रम और सहयोगसे सन् १८८७ ई० में महारानी विक्टोरियाकी जुबिलीके अवसरपर गर्मियोंसे पहले हरिद्वारके पवित्र तीर्थपर सनातनधर्मियोंकी बड़ी भारी सभा हुई। दूर दूरसे बहुतसे धर्म-प्रेमी इकट्ठा हुए। कपूर्थलाके दीवान श्री रामजसराय सी० एस्० आइ०, लाहौरके राजा हरिवंश सिंह, पण्डित नन्दकिशोरदेव शर्मा, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित देवीसहायजी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि कितनेही विद्वान् और विशिष्ट व्यक्ति उस सभामें आए। सन् १८८२ ई० में प्रसिद्ध थियोसोफ़िस्ट कर्नल औलकौटने अदयारमें थियोसोफ़िकल सोसाइटीके लिये ज़मीन ले ली थी और उनका भी मत चल पड़ा था। वे भी उक्त सभामें शामिल हुए और व्याख्यान दिया। उन्होंने सनातनधर्मियोंको सावधान करते हुए कहा था कि "अपने धर्मकी बुझी हुई चिनगारी तलाश करो और उसे फिरसे उद्दीपन करो।' पता नहीं औलकौट साहबने यह कैसे अनुमान कर लिया था कि हिन्दू धर्मकी चिनगारी बुझ गई थी। उस सभामें किसीने उन्हें यह समझाया या नहीं कि हिन्दू धर्म वह दिव्य ज्योति है जो भयङ्कर-से-भयङ्कर तूफ़ानोंके आनेपर भी उसी तेजसे जलती रही है। हाँ, सभी आँखें उसे सभी समय नहीं देख पातीं। श्रद्धा और विश्वासका चश्मा चढ़ाए बिना वह जल्दी नहीं दिखाई पड़ती। उसी सभामें प्रसिद्ध "भारत-धर्म-महामण्डल' की स्थापना हो गई और चारों ओर धर्मका प्रचार होने लगा।

प्रयागके वकील पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको कचहरी न लुभा सकी। व्यासका पुत्र आख़िर कहाँतक अपने संस्कारोंको समेटकर रख सकता था। मालवीयजी भी व्यास बन गए पर अपने पिताजी के समान नहीं, बल्कि कुछ थोड़ेसे परिवर्त्तनके साथ। भारतधर्म-महामण्डलके महोपदेशकोंमें इनकी भी गिनती होने लगी। प्रयागकी हिन्दू-धर्म-प्रवर्द्धिनी सभासे लेकर सनातनधर्मके बड़े सम्मेलनोंमें शायद ही कोई ऐसा सम्मेलन हुआ हो जिसमें मालवीयजीने सनातनधर्मकी महिमा न सुनाई हो और कथाएँ न कही हों। पण्डित दीनदयालु शर्मा और पण्डित मदनमोहन मालवीय ये दोनों ही सनातनधर्मके आधार समझे जाने लगे। सन् १८८५ ई० में २४ से २७ मार्च तक माननीय राजा लक्ष्मणदास सेठ सी० आई० ई० के सभापतित्वमें श्री वृन्दावनमें महामण्डलका दूसरा अधिवेशन हुआ। उसमें अध्यापक मालवीयजी पधारे और सनातनधर्मकी इस अखिल भारतीय संस्थामें मालवीयजीकी मधुर वाणी पहली बार सुनी गई। जिस प्रकार राष्ट्रीय महासभाके द्वितीय अधिवेशनमें मालवीयजीके पहले भाषणने ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया था उसी तरह भारत-धर्म-महामण्डलके द्वितीय अधिवेशनमें मालवीयजीके पहले ही व्याख्यानने सनातनधर्मी जनताको यह सुझा दिया कि 'अब कोई डर नहीं है, रक्षक आ पहुँचा है।' और सचमुच जिन्होंने ऐसी कल्पना की थी, और आशा लगाई थी उनकी

कल्पना भी सच हो गई और उन्हें निराश भी न होना पड़ा। सन् १९०० ई० में ६ से १३ अगस्त तक दिल्लीमें भारतधर्म-महामण्डलका बड़ा शानदार जल्सा हुआ और उसके सभापति हुए श्रीमान् महाराजा बहादुर दरभङ्गानरेश। मण्डपका पण्डाल ऐसा भव्य और सुन्दर बना था कि आजतक वैसा पण्डाल किसी भी सम्मेलनमें देखनेमें नहीं आया। मालवीयजी तो उस मण्डपको ही देखकर उछल पड़े थे। वह अधिवेशन सचमुच इतना शानदार हुआ कि उसके बारेमें लोगोंने कह दिया था कि 'न भूतो न भविष्यति' अर्थात् 'ऐसा न हुआ है न आगे होगा'। कम-से-कम अबतक तो वह बात सच होती चली जा रही है। देखें इस युगके जवानोंके भाग्यमें वैसा अनोखा सम्मेलन देखना लिखा है कि नहीं।

इसीके बाद ही निगमागम मण्डलीके संस्थापक श्री स्वामी ज्ञानानन्दजीसे पण्डित दीनदयालुजीका परिचय हुआ तो स्वामीजीने अपनी मण्डलीको भारतधर्म-महामण्डलके मिलाकर काम करनेकी इच्छा प्रकट की। व्याख्यान-वाचस्पतिजीको तो कोई भार लेनेवाला चाहिए था, उन्होंने मण्डलका काम उनके सिर छोड़ दिया और अपने धर्म-प्रचारके लिये इन्दौर चले गए। वहाँसे लौटनेपर स्वामीजीके कार्य्योंसे उनका मतभेद होने लगा। इसलिये सन् १९०२ ई० में मथुरामें महामण्डलकी रजिष्ट्री कराकर नई समितिके हाथ प्रबन्धका भार सौंपकर पण्डितजीने महामण्डलसे हाथ खींच लिया। इन नये हाथोंमें आकर महा-मण्डलकी क्या गति हुई यह तो अब सभी जान गए हैं। काशीमें अब इसका प्रधान कार्य्यालय है और स्वामी ज्ञानानन्दजी ही इसके सब कुछ हैं। अब मालवीयजीकी कथा सुनिए। स्वामी ज्ञानानन्दजीकी कार्य्य-प्रणालीसे मालवीयजीको भी सन्तोष न हो सका और इन्होंने एक नई सभा स्थापित करनेका विचार कर लिया था। सन् १९०६ ई० में प्रयागके कुम्भके अवसरपर मालवीयजीने 'सनातनधर्म' का विराट् अधिवेशन कराया जिसमें उन्होंने 'सनातनधर्म संग्रह' नामका एक बृहत् ग्रन्थ तैयार कराकर महासभामें उपस्थित किया और उसी सम्मेलनमें हिन्दू जाति तथा सनातनधर्मकी रक्षाके लिये तथा देशकी अविद्या दूर करनेके लिये 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' स्थापित करनेका प्रस्ताव महासभामें स्वीकृत हो गया। उस सम्मेलनमें ब्रह्मचर्य्याश्रम खोलनेका भी प्रस्ताव पास हुआ था।

कई बरस बादतक उस महासभाके कई बड़े-बड़े अधिवेशन मालवीयजीने कराए और दूर-दूरसे बड़े-बड़े विद्वान्, पण्डित, धनी-मानी, राजे-महाराजे उन सम्मेलनोंमें आते रहे। अगले कुम्भमें त्रिवेणीके सङ्गमपर व्याख्यान वाचस्पतिजीका 'सनातनधर्म महासम्मेलन' भी इस 'श्री सनातनधर्म महासभासे' ही आ मिला और सन् १९२१ ई० में जब एक ओर गान्धीकी आँधीमें सारा देश उड़ा जा रहा था, उस समय भी मालवीयजी बड़ी शान्तिसे सनातनधर्मकी वाटिकामें बाड़ लगा रहे थे। सनातनधर्म-सभा इन्हीं तूफ़ानी दिनोंमें बनी और काम करने लगी। तबसे मालवीयजीकी सनातनधर्म-सभा अलग काम करती रही है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी प्रधान शाखा पञ्जाब सनातनधर्म प्रतिनिधि सभाने जो पञ्जाबमें सनातनधर्मका शङ्ख फूँका है उसकी गूँज पञ्जाबके बाहर भी पहुँच गई है और लोग चौंक उठे हैं। इसका श्रेय अधिकतर गोस्वामी गणेशदत्तजीको है। श्री तीर्थराज प्रयागमें संवत् १९८४ के माघ कृष्ण ११ से माघ शुक्ल द्वितीया, तदनुसार सन् १९२८ जनवरीकी तारीख़ १८ से २४ तक अखिल-भारतवर्षीय-सनातनधर्म-महासभाका अधिवेशन मालवीयजीके सभापतित्वमें हुआ। इसमें भारतवर्षके अनेक प्रान्तोंके और अनेक हिन्दू राज्योंके प्रसिद्ध शास्त्र जाननेवाले पण्डित आए और प्रत्येक प्रस्तावपर अच्छी तरहसे विचार हुआ। २७ जनवरी सन् १९२८ ई० को वसन्तपञ्चमीके दिन काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें मालवीयजीने अखिल-भारतवर्षीय सनातनधर्म-महासभाकी नींव डाली। मालवीयजी इसके अध्यक्ष-पदपर प्रतिष्ठित रहे। सनातनधर्म महासभाके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये काशीसे 'सनातनधर्म' नामका साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा और लाहौरसे 'विश्वबन्धु' निकला।

हरिद्वारका ऋषिकुल ब्रह्मचर्य्याश्रम भी मालवीयजीके प्रसादसे वञ्चित न रहा। सबसे पहले मालवीयजीने ही अपने पाससे पचीस रुपए रायबहादुर दुर्गादत्त पन्तजीको दिए थे कि जाओ जाह्नवी तटपर ब्रह्मचर्य्याश्रम स्थापित करो। सन् १९०६ ई० में उसकी स्थापना हुई। तभीसे आप उसके संरक्षकों (ट्रस्टियों) में रहे हैं और लगातार दस वर्षतक उसकी शिक्षा-समितिके अध्यक्ष रह चुके हैं और बराबर उसके अधिवेशनोंमें सम्मिलित होकर उसके पाठ्य-क्रममें परामर्श देते रहे हैं।

सन् १९१९ ई० के जल्यानवाला बाग़ हत्याकाण्डके अवसरपर मालवीयजीने जो पञ्जाबकी मरहमपट्टी की और उसके आँसू पोंछे उसने मालवीयजीको पञ्जाबका बन्धु बना दिया और उन्हें सारा प्रान्त अपना सगा सम्बन्धी समझने लगा और देवताकी भाँति उनकी पूजा करने लगा। सन् १९२४ ई० में वे रावलपिण्डीमें प्रान्तीय सनातनधर्म सम्मेलनके सभापति हुए। उस वर्ष तीन सौ से अधिक सभाएँ बनीं और सौ से अधिक महावीरदल स्थापित हुए। उस सभामें उन्होंने अछूतोंको सार्वजनिक कूओंसे जल भरने देने और सार्वजनिक स्कूलोंमें पढ़ने देनेका उपदेश दिया। सन् १९२५ ई० में अमृतसरके प्रसिद्ध दुर्गियाना मन्दिर और सरोवरकी धर्म-यज्ञ करवा कर स्थापना की।

सन् १९२८ ई० के मार्च महीनेमें उनकी पञ्जाब-यात्रा मार्केकी हुई। सनातनधर्म-सभा, आर्य्यसमाज, हिन्दू-सभा, कांग्रेस-कमेटी और म्युनिसिपल कमेटी सबने आपका जी खोलकर सम्मान किया। पञ्जाबने दिखला दिया कि अपने हृदय-सम्राट्की पूजा किस प्रकार की जाती है। जगह-जगह, स्टेशन-स्टेशनपर सब लोग इनकी पूजाके लिये उपहार लिए खड़े थे। सनातनधर्म ही नहीं बल्कि सारी आर्य्य-जाति इन्हें अपना समझकर इनकी अर्चना करनेमें तत्पर थी। एक बार

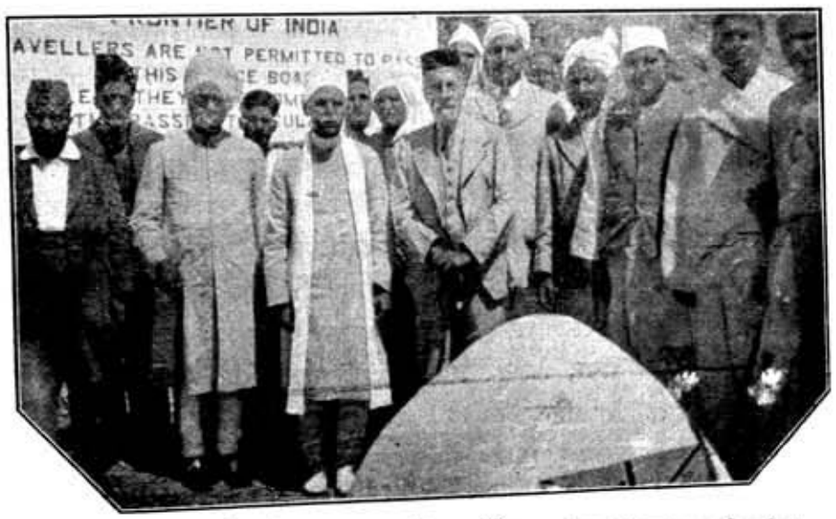

पञ्जाबके सनातनधर्मके दौरेके अवसरपर पेशावरमें 'भारतके द्वार' पर मालवीयजी।

लाहौरके सनातनधर्म-महासम्मेलनमें कुछ-आर्य्य-समाजी मित्रोंने पुराणोंपर आक्षेप करते हुए कुछ पर्चे बाँटे थे। मालवीयजीके हृदयपर इससे बड़ा आघात पहुँचा। उस सभामें लाला हंसराजजी आदि कुछ आर्य्यसमाजके नेता भी मौजूद थे। मालवीयजीने अपने दुःखको प्रकट करते हुए कहा कि 'श्री स्वामी दयानन्दजी बड़े विद्वान् और तपस्वी थे किन्तु वे पुराणोंका मर्म नहीं समझ पाए थे। मैं पुराणोंकी सत्यतापर शास्त्रार्थ करनेको हर समय तैयार हूँ, जो चाहे सामने आवे'। पर मालवीयजीकी इस चुनौतीका कुछ भी उत्तर न मिला।

सन् १९२९ ई० में पञ्जाबमें सनातनधर्मके प्रचारके सम्बन्धमें दौरा किया और सिन्ध-बलोचिस्तान-सम्मेलनके सभापति हुए। इसके बाद २१ से २४ अप्रैल सन् १९३४ ई० में रावलपिण्डीमें सनातनधर्म-महासम्मेलन आपकी अध्यक्षतामें हुआ। वहाँ जो स्वागत हुआ और जलूस निकाला गया वह अपूर्व ही था। यह मालवीयजीके ही उद्योगका फल है कि प्रति वर्ष प्रति पर्वपर धार्मिक-महोत्सव-कथा इत्यादि होती रहती है, जिससे धार्मिक वातावरण बनता चला जाता है और लोग भी धर्मभीरु हो चले हैं।

कितनी सनातनधर्म सभाओंके ये सभापति हुए, कितनी संस्थाओंकी नींव रक्खी, कितने भवनोंका उद्घाटन किया, यह तो बड़ी लम्बी गाथा है। गणेश हों तो लिखें, व्यास हों तो वर्णन करें।

गङ्ग नहरका झगड़ा

सन् १९१४ ई० में सरकारी नहर-विभागने हरिद्वारमें गङ्गाजीके प्रवाहको कुछ रोककर नहर निकालनेका प्रयत्न किया। पर हिन्दुओंकी ओरसे आन्दोलन हुआ और आपसमें फ़ैसला हो गया, किन्तु वह फ़ैसला कुछ इस प्रकार बना कि हिन्दू सदस्य उसे भली प्रकार न समझ सके और सन् १९१६ ई० में फिर गङ्गाजीकी अविच्छिन्न धाराके लिये आन्दोलन मचा। हरिद्वारमें १८ तथा १९ दिसम्बर सन् १९१६ ई० को युक्तप्रान्तके माननीय लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर सर जेम्स स्कौर्जी मेस्टन के० सी० एस्० आई०, एल् एल्० डी० के सभापतित्वमें एक सभा हुई जिसमें छः भारतीय नरेश, सात सरकारी अफ़सर और सोलह अन्य सज्जन और प्रतिनिधि थे जिनमें मालवीयजी भी थे। उन्होंने जो मत प्रकट किया था वह नीचे दिया जाता है। मालवीयजी बोले कि:—

"सन् १९१४ ई० वाले सम्मेलनमें जो लोग उपस्थित थे उन्होंने उस निर्णयको ठीक तरह नहीं समझा जो उन्हें मिलनेवाला था। उनके मनमें इस बातकी तनिक भी शङ्का नहीं थी कि सरकार अपने वचनका पालन नहीं कर रही है। बात केवल इतनी ही थी कि उन्होंने निर्णयको ठीक नहीं समझा। दो बातोंसे ही सन्देह पैदा हुआ था। पहला तो यह कि जो नई धारा खुलनेवाली थी उसका स्वरूप नहरके जैसा न हो। नहर तो एक हज़ार मीलतक चली गई है किन्तु उसपर कहीं घाट नहीं है। लोगोंको गङ्गाजीतक जानेमें बड़ा रुपया व्यय करना पड़ता है। सरकारने जो सूचना प्रकाशित की है उससे मैंने यह समझा कि बाँधमें एक और दरवाज़ा खुल जायगा किन्तु अब पता चला है कि यह दरवाज़ा उस फाटकमें रहेगा जो बराबर पानीके ऊपर रहेगा। हमें नहरसे कोई विरोध नहीं है, हमें नहरके लिये अधिक पानी ले लेनेमें भी कोई विरोध नहीं है, किन्तु हम चाहते हैं कि बाँधमें एक ऐसा मार्ग बना दिया जाय कि हमारी आवश्यकताके लिये उसमेंसे निरन्तर पर्य्याप्त मात्रामें जल आता रहे। इस विषयमें भारत भरमें जो गम्भीर क्षोभ फैला हुआ है वह मैं वर्णन नहीं कर सकता। लोग बीकानेर, जैसलमेर आदि दूर-दूर देशोंसे आते हैं और उनको यह विश्वास होता है कि गङ्गाजीकी धारा अविच्छिन्न और शुद्ध है। मेरा कथन यह है कि धारा बिल्कुल प्राकृतिक होनी चाहिए। उसमें किसी तरहका कृत्रिम बाँध आदि नहीं होना चाहिए। समाचार-पत्रोंमें जो इस विषयपर वादविवाद प्रकाशित हुए हैं उनसे स्पष्ट है कि लोगोंकी यह इच्छा है कि इतना जल आवे कि वे आनन्दसे स्नान कर सकें। गङ्गाजीमें हज़ारों, लाखों मनुष्य स्नान करते हैं। इसलिये यह मार्ग इतना चौड़ा होना चाहिए कि नीचेके सभी स्थानोंपर शुद्ध जल मिल सके। फाटक लगा देनेसे सभी असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। सम्भवतः सन् १९१४ ई० की सभामें उपस्थित लोगोंने और जनताने इस विषयको ठीकसे नहीं समझा था। गङ्गाजीकी पवित्रताका ध्यान रखकर यह असन्तोष अवश्य दूर करना चाहिए। यदि इसके लिये कुछ अधिक धन भी व्यय हो तो भी जनताको सन्तुष्ट करना ही चाहिए। कहा जाता है कि यदि नहरका पानी कम कर दिया गया तो किसानोंको बड़ा कष्ट होगा, किन्तु कोई भी हिन्दू अपने आत्मा और धर्मके आदेशोंसे अपने आर्थिक लाभको अधिक नहीं समझेगा। इस दृष्टिसे पाँच फ़ीटका द्वार काफ़ी नहीं है। पाँचसे दस लाख यात्री स्नान करनेके लिये तीर्थोंपर आते हैं, बड़ी-बड़ी दूरसे आते हैं और उन्हें बड़ी असुविधाका सामना करना पड़ता है। अपने विश्वासके लिये वे कोई भी कष्ट सहनेको तैयार हैं। जब लोगोंके विश्वासकी बात है तो उसके लिये एक या दो लाख रुपयेके व्ययपर विचार नहीं करना चाहिए। यह समझ लीजिए कि उनका विश्वास है कि गङ्गाजी लोगोंको शुद्ध करती और पापोंका नाश करती हैं। मुझे आशा है कि इसके लिये अवश्य कुछ उपाय किया जायगा।"

लाट साहबने फाटकके विषयमें प्रश्न किया तो मालवीयजीने उत्तर दिया कि "यदि यह फाटक उसी तरह खुला हो जैसे खम्भोंपर बना हुआ पुल होता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर मैं फाटक या जलद्वार बनानेके विरुद्ध हूँ।"

इसका फल यह हुआ कि यह सिफ़ारिश मान ली गई और गङ्गाजीकी धारा अविच्छिन्न रखनेका प्रबन्ध हो गया।

११ अप्रैल सन् १९३३ ई० को फिर गङ्गा सभा और नहर-विभागके अफ़सरोंकी, हरकी पैड़ीपर पर्य्याप्त जल पहुँचानेके निमित्त, एक सभा हुई, जिसमें मालवीयजी भी मौजूद थे। गङ्गा सभाकी शिकायत यह थी कि नहर-विभागने सन् १९१६ ई० में दिए हुए वचनोंका पालन नहीं किया। चीफ़ इञ्जिनीयरने अपनी कठिनाइयाँ सामने रक्खीं और आगेसे जाड़ेके दिनोंमें अधिक जल बहानेका वचन दिया। इसी सभामें यह प्रस्ताव पेश किया गया कि धारा नं० १ में एक हज़ार घनवर्ग जल प्रति सेकिण्ड बहानेके बदले अब तीन हज़ार घनवर्ग जल प्रति सेकिण्ड बहाया जाय। चीफ़ इञ्जिनीयरने कहा कि यह सन् १९१६ ई०के फ़ैसलेके विरुद्ध बात है। इसपर मालवीयजीने ९ मई सन् १९२२ ई०के एक नहर-विभागके पत्रकी ओर ध्यान आकर्षित किया जिससे कि नहर-विभाग उक्त कार्य्य करनेके लिये बाध्य था। इसपर चीफ़ इञ्जिनीयरने फिरसे जाँच करनेका वचन दिया।

जो लोग गङ्गाजीको एक साधारण नदी समझते हों उनके लिये यह आन्दोलन भले ही बाहियात जँचता हो, पर जो गङ्गाजीकी पवित्र धारामें अपनी जननी और पालन करनेवाली माताका स्वरूप देखता हो वह भला गङ्गाजीकी दुर्दशाको कैसे सहन कर सकता था।

प्रयागमें सत्याग्रह

बहुतसे लोगोंने बीच-बीचमें बहुत बार मालवीयजीको 'नरमदलवाले', 'सरकारसे दबनेवाले', 'जेलसे दूर भागनेवाले' और 'कुर्सीवाले राजनीतिक' तक कह डाला, पर ये लोग उन्हीं स्कूलके इन्सपेक्टरोंकी तरह हैं जो स्कूलका निरीक्षण करनेके समय वहाँके किसी कोनेमें मकड़ीका जाला देखकर स्कूलको एकदम गन्दा बता डालते हैं। पर जिन्होंने मालवीयजीको भीतर-बाहर परखा है वे ही उनका बड़प्पन देख पाते हैं। महापुरुषकी थाह लगानेके लिये चाहिए महापुरुष जैसा दिल। किसीको अच्छा या बुरा तो कोई भी कह सकता है। आख़िर किसीका मुँह तो कोई

पकड़ नहीं सकता पर उसके गुणोंको, उसके भीतरी भावोंको अच्छी तरह समझनेके लिये चाहिए समालोचककी बुद्धि जो न्याय और अन्याय, गुण और अवगुण, भलाई और बुराई सबको परख ले। मालवीयजीको अच्छी तरह जाननेवाले लोग कह सकते हैं कि मालवीयजीने मौक़ा पड़नेपर कभी पीछे पैर नहीं रक्खा। जो दूसरोंको *'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्'* का उपदेश देता हो—वह कौरवोंकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको देखकर कभी नहीं डर सकता। सन् १९२४ ई० में अर्धकुम्भी पड़ी। प्रयागमें गङ्गाजी सदा अपनी चाल बदलती रहती हैं। आज क़िलेके पास यमुनासे भेंट रही हैं तो कल झूँसीके किनारे उनकी मुलाक़ात हो रही है। हर बरसातके बाद गङ्गाजी कुछ नया रङ्ग दिखाती रहती हैं। उस साल गङ्गाजीकी धारा ऐसी हो गई थी कि अधिक संख्यामें लोगोंका त्रिवेणी-सङ्गममें स्नान करना अवश्य भयानक था। लाखों भक्त और यात्री जमा थे। वहाँके अधिकारियोंने प्रान्तीय-सरकारसे बात-चीत करके यह हुकुम निकाल दिया कि त्रिवेणी-सङ्गमपर कोई स्नान नहीं करने पावेगा। मालवीयजीको मालूम हुआ। उन्होंने प्रान्तीय सरकारसे बड़ी लिखा-पढ़ी की। स्थानीय अधिकारियोंसे भी त्रिवेणी-सङ्गमपर स्नान करनेकी आज्ञा माँगी, पर सब बेकार। यह मालवीयजीका अपना अपमान नहीं था, यह था सारी हिन्दू जातिका अपमान। मालवीयजी इसे सहन न कर सके और उन्होंने सत्याग्रह करनेकी ठान ली। सारा मेला मालवीयजीके साथ था। सभी त्रिवेणीमें ग़ोते लगाना चाहते थे। गङ्गा और यमुनामें ही स्नान करना होता तो लोग हरिद्वारसे प्रयागतक कहीं गङ्गाजी या जमुनाजीमें डुबकी लगा सकते थे। पर वे तो आए थे 'तिरवेनीजीके असनान' को। आगे-आगे मालवीयजी, पीछे-पीछे कोई दो सौ और लोग सङ्गमकी ओर चल पड़े। ठीक सङ्गमपर एक बल्लियोंका मज़बूत बन्द बना हुआ था कि जिससे लोग सङ्गममें न स्नान कर सकें। वहाँ पहुँचनेपर पुलीसने मालवीयजीको रोका और इनके पास जो सीढ़ी थी, वह भी इनसे ले ली गई। मालवीयजी और उनके सभी साथी वहीं बैठ गए। इन सत्याग्रही सिपाहियोंमें हमारे राष्ट्रके आजके कर्णधार पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी थे, जो मालवीयजीके सेनापतित्वमें त्रिवेणीके तटपर सत्याग्रहकी पहली कक्षामें भर्त्ती हुए थे। यह कौन जानता था कि सत्याग्रह-पाठशालाका यह छात्र एक दिन इतना नाम कमा लेगा। सूर्य्य सिरपर चढ़ता चला गया, पर ये सत्याग्रही वहाँसे न टले। ऊपर सूर्य्य तप रहा था, नीचे रेती और इन दोनोंके बीच इस पुण्य क्षेत्रमें एक पुण्य व्रत लेकर ये तपस्वी तप रहे थे। इनके दोनों ओर पैदल और घुड़सवार पुलीस खड़ी थी। पुलीस भी उकता गई थी और बैठे हुए लोग भी। जवाहरलालजीको क्या सूझा कि झट कूदकर उस बन्दपर चढ़ गए। फिर क्या था, बहुतसे लोग उनके पीछे हो लिए। जवाहरलालजीने उस बन्दपर राष्ट्रीय झण्डा भी टाँग दिया। घुड़सवार पुलीस आदमियोंको धक्का दे रही थी और डण्डे भी घुमा रही थी, पर किसीको चोट नहीं पहुँचाई। उधर यह सब हो रहा था, इधर मालवीयजी चुप्पी साधे बैठे थे, जैसे सिद्धि पा जानेपर साधकका हाल होता है। पर थोड़ी देरके बाद ही—जैसे बिजलीका बटन दबानेसे—वे अचानक घुड़सवारों और पैदल सिपाहियोंके बीचसे तीरकी तरह निकल गए। पण्डित जवाहरलालने अपने आत्मचरितमें इस घटनाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'मालवीयजीने जो उस समय करतब दिखाया, वह साधारण आदमीके लिये भी कठिन था, फिर बुढ़ापेकी कायामें लिपटकर ऐसी फुर्त्ती दिखाना तो बड़े भारी आश्चर्य्यकी बात थी।' फिर क्या था, सब उनके पीछे-पीछे धारामें कूद पड़े। इधर-उधर हाथ-पैर पीटकर पुलीस भी वहाँसे हट गई। सत्याग्रहकी जीत हो गई।

हरिद्वारमें फिर तैयारी

अप्रैल सन् १९२७ ई० में हरिद्वारमें कुम्भ होनेवाला था। हिन्दुओंके विरोध करने और गङ्गा सभाके बहुत कहने-सुननेपर भी मेलेके अधिकारी न माने और ब्रह्मकुण्ड (हरकी पैड़ी) पर एक पुलिया बना ली, जिसपर अफ़सर लोग जूता पहनकर चढ़ते थे। सन् १९२२ ई० में ही लोगोंके विरोध करनेपर वह पुल हटा दिया गया था और उसके पास ही दस-पन्द्रह फ़ीटकी दूरीपर द्वीप चबूतरा मौजूद था, फिर भी वहाँके अधिकारियोंने उसके लिये हठ की। कभी-कभी सरकारी अफ़सर सरकारसे भी बढ़कर हठी हो जाते हैं। हठीली माँके बेटे भी हठीले हों तो अचरज क्या? मालवीयजी वहाँ पहुँचे और अधिकारियोंसे बात-चीत की पर उसका कुछ फल न हुआ। मालवीयजीने कह दिया कि यदि पुल न तोड़ा जायगा तो सत्याग्रह होगा। जितने स्वयंसेवक वहाँ काम करनेके लिये आए थे वे सब सत्याग्रहियोंमें शामिल होनेको उत्सुक थे। मालवीय-जीने तेरह सौ शब्दोंका एक बड़ा लम्बा चौड़ा तार संयुक्तप्रान्तके गवर्नरके नाम भेजा जो नीचे दिया जाता है।

हरिद्वार,

१० अप्रैल सन् १९२७ ई०।

सनातनधर्म महासम्मेलनके अध्यक्ष और हिन्दू महासभाके उपाध्यक्षकी हैसियतसे मैं एक पुलके प्रयोगके सम्बन्धमें निम्नाङ्कित बातोंकी ओर श्रीमान्का ध्यान आकर्षित करता हूँ। हरिद्वारमें धार्मिक कुण्डके ऊपर अस्थायी रूपसे हिन्दुओंके विरोध करनेपर भी इस पुलका निर्माण हुआ है। जो अगणित हिन्दू तीर्थयात्रा करने आते हैं उनके मनमें इस पुलके बननेसे बड़ी उत्तेजना फैली हुई है। जो द्वीप चबूतरा पवित्र कुण्डके सम्मुख स्थित है, क़रीब बारह वर्ष पहले बना था।

इस घाटके निर्माणके पूर्व, कुण्डमें स्नान करनेवाले यात्रियोंको सँभालनेके लिये कुण्डके ऊपर एक पुल बना दिया जाता था। जहाँपर पुल खड़ा किया जाता है उस जगहसे केवल दस या पन्द्रह फ़ुटकी दूरीपर द्वीप चबूतरा बनाया गया है। अतएव पुल बनानेकी आवश्यकता पहलेसे अब और भी कम हो गई है, और हिन्दू लोग बहुत दिनोंसे इसका विरोध भी करते आ रहे हैं। हिन्दू जनताकी सम्मति मानकर कुण्डके ऊपरवाला पुल सन् १९२२ ई० में उखाड़ दिया गया था।

गत अक्तूबर मासमें श्रीगङ्गा सभाको पता चला कि ब्रह्मकुण्डमें पुलके बदले एक निरीक्षण मचान बनानेकी स्वीकृति म्युनिसिपल बोर्डने दी है। २० अक्तूबर सन् १९२६ ई० के एक पत्रमें सभाने इस प्रस्तावका विरोध किया। श्रीगङ्गा सभाके मन्त्रीने म्युनिसिपल बोर्डके पास इस आशयका एक पत्र भेजा।

"यह स्मरण होगा कि हिन्दुओंने इस पुलका विरोध कई आधारोंपर किया था। उनमें एक यह है कि इस प्रबन्धके कारण अत्यन्त धार्मिक स्थान ब्रह्मकुण्ड है, उसके भीतरतक भी हिन्दू पहुँच जाते हैं और उसके ऊपर कई हिन्दू भी जूता पहनकर चले गए हैं। प्रस्तावित निरीक्षण मचानके सम्बन्धमें वे विरोध उसी रूपसे सत्य हैं। स्नानके प्रबन्धके लिये जो बोर्डने उत्साह दिखाया है उससे श्रीगङ्गा सभा अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट करती है, लेकिन वह समझती है कि द्वीप चबूतरेकी सीढ़ियोंके समीप, या उन्हींके ऊपर, या ब्रह्मकुण्डके उत्तरवाले पुलके समीप, एक उसी प्रकारका मचान बनानेसे स्नानके प्रबन्धकी व्यवस्था हो सकती है। जिस हिन्दू जातिके धार्मिक कार्य्योंकी पूर्त्तिके निमित्त सारा प्रबन्ध बोर्ड एवं मेलेके अधिकारियों-द्वारा होता है, उसकी भावनाओंको बिना चोट पहुँचाए हुए भी उस उद्देश्यकी पूर्त्ति भली भाँति हो सकती है। वास्तवमें बोर्ड या कुम्भ मेलेके अधिकारियोंका लक्ष्य भी यही है। अतएव श्रीगङ्गा सभा, आदरसहित बोर्डसे ऊपर लिखी हुई बातोंको ध्यानमें रखकर अपने

प्रयोग करनेको वे बहुत बुरा समझते आए हैं। बुद्धि और हृदय यदि किसी बातको स्वीकार करे तो ठीक है, पर धार्मिक सिद्धान्तोंको समझानेके लिये झूठे जोशको उभाड़ना सबसे बुरी बात है।

प्रयागमें गत अर्धकुम्भके अवसरपर ता० २३ जनवरीसे २६ जनवरी १९३६ ई० तक अखिल भारत-वर्षीय सनातनधर्म-महासभाका विशेष अधिवेशन हुआ। २३, २४ और २६ जनवरीको पूज्य मालवीयजी तथा २५ जनवरीको माननीय महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह बहादुर महाराजा दरभङ्गाके महत्त्वपूर्ण सभापतित्वमें विद्वन्मण्डली और प्रतिनिधियोंद्वारा बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुए जिनमें ये मुख्य हैं:—

"(१) यह सनातनधर्म महासभा कार्य्यकारिणी समितिको आदेश करती है कि वह इस बातका प्रबन्ध करे कि आगामी शिवरात्रिके दिन जहाँ-जहाँ अदीक्षित हिन्दू सन्तान हैं वहाँ-वहाँ ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज-पर्यन्त पुरुष और स्त्री समस्त सनातनधर्मावलम्बी सन्तानको, जिनको दीक्षा लेनेकी श्रद्धा हो, तत्तद्देशीय शास्त्रमर्य्यादाके अनुसार शैव पञ्चाक्षर मन्त्रकी दीक्षा दी जाय और समस्त हिन्दू सन्तानको आदेश करती है कि वे शिवरात्रिका व्रत रहें और शिवरात्रिको शिव मन्त्रसे परमात्माकी उपासना करें।

(२) यह महासभा इस बातको मानती है कि जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गई हैं वे सनातनधर्मको माननेवाली हैं और इसलिये समस्त सनातनधर्मियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे उन जातिके लोगोंको सनातनधर्मके अनुयायी होनेका पूरा लाभ प्राप्त करनेमें सहायता करें।

(३) महासभाकी सम्मतिमें यह बात निर्विवाद है कि जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गई हैं वे भी सनाधर्मकी माननेवाली हैं और सनातनधर्मी होनेके कारण उनको देव-दर्शनका अधिकार है। इसी लिये भारतके अनेक सुप्रसिद्ध मन्दिरोंमें ये देव-दर्शन करते हैं और तीर्थराज प्रयागमें त्रिवेणीके सङ्गममें सबके साथ स्नान करते हैं।

(४) महासभाकी सम्मति है कि जहाँ इन जातियोंको अबतक देव-दर्शन प्राप्त नहीं है, वहाँ इनको गर्भ मन्दिरके बाहरसे सर्वसामान्य मर्य्यादाके अनुसार दर्शन पानेका अवसर देना चाहिए। इसलिये महासभा मन्दिरके प्रबन्धकर्त्ताओंसे निवेदन करती है कि वे अपने-अपने मन्दिरोंकी स्थितिके अनुसार इन जातियोंको देव-दर्शन प्राप्त करनेका प्रबन्ध कर दें।

(५) इस महासभाकी सम्मतिमें अस्पृश्य कही जानेवाली जातियोंको सर्वसाधारण कुएँ, तालाब, बावली, बाग, सड़क, सराय, स्मशान घाट तथा सर्वसाधारण स्कूल और सभाओंमें जानेके लिये कोई रोक नहीं होनी चाहिए।

(६) निश्चय हुआ कि महासभाके उद्देश्योंमें छठवें उद्देश्यके आगे नीचे लिखा उद्देश्य बढ़ा दिया जाय—महासभाके उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिये हिन्दू सन्तानमें शारीरिक और धार्मिक बल बढ़ानेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म सभाके साथ-साथ महावीर दलका स्थापन करना।"

इन प्रस्तावोंसे एक बात और भी स्पष्ट हो जायगी कि सनातनधर्मी लोगोंके भावोंमें इतने ही दिनोंमें कितना अन्तर आ गया।

मालवीयजीने अपने हिन्दूधर्मोपदेश नामक छोटीसी पुस्तिकामें अपने सम्पूर्ण धार्मिक विचार भर दिए हैं। उनपर ज़रासा विचार करनेसे ही उनके सनातन-धर्मका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा। वे कहते हैं:—

परमेश्वरको प्रणामकर सब प्राणियोंके उपकारके लिये, बुराई करनेवालोंको दबाने और दण्ड देनेके लिये, धर्मस्थापनके लिये, धर्मके अनुसार सङ्गठन-मिलापकर गाँव-गाँवमें सभा करनी चाहिए। गाँव-गाँवमें कथा बिठानी चाहिए। गाँव-गाँवमें पाठ-शाला और अखाड़ा खोलना चाहिए।

पर्व-पर्वपर मिलकर महोत्सव मनाना चाहिए।

सब भाइयोंको मिलकर अनाथोंकी, विधवाओंकी, मन्दिरोंकी और गौ माताकी रक्षा करनी चाहिए, और इन सब कामोंके लिये दान देना चाहिए।

स्त्रियोंका सम्मान करना चाहिए।

दुखियोंपर दया करनी चाहिए।

उन जीवोंको नहीं मारना चाहिए जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिए जो आत-तायी हों, अर्थात् जो स्त्रियोंपर या किसी दूसरेके धन या प्राणपर वार करते हों या जो किसीके घरमें आग लगाते हों। यदि ऐसे लोगोंको मारे बिना अपना या दूसरोंका प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।

स्त्रियोंको भी, पुरुषोंको भी, निडरपन, सचाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य्य, धीरज और क्षमाका अमृतके समान सदा सेवन करना चाहिए।

इस बातको कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मोंका फल भला और बुरे कर्मोंका फल बुरा होता है, और कर्मोंके अनुसार ही प्राणीको बार-बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है।

घट-घटमें बसनेवाले भगवान् विष्णुका, सर्वव्यापी ईश्वरका सुमिरन सदा करना चाहिए, जिनके समान दूसरा कोई नहीं—जो कि एक ही अद्वितीय हैं, और जो दुख और पापके हरनेवाले शिव-स्वरूप हैं। जो सब पवित्र वस्तुओंसे अधिक पवित्र, जो सब मङ्गल कामोंके मङ्गल-स्वरूप हैं, जो सब देवताओंके देवता हैं और जो समस्त संसारके आदि सनातन अज अविनाशी पिता हैं।

सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओंको चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्मका पालन करते हुए एक दूसरेके साथ प्रेम और आदरसे बर्त्तें।

अपने विश्वासमें दृढ़ता, दूसरेकी निन्दाका त्याग, मतभेदमें सहनशीलता (चाहे वह धर्म-सम्बन्धी हो वा लोक-सम्बन्धी) और प्राणीमात्रसे मित्रता रखनी चाहिए।

सुनो इस धर्मके सर्वस्वको और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो काम अपनेको बुरा या दुखदायी जान पड़े उसको दूसरेके साथ नहीं करना।

मनुष्यको चाहिए कि जिस कामको वह नहीं चाहता है कि कोई दूसरा उसके साथ करे, उस कामको वह भी किसी दूसरेके प्रति न करे। क्योंकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है जो उसको प्रिय नहीं है, तो उसको कैसी पीड़ा पहुँचती है।

मनुष्यको चाहिए कि न कोई किसीसे डरे न किसीको डर पहुँचावे। श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंकी वृत्तिमें दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन जीवे जैसा सज्जनको जीना चाहिए।

हर एकको उचित है कि यह चाहे कि सब लोग सुखी रहें, सब नीरोग रहें, सबका भला हो, कोई दुःख न पावे, प्राणियोंके दुखको दूर करनेमें तत्पर यह दया बलवानोंकी शोभा है। धर्मके अनुसार चलनेवालोंको अभी इसका त्याग नहीं करना चाहिए।

देशकी उन्नतिके कामोंमें देशभक्त पारसी, मुसलमान, इसाई, यहूदियोंके साथ मिलकर भी काम करना चाहिए।

यह भारतवर्ष, जो हिन्दुस्तान नामसे प्रसिद्ध है—बड़ा पवित्र देश है। धन, धर्म और सुखका देनेवाला यह देश सब देशोंसे उत्तम है।

'कहते हैं कि देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे लोग धन्य हैं जिनका जन्म इस भारत-भूमिमें होता है, जिसमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्गका सुख और मोक्ष दोनोंको पा सकता है।'

यह हमारी मातृ-भूमि है, यह हमारी पितृ-भूमि है। जो लोग सुजन्मा हैं—जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैं, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि पुरुषोंके, महात्माओं के, आचार्य्योंके, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंके, गुरुओं के, धर्मवीरोंके, शूरवीरोंके, दानवीरोंके, स्वतन्त्रताके प्रेमी देश-भक्तोंके उज्ज्वल कामोंकी यह कर्म-भूमि है। इस देशमें हमको परम भक्ति करनी चाहिए और धनसे भी इसकी सेवा करनी चाहिए।

जिस धर्ममें परमात्माने गुण और कर्मके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उपजाए और

जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंके साधनमें सहायक मनुष्यका जीवन पवित्र बनानेवाले ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम स्थापित हैं, सब धर्मोंसे उत्तम इसी धर्मको हिन्दू धर्म कहते हैं। जो लोग सारे संसारका उपकार चाहते हैं उनको उचित है कि इस धर्मकी रक्षा और इसका प्रचार करें।"

मालवीयजी कट्टर सनातनधर्मी हैं। यह लोगोंका विश्वास है और यह विश्वास ठीक भी है। पर मालवीयजीका कट्टर 'सनातनधर्म' कोई सँकरी कोठरी नहीं है जहाँ अपने सिवा कोई समा ही न सके बल्कि वह तो एक बड़ा लम्बा चौड़ा बाड़ा है जिसमें आप भी रहें और बाहरवाले भी बड़े प्रेमसे आकर बैठें। उनका हृदय उस मन्दिरके समान है जहाँ ऐसे देवताकी मूर्त्ति है जिसे सब लोग पूजते हैं। न जाने कितनी बार सिक्खोंके बीचमें बैठकर मालवीयजीने उनके गुरुओंकी वीरताका वर्णन करके वीर सिक्खोंको रुला दिया। आर्य्य-समाजके जल्सोंमें उन्होंने स्वामी दयानन्दजीकी हिन्दू सेवाका वर्णन करनेमें कभी सङ्कोच न किया। अभी हाल ही में लाहौरके डी० ए० वी० कौलेजकी जुबिलीके अवसरपर आर्य्य-समाजके नेताओंने मालवीयजीको सभापतित्वके लिये बुलाया। बीमार होनेपर भी मालवीयजी वहाँ पहुँचे और २४ अक्तूबर सन् १९३६ ई० को उनके पण्डालमें पहुँचकर सबसे पहले आपने महात्मा हंसराजको छातीसे लगाया और अपने भाषणमें आपने कहा कि—'स्वामी दयानन्दजीने ऐसे समय अपना काम शुरू किया जब सब तरफ़से अविद्याका अन्धकार फैला हुआ था। यह उनकी तपस्या और देशप्रेमका ही फल था कि उन्होंने जीते जी वैदिक सभ्यताके दर्शन किए क्योंकि वैदिक सभ्यता ही संसारकी सबसे ऊँची सभ्यता थी।"

डी० ए० वी० कौलेज् लाहौरकी जुबिलीके अवसरपर मालवीयजीका स्वागत

आजकल बौद्धधर्मका भी काफ़ी आन्दोलन हो चला है और सौभाग्यसे सारनाथ ही उसका केन्द्र है। वहाँके नवीन मन्दिरके संस्थापक स्वर्गीय अनागरिक धर्मपाल भिक्खु मालवीयजीके बड़े मित्र थे। कई बार उनसे मिलने वहाँ जाया करते थे और उनकी मृत्युपर भी मालवीयजी उनके अन्तिम दर्शन करने वहाँ पहुँचे थे। बौद्धोंने भी मालवीयजीको अनेक बार सम्मानित किया है। बिड़लाजीने सारनाथमें बौद्ध यात्रियोंके लिये आर्य्य-धर्मशाला नामक जो विशाल भवन बनवाया है उसकी नींव भी मालवीयजीके हाथों ही पड़ी थी।

मालवीयजी सारनाथमें आर्य्य-धर्मशालाकी नींव रख रहे हैं।

मुसलमान और इसाइयोंकी सभामें भी मालवीयजीका बड़ा सम्मान हुआ है और उनके भाषण हुए हैं।

मालवीयजी अपने धर्मकी निन्दा तो सुन ही नहीं सकते, साथ ही दूसरे धर्मकी निन्दा भी नहीं सह सकते। एक बार काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आर्य्य-समाजका जल्सा हो रहा था उसमें एक उपदेशक महोदयने इस्लाम तथा इसाई मतपर जो मनमें आया कहा। मालवीयजीको यह बात बुरी लगी और उन्होंने प्रबन्धकोंसे यह कहला भेजा कि हिन्दू-विश्वविद्यालयमें ऐसे लोगोंके व्याख्यान नहीं होने चाहिए जिनकी वाणी संयत न हो और जो दूसरे धर्मों और धर्मप्रवर्त्तकोंकी निन्दा करें।

हमारे देशमें धार्मिक शास्त्रार्थ बहुत होते रहे हैं और हो रहे हैं किन्तु शायद इन शास्त्रार्थोंमें श्री शङ्कराचार्य्य और श्री मण्डन मिश्रके शास्त्रार्थके जैसा निर्णय कभी नहीं मिला। अब तो शास्त्रार्थ होते हैं, लोग इकट्ठा होते हैं, जिधर शोर मचानेवाले अधिक होते हैं वही दल जीत जाता है और उसके बाद अख़बारोंसे पता चलता है कि दोनों दल जीत गए और दोनों दल हार गए। सब अपनी-अपनी ढपलीपर अपना-अपना राग गाते हैं। इस रिवाजका जितनी जल्दी मुँह काला हो उतना अच्छा। क्या अच्छा हो यदि सबका हृदय धार्मिक मामलोंमें मालवीयजीके जैसा हो कि अपना धर्म भी पालन करें और दूसरेके धर्मका आदर करना भी सीख जायँ। यदि इतनी धार्मिक सहनशीलता हम लोगोंमें आ जाय तो हमारी बहुतसी शक्तियाँ सङ्गठित हो जायँ और मौक़ा पड़नेपर हम दूसरोंको दिखा दें कि देखो हम क्या हैं?

कहा जाता है कि यदि किसीको धर्मके दर्शन करने हों, धर्मसे खुलकर बातें करनी हों और धर्मकी ज्योति लेनी हो तो उसे जाकर मालवीयजीसे मिल लेना चाहिए। बहुतसे लोगोंके हृदयमें धर्म आकर निवास करता है पर मालवीयजी तो सशरीर धर्म हैं जिनके आचार-विचार, वेशभूषा और बोलचालसे धर्मकी जोति छिटकती है। उनकी वाणी इसी लिये अकसर कह उठती है—"सिर जावे तो जाय प्रभु मेरो धर्म न जाय"

समाजकी नींव

'सात कनौजिए नौ-नौ चूल्हे' वाली कहावत तो सुनी ही जाती है पर 'तीन हिन्दू तेरह मत' वाली कहावत उससे भी पुरानी है। नन्दवंशकी चितापर चाणक्यने कूटनीतिके बलपर जो राजनीतिक एकताका महल बनाया था उसे महाराज अशोककी दयाका नद बहा ले गया और उसके खँडहरोंने घरमें तो झगड़ा डाल ही दिया साथ ही उसने बाहरवालोंको भी उसमें भाग लेनेका न्यौता दे दिया। इस राजनीतिक उथल-पुथलमें 'जैसा राजा वैसी प्रजा' के अनुसार मनु और बुद्ध दोनोंका राज्य रहता आया। भूलेकी पँगोंकी तरह भारतके भोले-भाले नर-नारी मनु और बुद्धके बीचमें झूलने लगे। जो बड़े थे, जिनके हाथमें तलवार थी या जिनको भगवान्‌ने बुद्धि, विद्या या धन दिया था उन्हींका राज्य था।

ग़रीबी केवल पेटको ही भूखा नहीं रखती, वह बुद्धि और आत्मगौरवको भी भूखा रखती है, और इसी लिये ग़रीब लोग चुप मारकर अपनी पीठ उघाड़ देते हैं जिसपर चारों ओरसे कोड़े पड़ने लगते हैं। पहले कुछ दर्द ज़रूर होता है पर फिर आदत पड़ जाती है और कुछ दिनोंमें वह आदत ऐसी मज़बूत हो जाती है कि वे उसे अपना एक धर्म मान लेते हैं, जैसे बहुतसे स्कूलके लड़के मास्टरोंकी बँतोंके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि हया-शर्म काफ़ूर हो जाती है, पिटनेमें उन्हें मज़ा आने लगता है। और फिर दूसरे लोग अपनी नालायकी न समझकर उन्हें नालायक समझ लेते हैं और उन्हें धकेल देते हैं पहाड़से नीचे। उन्हें सिसक-सिसककर जीनेके लिये ऊपरसे कभी-कभी दो रोटी डाल देते हैं। यही दशा हिन्दू समाजमें शूद्रोंकी हुई।

कहावत है कि 'घरकी मुर्ग़ी दाल बराबर'। घरमें गुणोंकी क़द्र नहीं होती। कोई कितना भी पढ़-लिख गया हो, यश पा गया हो पर घरवाले तुलसीदासको 'वही तुलसिया' समझते हैं। शूद्रोंकी घरमें तो कोई पूछ हो न सकी पर बाहरसे जो अतिथि—सचमुच वे अ-तिथि ही आए थे—आए, उन्हें हिन्दुस्तानके हरे-भरे मैदानमें भरपेट भोजन मिलने लगा, मीठा पानी मिला और मिले रसीले मीठे फल, बस वे अपना पहाड़ी घर भूल गए और यहीं जम गए। पर उन्हें अपनी रक्षाके लिये बड़े दलकी ज़रूरत थी। उन्होंने साम, दाम, दण्ड और भेद, सभी तरहसे यहाँ वालोंको अपने दलमें मिलाना शुरू किया। ऊँची जातिवाले तो भला उनकी चमक-दमकके चक्करमें आने क्यों लगे पर जो भूखे थे, पीड़ित थे, अपमानित थे, उन्हें जहाँ पेटभर भोजन मिला वहींकी गाने लगे। खुले आम हमारे अतिथि लोग हमारे घरकी नींव खोद-खोदकर अपना-अपना मकान उठा रहे थे, पर हम सोते ही रहे। हमें यह समझ नहीं आई कि जिस दिन हमारी नींव ही नहीं रहेगी उस दिन हमारा यह भवन कहाँ रहेगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने आकर बहुत समझाया, प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल भी अपने ढङ्गसे इस लूटको रोक गए और उखड़ी हुई नींव बहुत कुछ जमा गए, पर फिर वही हाल हुआ। सिक्खोंके वन्दनीय गुरुओंने भी बड़ी सँभाल तो की पर न जाने कब और कैसे हमारे सिक्ख भाई हिन्दू समाजके विशाल भवनकी एक कोठरी लेकर अलग हो गए और उसीकी रक्षामें लग गए मानों उनका पूरे भवनसे कुछ भी नाता नहीं है—अब उन्हें कौन समझावे कि यदि इस विशाल भवनपर कुछ भी आँच आई तो उनकी कोठरी भी आँच खाए बिना न रहेगी।

आर्य्य-समाजने केवल उपदेश मात्र नहीं दिए बल्कि वह काममें भी जुट गया। जो ईंटें बाहरवाले लोग उठा ले गए उन्हें उनके मकानमेंसे खोद लाया और जो उठाकर ले जा रहे थे उन्हें बीचसे ही छीन लिया। पर इसमें दोष यही था कि यह काम तो ठीक करता जाता था पर घर-वालोंको भी आलसी, अन्धविश्वासी और ढोंगी कहता जाता था; इसीलिये घरके बहुतसे लोगोंने इसका साथ न दिया। हम समझते हैं कि यदि यह आपसमें बुरा-भला कहना बन्द हो जाता तो हम लोग शायद अपने मकानकी रक्षा और भी अच्छी तरह कर सकते। पहेली छोड़कर अब हम सीधी-सीधी बात कहना आरम्भ करते हैं। आर्य्य-समाजने शुद्धिका काम शुरू कर दिया। उसका बड़ा विरोध हुआ पर वह डटा रहा। सनातनधर्म गिरे हुएको उठानेमें लजाता था, इसलिये वह चुपचाप एक ओर खड़ा यह सब देखता रहा।

शिवरात्रिके दिन सन् १९२७ ई० को काशीमें दशाश्वमेध घाटपर मालवीयजी मन्त्र-दीक्षा दे रहे हैं।

कट्टर सनातनधर्मियोंमें मालवीयजी एक ऐसे महापुरुष निकले जिन्होंने बेचारे दीनों और पतितोंकी पुकार सुनी और उनकी सहायताको दौड़ पड़े। उन्होंने सबसे पहले सन् १९०९ ई० में नीचे वर्गोंकी शिक्षाके लिये एक कौन्सिलमें भाषण दिया। सन् १९२१ ई० के मोपला विद्रोहने मालवीयजीको चौकन्ना कर दिया और उन्होंने हिन्दू महासभा स्थापित करके हिन्दुओंको एक डोरीमें बाँध रखनेका उद्योग किया। साथ ही उन्होंने देखा कि हमारे अछूत भाई हमारे हाथसे निकले चले जा रहे हैं, उन्हें कोरे ज़बानी जमाख़र्चसे सन्तोष नहीं देना चाहिए बल्कि उन्होंने यह विचार किया कि कोई ऐसा उपाय हो कि इनका उद्धार भी हो और साथ ही उनके मनमें यह भाव भी हो कि हमारा समाजमें कोई स्थान है और मुसीबतमें हमारी मदद करनेवाला भी कोई है। इसलिये मालवीयजीने शुद्धि-का बीड़ा तो उठाया ही साथ ही उन्होंने अपनी सनातनधर्म सभामें अस्पृश्योंको मन्त्रदीक्षा देनेका भी प्रस्ताव स्वीकृत करा दिया। यह कोरा प्रस्ताव ही न रह गया बल्कि एक दिन सन् १९२७ ई० में काशीमें महाशिवरात्रिके दिन दशाश्वमेध घाटपर उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभीको ॐ नमः शिवाय,

ॐ नमो नारायणाय, ॐ रामाय नमः, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय आदि मन्त्रोंकी दीक्षा दी। दीक्षा लेनेवालोंमें ब्राह्मण भी थे और चाण्डाल भी थे।

वह दृश्य भूला नहीं जा सकता। जिस समय मालवीयजी रेशमी दुपट्टा ओढ़कर एक-एकको मन्त्र और उपदेश देते थे और फिर उनसे वचन लेकर आशीर्वाद देते थे तो जान पड़ता था मानो समुद्रकी भीषण लहरोंमें पड़े हुए सैकड़ों हज़ारों प्राणियोंको बचानेके लिये कोई दिव्य ज्योति हज़ारों हाथ बढ़ाकर उन्हें ऊपर उठा रही है। वह उनका तेज देखने ही योग्य था।

३० दिसम्बर सन् १९२८ ई० को कलकत्ता कांग्रेस हो रही थी, उधर मालवीयजीने हावड़ा पुलके पास लोहाघाटपर सबको मन्त्रदीक्षा देनेकी घोषणा कर दी। बड़ा शोर हुआ। मालवीयजीकी यह बात बहुतसे सनातनधर्मियोंको अच्छी न लगी। वे सब वहाँ टूट पड़े मानों मालवीयजी कोई बड़ा भारी पाप करने जा रहे हों। एक व्यक्तिने उसका यह आँखोंदेखा वर्णन किया है :—

"ता० ३० दिसम्बर सन् १९२८ ई० को प्रातःकाल कलकत्तेमें गङ्गातटपर लोहाघाट नामक स्थानपर पण्डित मालवीयजी द्वारा सब हिन्दुओंको ॐकारके साथ दीक्षा देनेकी तैयारी की गई थी। एक शामियानेके नीचे होम और दीक्षाकी तैयारी की गई। क़रीब आठ बजे सुबह मालवीयजी दीक्षा-स्थानपर पधारे। दीक्षा लेनेवाले लोग इकट्ठा हो ही रहे थे कि कुछ मारवाड़ी सज्जन और कुछ प्राचीन विचारके शास्त्री बहुतसे लोगोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने खड़ा किया हुआ शामियाना गिरा दिया और होम और दीक्षाकी सामग्री भी नष्ट-भ्रष्ट कर दी। यह सब देखकर मालवीयजी गङ्गाजीके किनारे गए और वहाँ दीक्षा-कार्य्य करने लगे। परन्तु उपद्रवियोंने वहाँ भी उनका पीछा किया और उनके कार्य्यमें बाधा डालने लगे। मालवीयजीने उनसे कहा कि यदि कोई इस बारेमें शास्त्रीय विरोध हो तो मैं आपके किसी भी पण्डितसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूँ। इतनेमें उन्होंने मालवीयजीको घेर लिया और उनपर कीचड़ मट्टी फेंकने लगे। परन्तु मालवीयजी अत्यन्त शान्तिसे और हँसते हुए उसे सहन करते रहे।

कुछ देरके बाद शान्ति हुई और एक पण्डित अपना विरोध स्थापित करनेके लिये आगे बढ़े। विरोधी पक्षके सब शास्त्री-मण्डलकी आज्ञासे एक पण्डितने क़रीब तीन घण्टेतक व्याख्यान देकर अपना मत स्थापित किया। इसके बाद उनका उत्तर देनेके लिये पण्डितजी खड़े हुए। पण्डितजीके खड़े होते ही चारों ओरसे जयजयकारकी ध्वनि गूँज उठी। मालवीयजीने विवादके निर्णयके लिये विरोधी पण्डितोंको कौनसे ग्रन्थ मान्य हैं—यह पहले पूछ लिया और बाद क्रमशः एक-एक प्रश्नका उन्हीं ग्रन्थोंके उद्धरणोंके प्रमाण रूपमें रखते हुए उत्तर दिया। पण्डितजीकी विचार-सरणी लोगोंको अत्यन्त अच्छी लगी। दर्शकोंने प्रचण्ड जयजयकारके द्वारा पण्डितजीका गौरव किया। क़रीब दो बजे दिनको विरोधी पक्षके लोग अपजस लेकर लौट गए।"

उसके बाद मालवीयजीने फिर स्नान किया और क़रीब साढ़े तीन बजेतक दीक्षा-कार्य्य चलता रहा। समयके अभावसे सिर्फ़ चार सौ आदमियोंको दीक्षा दी जा सकी।

हिन्दू महासभाके अध्यक्ष डा० मुञ्जे, श्रीमत्स्वामी सत्यानन्दजी, श्री पद्मराज जैन आदि प्रमुख नेता व अन्य बहुतसे स्वयंसेवक पण्डितजीके साथ प्रातःकालसे दीक्षा समारम्भ समाप्त होनेतक बराबर खड़े रहे। महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण, बङ्गाल हिन्दू महासभाके अध्यक्ष भी समारम्भमें उपस्थित थे।

दीक्षार्थी स्नान करके आते थे। उनको पञ्चगव्य भक्षण कराया जाता था। अनन्तर उनको 'ॐ नमः शिवाय', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' अथवा 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रकी विधिपूर्वक दीक्षा दी जाती थी। दीक्षा देनेके बाद जिस मन्त्रकी दीक्षा दी गई हो वह मन्त्र छपा हुआ तथा एक वस्त्र उस मनुष्यको ओढ़नेके लिये दिया जाता था। बाद चने और बतासे देकर कार्य्य समाप्त किया जाता था।

फिर मन्त्र-दीक्षा

कुछ दिनोंके बाद कलकत्तेमें फिर एक दीक्षा-समारम्भ हुआ। यह दूसरा दीक्षा समारम्भ तारीख़ ६ जनवरी सन् १९२८ को हुआ था। अबकी बार दीक्षा-स्थानके चारों ओर पुलीस और स्वयंसेवकोंका पूरा प्रबन्ध था। यह सब होते हुए भी जब पण्डितजी नदीमें स्नानको उतरे तब एक शिखा सूत्रधारी गुण्डा छुरा लेकर उनपर टूट पड़ा। परन्तु सौभाग्यवश पण्डितजी बाल-बाल बच गए और गुण्डा पकड़ लिया गया। बादमें पण्डितजीने बहुतसे अछूतों तथा अन्य हिन्दुओंको दीक्षा दी। अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। कुछ अंग्रेज़ सज्जन भी आए थे। दीक्षा-कार्य्य प्रातःकाल नौ बजे प्रारम्भ होकर दिनके बारह बजे धूमधाम-सहित निर्विघ्न समाप्त हुआ।

इसके बाद भी प्रयागमें, काशीमें गतवर्ष कितनी बार मालवीयजीने मन्त्र-दीक्षा दी। गतवर्ष १२ मार्च, सन् १९३६ ई० को मालवीयजी नासिक गए। वहाँ गोदावरी किनारे राजेबहादुर घाटपर आपने लगभग डेढ़ सौ हरिजनोंको 'नमः शिवाय' मन्त्रकी दीक्षा दी। यहाँ भी मालवीयजीका जो सम्मान हुआ और नगरकी विभिन्न संस्थाओंने जो उन्हें मानपत्र दिए उसका क्या वर्णन किया जाय। मन्त्रदीक्षाके बारेमें कितने लोगोंने उनका विरोध किया पर मालवीयजीने उस वैद्यके समान आचरण किया जो रोगीके लाभके लिये उसकी गालियोंकी चिन्ता नहीं करता।

इसीके बाद १ अगस्त सन् १९३३ ई० को महात्मा गान्धीने हरिजन आन्दोलन आरम्भ किया, जिसका मुख्य उद्देश्य था—हरिजनोंके लिये सार्वजनिक स्थानोंका प्रयोग कराना और मन्दिरोंमें उनका प्रवेश

नासिकमें मालवीयजी

कराना। इसके लिये महात्मा गान्धी चाहते थे कि एक विधान बन जाय कि हरिजन लोगोंके लिये मन्दिर खुल जायँ। महात्मा गान्धीने इस कार्य्यके लिये सारे भारतका दौरा किया। उन्हें स्थान-स्थानपर हरिजन आन्दोलनके लिये धन भी मिला और उसका सबसे बड़ा परिणाम यह निकला कि कितने ही सार्वजनिक मन्दिर हरिजनोंके लिये खुल गए, कितने कुओंसे उन्हें पानी निकालनेकी सुविधा हो गई, हरिजन पाठशालाएँ खुल गईं और सार्वजनिक स्कूलोंमें उनके पढ़नेकी व्यवस्था हो गई। गान्धीजीकी सब बातें तो मालवीयजी मानते थे पर वे यह नहीं चाहते थे कि शूद्रों-को मन्दिरोंमें प्रवेश करनेका अधिकार सरकारी क़ानून-द्वारा मिले। गान्धीजीसे जिन्हें थोड़ासा भी परिचय होगा उन्हें यह जानकर सचमुच अचरज होगा कि सरकारमें ज़रासा भी विश्वास न रखनेवाले गान्धीजी, हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके लिये सरकारकी शरण

लेना चाहते थे। पर उनका यह दौरा १ अगस्त सन् १९३४ ई० को काशीमें आकर समाप्त हो गया। उस अवसरपर काशी सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके मैदानमें बड़ी भीड़ हुई। वहाँ मालवीयजीने अपनी इस नीतिको बड़े सुन्दर शब्दोंमें प्रकट किया। उसी अवसरपर पहली अगस्त सन् १९३४ ई० को लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथिके दिन काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें भी गान्धीजीका भाषण हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना मत प्रकट किया।

नीचेके महात्मा गान्धीके भाषणमें ही आप महात्मा गान्धीके हरिजनोद्धारके उपाय और मालवीयजीके हरिजनोद्धारके उपायोंका पूरा विवरण पा सकेंगे। गान्धीजीने कहा:—

"पूज्य मालवीयजी! भाइयो और बहनो!

मुझे ईश्वरने दुबारा काशीमें आनेका मौक़ा दिया है, मुझे इसका बड़ा हर्ष है, और मुझे खुशी होती है कि

१ अगस्त सन् १९३४ ई० को हिन्दू विश्वविद्यालयके शिवाजी भवनमें देशके दो महापुरुष महात्मा गान्धी और मालवीयजी।

इस पवित्र धाममें ही मेरा हरिजन दौरा समाप्त हो रहा है। मैं जो कुछ पैग़ाम देना चाहता हूँ वह यहीं ही दे सकता हूँ। मुझे दुःख है कि वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घकी तरफ़से जो पण्डितजी आ रहे थे और जिनके लिये प्रबन्ध भी हो गया है वे कारणवशात् यहाँ अभीतक न आ सके। मुझे यह प्रिय लगता है कि जिनका इस बारेमें हार्दिक विरोध है वे भी उसी प्लेटफ़ार्मपर आकर बोलें जिसपर मैं बोलता हूँ। मेरा यह कार्य्य धार्मिक ही है। इसमें दुराग्रहको स्थान नहीं है। इसके लिये कोई भी प्रयत्न किया जाय वह अपूर्ण ही होगा। मुझसे ग़लतियाँ हो सकती हैं और हुई हैं। इसमें भी मैं ग़लती नहीं कर सकता, ऐसा मैं दावा नहीं कर सकता और न मैंने किया। जो मैं आज मानता हूँ वह नई बात नहीं है। बचपन ही से यह मेरे जीवनके साथ गुँथी रही है। यह मुझे किसीने बतलाया नहीं है। जिस समय मेरे ऐसे विचार हुए उस समय मैं स्वेच्छाचारी स्वच्छन्द बालक था। मुझे रामनामका मन्त्र सिखाया गया था जिससे मैं भयमुक्त और सुरक्षित रहा। और जो पुरुष भी उसका पालन करनेकी चेष्टा करे वह भी भयमुक्त हो सकता है, तो यह बात मेरे जीवनमें कोई नई पैदा नहीं हुई है। इस वृद्धावस्थामें भी पचास या सौ वर्षसे अधिकसे जो मूर्खता चली आई है उसे हटानेमें मुझे तनिक भी सङ्कोच न होगा।

मुझे कहना न होगा कि जितना प्रयत्न शास्त्रियों और पण्डितोंसे विचार करनेका हो सकता है, मैंने किया। जिन शास्त्रियोंका अभिप्राय है कि अस्पृश्यता शास्त्रसम्मत है, मैं ऐसे शास्त्रियोंसे मिला। कुछ निमन्त्रणसे आए और कुछ स्वेच्छासे। वे मानते थे कि आधुनिक अस्पृश्यता शास्त्रसिद्ध है। मैंने उनकी बात भी सुनी किन्तु उनकी बातोंने मेरे दिलपर कोई असर नहीं डाला। मुझे जब कभी अपने अज्ञानका पता चला है तो मैंने बिना किसीकी प्रेरणाके ही अपनी भूल स्वीकार कर ली है। शास्त्रियोंकी बातें समझते हुए भी मेरे दिलपर असर डालनेवाला कोई अस्पृश्यताका प्रमाण नहीं मिला। कोई अस्पृश्य

भाइयोंकी संख्या सात करोड़के क़रीब बताते हैं किन्तु इसमें अतिशयोक्ति है। वास्तवमें वे पाँच करोड़ है। इसके प्रमाणके लिये हम जिस स्मृतिको मानते हैं वह नई स्मृति हम सेन्ससके नामसे पुकारते हैं। इस सेन्ससके अनुसार ही हम कहते हैं कि इतने अस्पृश्य है। उसमें प्रति दस वर्षमें परिवर्त्तन होता जाता है। चन्द जातियाँ जो दस वर्षमें अस्पृश्य मानी जाती हैं वे अगले दस वर्षमें स्पृश्य हो जाती हैं। और जो आज स्पृश्य हैं वे दस वर्ष बाद अस्पृश्य हो जाती हैं। इसके लिये शास्त्रमें कोई प्रमाण नहीं है। इन लोगोंसे जैसा बर्त्ताव चल रहा है तो शायद ही ऐसा ही कोई नास्तिक हो जो कहेगा कि इसके लिये शास्त्रमें प्रमाण है। यदि एक भङ्गीका बालक कुएँपर जाता है तो पता चलनेपर लोग उसे पानी नहीं भरने देते। उसे छू जानेपर कुआँ अस्पृश्य माना जाता है और वह हरिजन बालक पीटा जाता है, इस अन्यायके लिये हिन्दू जाति ही ज़िम्मेदार है।

एक हरिजन बालकको न्यूमोनिया हुआ, फेफड़े बिगड़ गए, खाँसी और सर्दी भी हुई, १०४ डिगरी बुख़ार हो गया। उसके लिये डाक्टर चाहिए, डाक्टरके लिये फ़ीस चाहिए, डाक्टर हिन्दू होता हुआ भी उसकी नाड़ी परीक्षाके लिये मुसलमान डाक्टर भेजता है। तब डाक्टर महोदय उसको बाहर बुलाते हैं और ऊपरसे देखकर ही पुड़िया देनेका वचन देकर चले जाते हैं। जब डाक्टर मुझे देखता है तो अपने यन्त्रको कभी यहाँ लगाता है, कभी वहाँ लगाता है और अच्छी प्रकारसे परीक्षा करता है, किन्तु हरिजनको केवल देखकर ही वह रोग पहचान लेता है। यदि ऐसा एक ही मौक़ा होता तो मैं इसे व्यक्तिगत स्वभावका दोष बतलाकर ही छोड़ देता और किसीके सिर ज़िम्मेदारी न डालता परन्तु ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। सेन्ससके दफ़्तरमें जो अछूत लिखे गए हैं वे जन्मसे हैं ऐसा मेरी बुद्धि और मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता। इसका उत्तर शास्त्री लोग भी मुझे न दे सके। अभी-अभी देवनायकाचार्य्यजी आए हैं, जिस ध्यानसे आपने मेरे शब्द सुने हैं उसी प्रकार पण्डितजीका भाषण भी सुनें और जैसा असर पड़े, जो आप उचित समझें वैसा निश्चय कर सकते हैं। मैं सिर्फ़ एक बात और कहूँगा। काशीके पण्डितोंकी ओरसे जो मुझे स्वागतपत्र मिला है उसके लिये मैं आभारी हूँ। उसे मैं आप लोगोंका आशीर्वाद मानता हूँ। जो द्रव्य मुझे मिला है उसके लिये मैं धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि वह बहुत थोड़ा है परन्तु मुझे विश्वास दिलाया जा रहा है कि अभी और संग्रह करनेकी चेष्टा की जायगी।"

इसके बाद वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घके श्री देवनायकाचार्य्यजीने अपना मन्तव्य प्रकट किया और इसके पश्चात् पूज्य मालवीयजीने भाषण दिया:—

"देवियो और सज्जनो!

अभी आप लोगोंके सामने श्री देवनायकाचार्य्यजीने बड़ी शिष्टता और सभ्यताके साथ अपना मत प्रकट किया है। इससे पहले कई बार शास्त्रका विचार करनेका प्रयत्न किया और उसका परिणाम छापकर विद्वानोंके विचारके लिये भेज भी दिया गया था। मैं बहुत समयसे इस प्रयत्नमें हूँ कि निष्पक्ष होकर विद्वान् लोग यह निर्णय करें कि शास्त्र क्या कहता है। मुझे खेद है कि अबतक ऐसा न हो सका। किन्तु मुझे आशा है कि यह निर्णय शीघ्र ही होगा और विद्वन्मण्डली रागद्वेष छोड़कर जो बतावे और निर्णय करे उसे सबको मान लेना चाहिए। तभी सबका भ्रम भी मिट जायगा। मुझे गान्धीजीके सन्देशके विषयमें कहनेसे पूर्व कुछ याद आया। वही मैं कहना चाहता हूँ। अस्पृश्यता और मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें मेरा अपने भाई (गान्धीजी) से कुछ मतभेद है। मैं उनकी बहुतसी बातें मान लेता हूँ और वे भी मेरी बातें मानते हैं और मुझे आशा है कि मैं धीरे-धीरे उन्हें मना भी लूँगा। मेरी रायमें ऐसा बिल एसेम्बली-द्वारा नहीं पास होना चाहिए। गान्धीजीकी राय है कि वह बिल हिन्दुओंकी

बहुसंख्याकी रायसे पास हो, दूसरी जातिके लोगोंकी रायसे न बने। इस बारेमें मैं कल अपने भाई (गान्धीजी) से विचार करूँगा।

मन्दिरके विषयमें तो आप जानते हो कि हमारे यहाँ कोई विष्णुका मन्दिर है, कोई शिवका और कोई कालीका। फिर किसके मतसे मन्दिर-प्रवेशका निर्णय हो। इसके लिये तो शास्त्रके अनुसार ही निर्णय होना चाहिए। गान्धीजीकी भी राय है कि सनातनियोंको चोट न पहुँचे। जबसे उन्होंने यह प्रयत्न प्रारम्भ किया है तबसे बहुत उन्नति हुई है। अस्पृश्यता भी बहुत मिटी है। लोगोंके विचारोंमें भी बहुत परिवर्त्तन हुआ है। मतभेद तो भाई-भाईमें होता है। मेरा और इनका (गान्धीजी) का सम्बन्ध बड़ा घना है। मतभेद प्रकाशनसे परस्पर बैर नहीं होता। अपना-अपना मत रखना तो स्वभाव है। जो न्यायकी बात हो, धर्मकी बात हो और देश-जातिके मङ्गलके लिये हो, वही करनी चाहिए। आप लोग स्मरण रखिए कि महात्मा गान्धीका हृदय सनातनधर्मके भीतर बैठा है और वे इसे बहुत चाहते हैं। अछूत लोगोंको हिन्दू जातिसे बाहर निकालनेका ईसाइयोंने प्रयत्न किया, मुसलमानोंने प्रयत्न किया और कितने ही अछूत भाइयोंको मुसलमान और ईसाई बना भी लिया। जो गौके रक्षक थे, गौको माता मानते थे, मुहसे राम-राम जपते थे, चुटिया रखते थे, वे आज ईसाई और मुसलमान हो गए। वे अब धर्मरक्षक न रह गए। इसी बातपर महात्मा गान्धीने यह आवाज़ उठाई। चुटिया जिनके सिरपर, मुँहमें राम-राम, घरपर सत्यनारायणकी कथा होती हो ऐसे सनातनधर्मके माननेवाले चमार, भङ्गीको ईसाइयोंने अपने दलमें बुलाया और मुसलमानोंने अपने, किन्तु इन्होंने अनेकों कष्ट सहकर भी गङ्गा और गऊको, राम और कृष्णको न छोड़ा। मेरा सिर उनके सामने झुक जाता है। उन्हींको लाभ पहुँचानेके लिये ही गान्धीजीने सिर उठाया। मैं सनातनधर्मके नाते चाहता हूँ कि जो लाभ मुसलमान और ईसाइयोंको मिलता हो वही लाभ डोम और भङ्गीको भी मिले। हमारे सनातनधर्मकी महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी भी जातिमें रहे किन्तु यदि धर्मसे चले तो उसका उद्धार हो जाता है। मैं धर्मग्रन्थोंके अध्ययनके अनुसार कहता हूँ कि इनको भी देवदर्शनका लाभ मिलना चाहिए। यही अभिलाषा गान्धीजीकी भी होगी। स्कन्दपुराणमें भी इसका प्रमाण है कि यदि चाण्डाल सदाचारी हो तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके समान आदर पानेके योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता हो तो फिर हम अपने अछूत भाइयोंको सदाचारी क्यों न बनावें। हम उसका सदाचार बनाकर दिखा दें कि जो भाई छोटे-से-छोटा हो उसे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।

एक ब्राह्मणको अपने ज्ञानका बड़ा अभिमान था। जब वह एक स्त्रीके पास गया तो उसने बतलाया कि मिथिलामें धर्मव्याधके पास जाकर शिक्षा लो। मिथिला जानेपर उसने देखा कि धर्मव्याध दूकानपर बैठा मांस बेच रहा था। किन्तु उसके संस्कार बड़े अच्छे थे, उसको धर्मका ज्ञान था। ब्राह्मणने उससे धर्मका उपदेश सुना। इस कथाका अर्थ यह है कि चाण्डाल जातिमें होनेपर भी उसके पूर्व जन्मके संस्कार इतने उत्तम थे कि ब्राह्मणने उससे धर्म सुना। जहाँ नीमका जङ्गल होता है वहाँके सब पेड़ कड़वे हो जाते हैं, किन्तु जहाँ चन्दन होता है वहाँ सब वृक्षोंमें सुगन्ध आ जाती है। सत्सङ्ग और सदाचारकी यह महिमा है।

सदाचार ऐसी वस्तु है कि इससे नीच कुलमें उत्पन्न होकर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है। इस प्रकारका उपदेश महात्मा गान्धी आपको देते हैं। वह चाहते हैं कि इन लोगोंकी तकलीफ़ दूर हो। यदि कुएँपर एक हमारा अछूत भाई रामदास जाय, जिसके सिरपर चुटिया है, जो एकादशी व्रत रखता है, सत्यनारायणकी कथा सुनता है, गङ्गास्नान करता है, यदि वह प्यासा रह गया तो समझ लो कि हमारे पूर्व पितर सब प्यासे रह गए। चाण्डाल भी हमारे

अङ्ग हैं। हमारा धर्म है कि स्मृतिमें जो उनके लिये धर्मका मार्ग दिखाया है उसका उपदेश दें। क्या आप लोगोंमेंसे कोई चाहते हैं कि उन्हें पीनेको पानी न मिले? (श्रोता—नहीं-नहीं)। क्या आप चाहते हो कि जिन सड़कोंपर सब लोग चलतेहों उनपर उन्हें चलनेको न मिले? (कभी नहीं); क्या आप चाहते हो कि जिन स्कूलोंमें ईसाई-मुसलमानोंके लड़के पढ़ते हैं उनमें वे न पढ़ने दिए जायँ? (कभी नहीं)। हाँ यह हो सकता है कि जिन पाठशालाओं और विद्यालयोंमें केवल द्विजातियोंके पढ़नेकी व्यवस्था हो वहाँ वे न पढ़ें किन्तु सर्वसाधारण स्कूलोंमें तो उनको पढ़ने ही देना चाहिए। मेरी यही इच्छा है कि ऐसी जगहोंमें जहाँ रोक हो वह मिटे।

आज चार या पाँच करोड़ हिन्दू अछूत कहलाते हैं। इनमें वास्तवमें अछूत वे ही हैं जो मैले काम करनेवाले हैं। वे मानव जातिकी वह सेवा करते हैं जो कोई कर नहीं सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर दें तो हमारी क्या दशा होगी, विचार कर लो। भगवान्‌ने कहा है:—"स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" अपने-अपने काममें लगे हुए लोग मेरा पद पा सकते हैं। ये भङ्गी-चमार भाई सब अपना काम करें। फिर स्नान करके यदि सूर्य्यनारायणको अर्घ्य दें, मन्त्र जपें तो बोलो इनका मङ्गल होगा कि नहीं? (अवश्य-अवश्य) देह धोकर यदि हमारा भाई चाण्डाल और हमारी बहन चाण्डालिनी यदि मन्त्र जपे, रामका नाम ले, कथा सुने, व्रत करे, तो धर्मकी उन्नति हुई कि नहीं? (हुई)

मैं गान्धीजीकी कई बातें नहीं मानता हूँ। किन्तु मुझे विश्वास है कि इनके मतभेदको मैं मिटा दूँगा।

मैं चाहता हूँ कि इन ग़रीब बहनोंको ऐसा अवसर प्राप्त हो कि साढ़े चार बजे घरसे निकलकर मल साफ़ करके नहाएँ और अच्छे कपड़े पहनकर राम-नाम जपें, बताओ तब उन्नति होगी कि नहीं? जबसे मौण्टेगू चेम्सफ़र्ड स्कीम आई तबसे ईसाई कहते हैं कि इनमेंसे आधे हमें दो। मुसलमानोंने अलग हाथ पैर फैलाए, लालच दिए, किन्तु धन्य हैं ये भाई, सब तकलीफ़ उठाकर भी ये हिन्दू-धर्ममें ही रहे। मैं इनके आगे अपना माथा टेकता हूँ।

नृसिंह पुराणमें लिखा है—

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा अन्त्यज—सबके लिये भगवान्‌के दर्शनका अधिकार है। जहाँ मन्दिरके अधिकारी प्रसन्नतासे जानेका अवसर दें वहाँ गर्भद्वारके बाहरसे ही दर्शन करा दें। जहाँ न आज्ञा दें वहाँ न जायँ। मेरा विचार है कि हर एक बस्तीमें ऐसे मन्दिर बनवा दिए जायँ, जिनमें सब जातियाँ जा सकें और भजन-कीर्त्तन, कथा-उपदेश सुन सकें।

हमें इन अछूतोंको जल देना है, रहनेको स्थान देना है, और इन्हें शिक्षा देनी है। मैं तो चाहता हूँ कि उनके चार करोड़ घरोंमें मूर्त्तियाँ रक्खी हों और भगवान्‌का भजन हो, तभी तो मङ्गल होगा। महात्माजीने जो बारह महीनेसे कार्य्य उठाया था वह परसोंतक इस विश्वनाथजीकी नगरीमें समाप्त हो जायगा। भगवान् इन्हें दीर्घायु करें और सदा मङ्गल करें जिससे ये सबका दुःख दूर करें। आपकी तपस्या और परिश्रमके लिये धन्यवाद है। भगवान् विश्वनाथ आपको दीर्घजीवी करें।"

इसके बाद तो बहुत बड़े-बड़े विद्वानोंने भी मन्त्र-दीक्षा देनी शुरू की, जिनमें महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण और पण्डित यज्ञनारायण उपाध्यायजीका नाम उल्लेखनीय है। गत वर्ष सन् १९३६ ई० की शिवरात्रिका महोत्सव तो सबसे अधिक भव्य निकला। काशीमें हाथियोंपर वेद भगवान् और छहों दर्शनोंके स्वरूप छः विद्वानोंका जलूस था। बड़े-बड़े पण्डित शिव-महिम्न-स्तोत्रका पाठ कर रहे थे उनके पीछे अपार जनसंख्या, हरिजनोंके अखाड़े, गाने-बजानेवालोंकी गाड़ियाँ—एक अपूर्व समारोह था—वर्णन नहीं किया जा सकता। दशाश्वमेध

प्रयागमें हरिजनोंकी बस्तीका निरीक्षण करते हुए मालवीयजी।

घाटपर जलूस पहुँचा, वहाँ सभा हुई। बीमार होनेपर भी मालवीयजी वहाँ आए और उपदेश दिया। फिर अगले दिन उन्होंने मन्त्र-दीक्षा दी।

इस मन्त्र-दीक्षाका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह हुआ कि काशीके सारे हरिजन यह समझने लगे कि हम हिन्दू हैं, हमें भी रामनाम जपनेका अधिकार है।

हरिजनोंके उद्धारके लिये मालवीयजीने इतना ही नहीं किया बल्कि कई बार हरिजनोंके मुहल्ले देखनेके लिये गए, उन्हें सफ़ाईका उपदेश दिया और उनके मकान बनानेके लिये उद्योग किया।

मालवीयजीके इस कामने काशीके कुछ पण्डितोंको नाराज़ भी कर दिया और इतना नाराज़ कर दिया कि कुछ लोग तो मालवीयजीको गालियाँ देने लगे। पर हम पूछते हैं सच्चे हृदयसे कि क्या वे लोग मालवीयजीके विशाल हृदयको ज़रा भी पहचान पाए हैं? इस बातको हम दावेके साथ कह सकते हैं कि जैसा सादा और परम पवित्र जीवन मालवीयजीका है उतना पवित्र जीवन शायद ही काशीके किसी कोनेमें मिल सके। पर हम समझते हैं कि वे विद्वान् पण्डितगण भी यदि सूक्ष्म दृष्टिसे एकान्तमें बैठकर विचारेंगे तो उन्हें ज्ञात हो जायगा कि मर्य्यादा-पुरुषोत्तम रामने जब निषादको गलेसे लगाया उस समय राम, राम ही बने रहे, पर निषाद अपनी स्थितिसे ऊँचे उठ गया। पारस कभी लोहा नहीं बनता है, वह लोहेको सोना बना देता है। हमारे विद्वान् पण्डितगण यह बात जानते हैं और वे जल्दी ही यह समझ जायँगे कि गङ्गाजीकी पवित्र धारामें सारा संसार आकर डुबकी लगा लेता है और सारा मल भी उसमें डाल देता है, पर गङ्गाजी वही जगत्पावनी बनी रहती हैं, और भगवान् विश्वनाथजी नित्य उन्हींके जलसे स्नान करनेको उत्सुक रहते हैं।

गूँगी माता

जब हमें कभी दर्द होने लगता है तो हम छट-पटाते हैं, रोते और चिल्लाते हैं और बता देते हैं कि दर्द कहाँ हुआ है। पर यदि वही दर्द किसी गूँगेको हो, जिसके हाथ पैर न हों, तब वह अपनी पीड़ा कैसे बताये? ऐसे कितने लोग हैं जो आँखके आँसू देखकर किसीकी व्यथा पहचान लेते हैं। जो कथा अब हम कहने जा रहे हैं वह बड़ी दुखभरी है। सुनते हैं हमारे देशमें दूधकी नदियाँ बहती थीं। हमारे उपदेशक लोग बड़े अभिमानसे चिल्ला-चिल्लाकर सभाओंमें यह बात कहा करते हैं। यह बात वैसी ही है जैसे दिल्लीके कुछ ताँगेवाले सम्राट अकबरके ख़ानदानसे अपना रिश्ता जोड़ा करते हैं। पर ख़ैर उनके सामने दिल्लीका क़िला और आगरेका ताज उनके पुराने वैभवकी उन्हें याद तो दिलाते हैं। यहाँ दूरतक चले जाइए, खेतोंमें मरभुखे बैल और गोधनोंमें सूखी हुई गैयाँ मिलेंगी जिनका एक-एक हाड़ गिन लीजिए, और ऐसी भी इतनी कम हैं जो उँगलीपर गिनी जा सकती हैं। पर इसका एक और भी रूप है। जबसे अंग्रेज़ हिन्दुस्थानमें आए तबसे हिन्दुस्थानियोंको भी गर्मी अधिक लगने लगी है। उन पहाड़ी प्रान्तोंमें, जहाँ संसारकी मोहमाया त्याग कर लोग अपना जीवन एकान्त में बिताया करते थे, उन्हीं हिमालयकी पर्वत-मालाओंमें मोहमायाको साथ लेकर लोग पहुँच गए हैं। पर्वतकी पवित्रता और एकान्तता तो मिट ही गई, साथ ही उसका स्वरूप भी बदल दिया। जहाँ लोग ब्रह्मसे मिलने जाया करते थे वहाँ विलासने डेरा जमा लिया। योगियोंका स्थान भोगियोंने छीन लिया। इन्हींमेंसे एक मन्सूरी पहाड़ भी है। देहरादूनकी घाटीसे यह पहाड़ सामने दिखाई पड़ता है जहाँ नित्य सन्ध्याको मनोहर दिवाली मनाई जाती है। गर्मीके दिनोंमें तो वहाँ नन्दनवन ऊपरसे उतर आता है और नीचेके देवता लोग ऊपर चढ़ जाते हैं। यहींका एक दृश्य है। कुछ लोगोंने आँखोंसे देखा होगा, सुना तो बहुतोंने होगा। यहाँ तीसरे-चौथे दिन गायोंका एक झुण्ड आया करता है, जिनके पीछे-पीछे लाठी लिए हुए क़साई बड़ी बेरहमीसे हाँकते हुए लाते हैं। ये गौएँ कितनी सुन्दर, स्वस्थ और बलिष्ठ होती हैं कि बस देखते ही बन पड़ता है। जान पड़ता है कि इन्हीं गौओंको देखकर रसखानने कहा था—'आठहुँ सिद्धि नवो निधिको सुख नन्दकी गाय चराय बिसारौं' पर ये सुन्दर गायें स्मशानमें ले जाई जाती हैं। वहाँ कई-कई गायें एक साथ छुरेके नीचे पहुँचाई जाती हैं। कुछ गायें हठ करती हैं, आगे नहीं बढ़तीं, उनकी पूँछ ऐसी बुरी तरह मरोड़ी जाती है कि वह टूट जाती है। बेचारी पीड़ासे उछलकर आगे बढ़ती हैं और फिर समान। हिन्दुओंकी ये माताएँ उसी पवित्र हिमालयकी गोदमें, जहाँसे गङ्गा निकलती हैं और उन्हीं हिन्दुओंके सामने, जो उन्हें माता कहते हैं, राक्षसोंके सामने तश्तरियोंमें परोस दी जाती हैं। जहाँ एक ओर आँखमें आँसू भरकर पचीस करोड़ पुत्रोंके होते हुए भी वह माता बेबस होकर प्राण देती है, वहीं दूसरी ओर हम लोग सिनेमा देखते हैं, दूर देशोंके

समाचार पढ़ते हैं और अपनी गर्मी शान्त करते हैं। उस हल्लेमें हमें अपनी गूँगी माँका विलाप नहीं सुन पड़ता, हम नहीं समझ पाते कि हमारे बच्चोंके मुँहसे ज़बरदस्ती दूध छीना जा रहा है। हम लोग चुप बैठे रहते हैं, साम्यवाद और समाजवादका ढकोसला करते हैं और हमारी आर्थिक समस्याका जो इतना महत्त्वपूर्ण पहलू है उसकी ओर ध्यान नहीं देते।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रको पढ़नेसे जान पड़ेगा कि उस समय दुधारू पशुओंकी रक्षाके लिये राज्यकी ओरसे कैसे-कैसे उपाय किए जाते थे। जो ग्वाले गर्मीके दिनोंमें बछड़ोंके लिये काफ़ी दूध नहीं छोड़ते थे उनके अँगूठे काट लिए जाते थे। किसी बछड़े, साँड़ या गौको मारनेकी आज्ञा नहीं थी। यह प्रथा बनी चली आई और गौ केवल हिन्दुओंकी माता नहीं बल्कि तीनों लोकोंकी माता कहलाई जाने लगी।

'गावस्त्रैलोक्यमातरः'

हिन्दुओंकी बात तो जाने दीजिए, मुसलमानी शासनकालमें भी गोरक्षापर बड़ा ध्यान रक्खा गया। बाबरने अपने मरनेके समय अपने पुत्र हुमायूँको उपदेश देते हुए यह भी कहा था कि यदि तुम भारतके लोगोंके हृदयपर शासन करना चाहते हो तो गौकी हत्या न होने देना।

मुस्लिम राज्यकी स्थापनासे लेकर फीरोज़ शाह तुग़लकके समयतक गौकी बिक्रीपर ज़ब्ती नामका एक कर लगाया जाता था जिसका उद्देश्य यही था कि गौकी रक्षा हो सके। अकबर और जहाँगीर दोनोंने गौकी रक्षाका प्रयत्न किया। 'इस्लामी गोरक्षण' के अनुसार बादके मुग़ल राजाओंमें मुहम्मद शाह और शाह आलमने भी गोवधकी मनाही कर दी थी।

मुग़लोंके अन्तिम दिनोंमें प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजीने तो केवल गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये ही तलवार सँभाली थी। जब वे बारह वर्षके थे, एक दिन उन्हें ज़बरदस्ती बीजापुरके सुल्तानके दरबारमें जानेके लिये कहा गया। उन्होंने साफ़ कह दिया, "हम हिन्दू हैं, वे यवन हैं। वे बड़े नीच हैं क्योंकि वे गौकी हत्या करते हैं। सरेआम गौएँ मारी जाती हैं। मेरा बस चले तो मैं इन हत्यारोंकी गर्दन मार दूँ।"

वर्त्तमान समयमें काश्मीर और नैपालने गोरक्षामें प्रशंसनीय काम किया है। जोधपुर रियासत तो इससे भी आगे बढ़ी हुई है। वहाँसे गौ, भेड़ और बकरीका बाहर भेजनातक मना है। सन् १९२६ ई० में बेलारी ज़िलेके अन्तर्गत सेण्डर राज्यके शासकने गोवध रोकनेकी तो घोषणा कर ही दी है साथ ही बूढ़ी और सूखी गौओंको भी क़साइयोंके हाथसे लेनेका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे किया है।

यह जानकर किसे आश्चर्य्य और हर्ष न होगा कि वर्त्तमान कालमें सबसे पहले गोरक्षाका काम सीतापुरके प्रसिद्ध मुसलमान वकील श्री सैयद नाज़िर अहमद साहबने प्रारम्भ किया था और उन्होंने सीतापुरमें ही 'इस्लामी गोरक्षण सभा' स्थापित की। वे गौके और गोपाल कृष्णके अनन्य भक्त थे। उन्होंने सदा यह प्रचार किया कि इस्लाम धर्मने कहीं भी गोवधकी आज्ञा नहीं दी है। उन्होंने गोरक्षाके लिये बहुतसे पर्चे और पुस्तकें बाँटी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके शब्दोंमें हम कह सकते हैं:—

'इन मुसलमान हरिजननपर कोटिन हिन्दू वारिए।'

सन् १८७७ ई० में मद्रासमें 'सोसाइटी फ़ौर दि प्रिवेन्शन औफ़ क्रुएल्टी टु ऐनिमल्स' (जीवोंको निर्दयतासे बचानेवाली समिति) नामक संस्था शुरू हुई। यह तबसे काम करती आ रही है और इसके इन्सपेक्टरोंको पुलीसके सिपाहियोंके अधिकार मिले हुए हैं कि वे किसी भी जीव-हिंसकको गिरफ़्तार कर सकते हैं।

कलकत्तेका 'काउ-प्रिज़र्वेशन लीग' (गोरक्षा-सङ्घ) सन् १९२८ ई० में स्थापित हुआ और इसके अध्यक्ष हुए सर आशुतोष मुकर्जी। फिर तो अनेक पिञ्जरापोल, गोशालाएँ और गोरक्षक मण्डलियाँ बनीं।

मालवीयजीका गोरक्षा-आन्दोलनसे बड़ा सम्बन्ध रहा है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के जन्मके बाद ही उसीके साथ प्रतिवर्ष गोरक्षा-सम्मेलन भी होने लगा और मालवीयजी उसमें बड़ा भाग लेने लगे। इधर हरिद्वारके पास गोवर्णाश्रम धर्म-सभा कनखलने और फिर भारतधर्म महामण्डलने और सनातनधर्म सभाओंने गोरक्षाके लिये आन्दोलन किया और मालवीयजी इनमेंसे अनेक गोरक्षा-सम्मेलनोंके सभापति रह चुके हैं। मालवीयजीने केवल प्रचार मात्र ही नहीं किया बल्कि स्थान-स्थानपर गोशालाओं और पिञ्जरापोलोंके लिये रुपया भी इकट्ठा किया। राजाओं, महाराजाओं, ज़मीन्दारों और तालुक़ेदारोंसे मिलकर गोचर-भूमिके लिये जगह छुड़वाई। मथुराके हासानन्दका नाम गोरक्षाके इतिहासमें अमर रहेगा। वे सदा अपना मुँह काला किए रहते थे और उनका कहना था कि जबतक हम पूरे तौरसे गोवध बन्द नहीं करते तबतक हम लोगोंको अपना मुँह काला ही रखना चाहिए। पूज्य मालवीयजीने हासानन्दजीकी बड़ी सहायता की और मथुराके हासानन्द-गोचर-भूमि-ट्रस्टके स्थापित करनेमें पूरी मदद दी।

ऊपर हमने कहा है कि राष्ट्रीय महासभाके साथ-साथ गोरक्षा सम्मेलन हुआ करते थे। अखिल भारतीय गोरक्षा समिति, साबरमतीके अधीन महात्मा गान्धीकी संरक्षतामें एक केन्द्रीय गोरक्षा समिति बनी जो बराबर गोरक्षाका काम करती है।

सन् १९२८ ई० में मालवीयजीकी अध्यक्षतामें प्रयागमें जो सनातनधर्म महासम्मेलन हुआ उसमें गोरक्षाके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हुए। ये केवल प्रस्तावमात्र नहीं हैं बल्कि गोरक्षाकी पूरी कार्य्य-प्रणाली ही है।

गोरक्षा

(१) (क) इस महासभाको यह देखकर बहुत सन्ताप होता है कि इस देशमें गोवंशका बड़ा भयङ्कर संहार हो रहा है। अतएव महासभा हिन्दू भाइयोंसे सानुरोध प्रार्थना करती है कि वे गौओंको वधिकोंके हाथ पड़नेसे बचावें और बन्ध्या और बूढ़ी गौओंको ऐसे स्थानोंमें, जङ्गलोंमें और रियासतोंमें रखनेका प्रबन्ध करें जहाँ क़ानूनसे गोहत्या निषिद्ध हो।

(ख) यह महासभा ज़मीन्दारोंसे निवेदन करती है कि वे गाँवोंमें गोचारणके लिये काफ़ी भूमि छोड़नेका नियम करें और जहाँ गोचारण भूमिको खेतीमें मिला लिया गया हो उसे छोड़ दें तथा गवर्नमेण्टसे अनुरोध करती है कि ऐसी ज़मीनपर मालगुज़ारी न ले।

(ग) जहाँ-जहाँ उचित जान पड़े एक-एक आदर्श गोशाला खोली जाय।

(घ) प्रत्येक हिन्दू, जिसको सामर्थ्य हो, एक गौ पाले।

(ङ) यह महासभा गोदान करनेवालोंको आदेश करती है कि वे योग्य पात्र ही को गोदान दें और गोदानके योग्य ही गौवोंका दान करें तथा गोदान लेनेवालोंसे प्रार्थना करती है कि उन्हें गौके रखनेकी सामर्थ्य न हो तो उसका दान न लें।

(च) यह सनातनधर्म महासभा सब सनातन-धर्मानुयायी सज्जनोंसे निवेदन करती है कि वृषोत्सर्गमें वे साँड़ केवल उत्तम जातिके छोड़ें और वहीं छोड़ें जहाँ उनकी आवश्यकता हो। और छोड़नेके पहले म्युनिसिपल या डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे या रियासतोंकी सरकारके साथ इस बातका पक्का प्रबन्ध कर लें कि उनके छोड़े हुए साँड़का ठीक-ठीक पालन-पोषण और रक्षा होगी। बिना ऐसा प्रबन्ध किए साँड़को छोड़ना इस कलियुगमें पापका मूल हो गया है और उससे प्रत्येक धर्मशील प्राणीको बचना चाहिए।

(छ) यह महासभा हिन्दूमात्रके प्रति आदेश करती है कि वे क़साइयोंके साथ किसी तरहके लेन-देनका व्यवहार न करें, और जो इसके विरुद्ध लेन-देन करे या गौको वधिकोंके हाथ बेचे, उसे उचित सामाजिक दण्ड दें।

(ज) यह महासभा प्रत्येक हिन्दूसे अनुरोध करती है कि वह जहाँतक हो सके चमड़ेका व्यवहार कम करे।

(२) इस महासभाका यह निश्चय है कि गोवध केवल मांसके कारण ही नहीं बल्कि चमड़ा, चरबी इत्यादि वस्तुओंके कारण भी होता है, और वध की हुई गायका चमड़ा काममें लानेसे गो-हत्याको उत्तेजना मिलती है। इसलिये यह महासभा हिन्दूमात्रसे अनुरोध करती है कि वे स्वाभाविक मौतसे मरे हुए पशुओंके ही चमड़ेसे बने हुए जूते आदिको काममें लावें, और हिन्दू धनिकोंसे प्रार्थना करती है कि स्वाभाविक मौतसे मरे हुए पशुओंके चमड़ेके जूते वगैरह बनवा करके सब हिन्दुओंके लिये उनका प्राप्त करना सुलभ कर दें, और हिन्दू मिलवालोंसे अनुरोध करती है कि वे कपड़ेकी माँड़ी इत्यादिमें चरबीके स्थानपर अन्य निर्दोष वस्तुओंका प्रयोग करें।

(३) इस महासभाकी रायमें आजकल बड़े शहरोंमें दूध बेचनेवाले लोग गौओंसे बहुत बुरा बर्त्ताव कर रहे हैं, जिससे वह पूर्ण युवावस्थामें ही प्रायः वन्ध्या होकर मार डाली जाती हैं और उनके बच्चोंको भी मार डालते हैं। इसलिये यह महासभा सब गोशालाओं और पिंजरापोलोंके व्यवस्थापकोंसे अनुरोध करती है कि वे उनको दुग्धालयके रूपमें परिणत कर दें। वृद्ध, अशक्त और दूध न देनेवाली गौओंको, जहाँ उनके पालनका ख़र्च कम हो, ऐसे स्थानपर भेज दें, और अपने साँड़ोंके ज़रिएसे गौवोंकी नसल इस तरह सुधार दें और उनका दूध बढ़ा दें कि किसीके लिये भी उनका वध करना आर्थिक दृष्टिसे असम्भव हो जाय।

(४) सनातनधर्म महासभाको यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि बड़े-बड़े नगरोंमें दूध देनेवाली गौएँ ले जाई जाकर दूध बन्द होनेपर क़साइयोंके हाथ बेच दी जाती हैं और उनसे बच्चे नहीं लिए जाते। इस भयङ्कर पाप और हानिको रोकनेके लिये सन् १९१३ ई० में जो बोर्ड ऑफ़ एग्रिकल्चरने कोयम्बटूरमें क़ानूनकी आवश्यकताको बतलाया था, उसकी ओर महासभा सरकार और कौन्सिलोंके मेम्बरोंका ध्यान दिलाती है।

गोरक्षा-कोष

(१) यह सनातनधर्म महासभा निश्चित करती है कि हिन्दू जातिके परम कल्याणके साधन गोधन और गोरक्षाकी वृद्धिके लिये एक "अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा-कोष" की स्थापना की जावे जिससे गोचर-भूमिकी वृद्धि और गोरक्षाके और-और साधन प्रस्तुत किए जावें।

(२) यह सनातनधर्म महासभा आदेश करती है कि सनातनधर्मकी सभाएँ इस विषयमें अन्य भाइयोंसे मिलकर काम करें।

(३) यह सनातनधर्म महासभा अपनी कार्य्यकारिणी समितिको आदेश करती है कि वह स्थान-स्थानपर गोचर-भूमिके छुड़ाने और गोरक्षाके अन्य आवश्यक उपायोंको करनेके लिये, विशेषकर सरकारी जङ्गलोंमें गोचर-भूमि छोड़े जानेके लिये, प्रान्तीय कौन्सिलों तथा व्यवस्थापिका सभा तथा देशी राज्योंके द्वारा क़ानून बनानेका प्रयत्न करे।

(४) यह सनातनधर्म महासभा निश्चय करती है कि कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदासे कार्त्तिक शुक्ल अष्टमी अर्थात् गोवर्द्धन-पूजाके दिनसे गोपाष्टमीतक प्रतिवर्ष सारे भारतवर्षमें गो-सप्ताह मनाया जावे, जिसमें गोरक्षा-सम्बन्धी उत्सव, गोपूजा, गोकथा गोमाहात्म्य, व्याख्यान, तथा गोपरिपालनके साहित्यका प्रचार किया जावे, और प्रतिपदके दिन सारे हिन्दू जगत्में गोरक्षाके लिये दान माँगा जाय। और यह सब द्रव्य अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा-कोष, काशीमें, भेजा जाय, और बैङ्कमें महासभाके हिसाबमें "गोरक्षा-कोष" इस नामसे जमा हो, और सब हिसाबसे अलग रक्खा जाय और गोरक्षाके काममें ही व्यय किया जाय।

(५) सनातनधर्मकी यह महासभा ज़मीन्दारोंसे निवेदन करती है कि उनकी ज़मीन्दारीके भीतर, जहाँ गौ-बैलके बाज़ार लगते हों, उनमें वे ऐसा प्रबन्ध करें

कि वहाँ धोखेमें पड़कर कोई हिन्दू किसी गौको क़साईके हाथ न बेंचे और धोखा देकर कोई कसाई गौको न ख़रीद सके।"

इसी सम्बन्धमें एक बात और कहनी आवश्य जान पड़ती है कि प्रारम्भमें मुज़फ्फ़रनगरके माननीय लाला सुखवीर सिंहने कौन्सिलके द्वारा गोरक्षा-विधान बनवानेका प्रयत्न किया और उसके बाद फिर कुछ और लोगोंने भी गोरक्षा क़ानून बनवानेका प्रयत्न किया, पर दोनों ही बार सफलता न मिल सकी। जान पड़ता है कि अभी हमारे माननीय सदस्य लोग हिन्दुस्थानकी और भी अधिक दुर्दशा देखना चाहते हैं।

मालवीयजीकी गोभक्ति उनके घर दिखाई देती है। उनके बँगलेके भीतर कई गैया और बछवे बँधे मिलेंगे और कभी-कभी जब बछवे कूदते हैं, उछलते हैं तो मालवीयजीके नेत्र एकदम खिल जाते हैं। जान पड़ता है कि बस ये भी उन्हींके साथ छलाँग मारनेको तैयार हैं। कृष्णभक्तोंके घरमें तो वैसे भी गौकी पूजा होती है, पर मालवीयजी तो गौमें उस प्रकारकी श्रद्धा रखते हैं, जो कहते हैं—

गावो मेऽग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

एक दफ़ेकी बात है। पञ्जाब और आसामका दौरा समाप्त करनेके उपरान्त मालवीयजी जूनके अन्तिम दिनोंमें गोरखपुर पहुँचे। चौरीचौरा काण्डने गोरखपुरकी बड़ी शोचनीय दशा बना दी थी। बेचारे निरीहों और भयार्त्तोंको इनके पहुँचनेसे बड़ा अभय-दान मिला। आपको दफ़ा एक सौ चवालीस ज़ाब्ता फ़ौजदारीद्वारा चौरीचौरामें भाषण देनेकी मनाही कर दी गई थी, परन्तु आपने दफ़ा एक सौ चवालीसको तोड़नेका भी सङ्कल्प कर लिया था। "स्वदेश" सम्पादक पण्डित दशरथप्रसाद द्विवेदी तथा मौलवी अब्दुल अहद साहबके साथ मोटरमें आप पड़रौनासे गोरखपुर आ रहे थे। रात ज़्यादा हो गई थी। आप लोगोंको निद्रा आ गई। नींदने ड्राइवरको भी आ घेरा। फलतः घनघोर अँधियारीमें मोटर टकरा गई—टूट-फूट गई। मालवीयजीको भी चोट आ गई। परन्तु इसकी कुछ चिन्ता न कर आप जल्दी-जल्दी आगे बढ़े। कारण यह था कि अँधेरी रातमें एक बैलगाड़ी आगे बढ़ रही थी। आपने सोचा कि कदाचित् बैलोंको चोट आ गई हो। जब आपने देख लिया कि बैलोंको कुछ भी चोट नहीं लगी है तब आपने अपनी चोटकी ख़बर ली। साथियोंके हृदयपर इस घटनाका गहरा प्रभाव पड़ा। मोटर तो बेकार हो ही गई थी, मरहमपट्टी कर एक एक्का जो संयोगसे मिल गया, उसीसे मीलोंका सफ़र तै कर आप गोरखपुर पहुँचे।

मालवीयजीने गौके बारेमें कहा है कि 'गौ मानव जातिकी माताके समान उपकार करनेवाली, दीर्घायु, बल और निरोगता देनेवाली और मनुष्य जातिकी आर्थिक उन्नति बढ़ानेवाली देवी है। जो यह तृण-जल खाकर मनुष्यको माताके दूधके समान दूध पिलाती, अनेक प्रकारसे मनुष्यकी सेवा करती और उसको सुख पहुँचाती है। इसके उपकारसे मनुष्य कभी उऋण नहीं हो सकता। हमको यह स्मरण रखना चाहिए कि गौ समान रीतिसे मनुष्य मात्रकी सेवा करती है, और इसलिये सब जाति, धर्म और सम्प्रदायके मनुष्योंको गोवंशकी रक्षा करने, उसके साथ न्याय और दयाका बर्त्ताव बढ़ानेमें प्रेमके साथ शामिल होना चाहिए। गोरक्षा सप्ताहमें, गोरक्षाके सम्बन्धमें व्याख्यानोंके द्वारा तथा अन्य रीतियोंसे सर्वत्र गौओंके उपकारका स्मरण करना और कराना, हर बस्तीमें गौओंके चरनेके लिये गोचर-भूमियोंका स्थापित करना और गोवंशको बलवान् तथा दीर्घायु बनाना चाहिए जिसमें शुद्ध और सस्ता गौका दूध ग़रीब-से-ग़रीब भाइयोंको भी मिल सके। ऐसा प्रबन्ध करना मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है। इस काममें सब जाति और धर्मके अनुयायी लोग गौके प्रति प्रेम और दयाका भाव बढ़ानेमें सहायक हों।'

आज करोड़ों भारतके लाल ख़ाली कटोरा लिए

हुए 'दूध, दूध' चिल्लाते हुए अपना जीवन दे डालते हैं और उनकी इतनी भारी मृत्युका कारण बताया जाता है 'पर्देकी प्रथा, बालविवाह और गन्दगी'। पर हम पूछते हैं कि आजसे सौ बरस पहले भी तो ये सामाजिक कुरीतियाँ मौजूद थीं, फिर क्यों सौ-सौ बरसतक लोग ज़िन्दा रहे। सारी दुनिया मानती है कि दूध मनुष्यका सर्वश्रेष्ठ भोजन है। वे यह भी मानते हैं कि माताके दूधके बाद सर्वश्रेष्ठ दूध गौका ही होता है। वे यह भी मानते हैं कि गौओंकी संख्या कम होती जा रही है और हर साल गौओंकी खालें अधिक-से-अधिक संख्यामें विलायत भेजी जा रही हैं, पर न जाने वे क्यों नहीं मानते कि हमारे बच्चोंकी रक्षाके लिये गोवध भी बन्द होना आवश्यक है। हम यह मानते हैं कि घड़ीमें चमड़ेका फ़ीता बाँधनेवाले, चमकीले चमड़ेका जूता पहननेवाले और चमड़ेके सामानका व्यवहार करनेवाले लोग गोवधके लिये बहुत ज़िम्मेदार हैं। जो लोग भारतकी बेकारी दूर करनेके लिये विलायती हल जोतनेकी राय देते हैं उन्हें जानना चाहिए कि पहले गौ पालकर लोग घी, दूधका बड़ा भारी व्यापार करते थे, उनका पेट भी भर जाता था, उनके बच्चे भी हँसते-खेलते थे और दुर्दिनके लिये वे कुछ बचा भी रखते थे पर अब उन्हें खेत जोत-बोकर हाथपर हाथ धरे बैठे रहना पड़ता है।

गोभक्त मालवीयजी स्वयं चमड़ेका जूता नहीं पहनते। वे सैकड़ों, हज़ारों गूँगी माताओंके आशीर्वादसे ही आयु पाते चले जा रहे हैं। वही पवित्र दूध मालवीयजीके शरीरमें उत्साह, बल, कान्ति और मेधा दे रहा है और बेचारी गाएँ बड़ी आशासे उनकी ओर उस दिनकी बाट जोहती हुई निहार रही हैं, जब भारतमें गोवध बन्द हो जायगा और वे स्वतन्त्रतापूर्वक फिर पहलेकी तरह विचरेंगी।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल

भारतमें मुग़लोंके क़िलोंपर विदेशियोंकी पताका फहरानेपर भी मुसलमानी छाप 'हिन्दुस्थान' पर बनी रही। मुसलमानोंकी बात तो जाने दीजिए, हमारे ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बच्चोंका विद्यारम्भ 'अलिफ़, बे, पे' से होता रहा क्योंकि हमारी बोलचालकी भाषाको लोग 'भाखा' कहकर दुरदुराया करते थे और आजकी 'नागरी' उस समय 'गँवारी' समझी जाती थी, फ़ारसी उसका गला दबाए बैठी थी। ब्रजका घाघरा पहने हुए जब वह कचहरीमें घुसने लगी तो मुग़लोंकी मुँहचढ़ी फ़ारसीने उसे वहाँ घुसने न दिया। भला शहरी लोग गाँववालोंका आदर ही क्यों करने लगे। आख़िर लाख सिर पटकनेपर भी बेचारी नागरीकी कुछ सुनवाई न हुई। वह उल्टे पैरों लौट आई। फ़ारसी राजाकी मुँहचढ़ी थी, किसके दो सिर हुए कि उसके विरुद्ध मुँह खोले।

पर नागरीका यह अपमान कुछ लोग न सह सके। राजा शिवप्रसादने 'बनारसी अख़बार' में बेचारी नागरीकी ओरसे बड़ी वकालत की। पर राजा साहबने देखा कि हवाका रुख़ ठीक नहीं है, वे पाल समेटकर तो नहीं बैठ रहे पर उन्होंने कुछ तो हवाका सहारा लिया और कुछ पतवार का। देशी घाघरेके साथ-साथ फ़ारसकी चोली अच्छी तो न लगी पर और कोई उपाय न था। उर्दू भाषा मुसलमानी संस्कार लिए हुए भी नागरी वस्त्र पहनकर आई। राजा साहबकी हिन्दी ऐसी ही चलती रही। यह भी क्या कम था?

मालवीयजीके जन्मके साथ-साथ आगरेसे राजा लक्ष्मणसिंहका 'प्रजा-हितैषी' भी पैदा हुआ और पहले पहल उनके प्रसिद्ध 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का हिन्दी अनुवाद निकला। लोगोंने दिल खोलकर इस 'शकुन्तला' का स्वागत किया। इन हिन्दी बच्चोंमें वह सचमुच कितनी भली भी तो लगती थी। इधर युक्तप्रान्तमें तो ये लोग हिन्दी और नागरीके राज्याभिषेककी तैयारी कर रहे थे, उधर पञ्जाबमें सन् १८६३ और १८८० ई० के बीच बाबू नवीनचन्द्र रायने भी उसकी प्रतिष्ठाकी पूरी तैयारी कर ली थी। स्वामी दयानन्दजीके आर्य्य-समाजने और पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरीके धार्मिक आन्दोलनोंने आर्य्य-भाषा हिन्दीको ख़ूब अपनाया और उसका पढ़ना सबके लिये आवश्यक कर दिया। श्रद्धाराम फुल्लौरीजी हिन्दी गद्यके बहुत अच्छे लेखक थे और सन् १८८१ ई० में अपनी मृत्युके समय उन्होंने कहा भी था कि "भारतमें भाषाके लेखक दो हैं—एक काशीमें दूसरा पञ्जाबमें—परन्तु आज एक ही रह जायगा।" यह काशीके लेखक सिवाय भारतेन्दु 'बबुआ' हरिश्चन्द्रके और कौन हो सकते थे।

बबुआ हरिश्चन्द्र वर्त्तमान हिन्दी गद्यके पिता कहलाते हैं। उन्होंने अनेक मौलिक पुस्तकें लिखीं, अनेकोंका अनुवाद किया। सच पूछिए तो बेचारी हिन्दीको सिंहासनपर हाथ पकड़कर बैठानेका श्रेय बबुआको ही था। मुन्शी सदासुखलालने उसे पुराने पण्डिताऊ ढङ्गके कपड़े पहनाए, लल्लूलालजीने ब्रजका

घाघरा पहनाया और सदल मिश्रने पूर्वी धोती। पर ये सब वस्त्र उसे न जँचे। राजा शिवप्रसादके मुसलमानी कपड़ोंमें भी वह अच्छी न लगी। इसी लिये भारतेन्दु बाबूने उसे बिलकुल देसी—खद्दरकी तो नहीं—हाँ रेशमी साड़ी पहना दी। अब तो हिन्दीका रङ्ग निखर उठा। बबुआ भारतेन्दुजीने हिन्दीके गद्य और पद्य दोनोंको माँज दिया, उसपर रङ्ग चढ़ाकर ऐसा चमका दिया कि सबकी आँखें उसी ओर जा लगीं। न जाने कितने लेखक और कवि 'बबुआ' के दरबारमें आकर जुटने लगे। सन् १८७३ ई० में बबुआने 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' निकाली जो आठ अङ्कोंके बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कहलाने लगी। इस हिन्दीके बारेमें स्वयं उन्होंने अपनी 'कालचक्र' नामक पुस्तकमें नोट किया है कि "हिन्दी नई चालमें ढली सन् १८७३ ई० में।" अब तो हिन्दीका बड़ा बोल-बाला हो गया, सैकड़ों हज़ारों लेखक और कवि बन गए और पत्र-पत्रिकाएँ चल निकलीं। बबुआ उन दिनोंके नौजवानोंके ध्रुव थे। सब लोग अपनी कविता और लेख उन्हींके दरबारमें भेजा करते थे और भारतेन्दुजी भी राजाओंकी तरह उनकी क़द्र तो करते ही थे साथ ही उन्हें इनाम भी देते थे।

हरएक व्यक्तिके जीवनमें एक ऐसा अवसर आया करता है जब उसकी कल्पना आकाशमें उड़ा करती है और वह अपने नए भावोंकी नई दुनिया बनाया करता है। यह उसकी कविताका युग होता है। बबुआके दरबारमें लोग अपनी कविताएँ तो पढ़ते ही थे साथ ही समस्यापूर्त्ति भी करके भेजा करते थे। इन कवियोंमें प्रयागके एक नौजवान रसिक कवि 'मकरन्द' भी थे। समस्या थी 'राधिका रानी'। 'मकरन्द' ने कुछ सवैये भेजे। कल्पना तो देखिए—गोरी रानी राधिका काला कम्बल ओढ़नेवाले काले कलूटे गाय चरानेवाले पर कैसे रीझ गईं, इस समस्यापूर्त्तिमें कवि 'मकरन्द' ने एक नई समस्या खड़ी कर दी। ज़रा सुनिए—

इन्दु सुधा बरस्यौ नलिनीन पै वे न बिना रविके हरखानी।
त्यौं रवितेज दिखायो तऊ बिनु इन्दु कुमोदिनि ना बिकसानी॥
न्यारी कछू यह प्रीतिकी रीति नहीं 'मकरन्द जू' जात बखानी।
साँवरे कामरीवारे गुपाल पै रीझि लटू भई राधिका रानी॥

श्रीकृष्णको सभी गोपियाँ चाहती थीं परन्तु वे किसीके बसमें क्यों आने लगे?। वे तो थे नटनागर। गीताके अनुसार वे तो *'भ्रामयन् सकलान् जीवान् यन्त्रारूढ़ानि मायया'* रहे। श्रीकृष्ण सामने हैं पर मानिनी राधा आँख उठाकर देखती भी नहीं। उनकी एक सखी समझा रही है :—

वे कबके उत ठाढ़े अहैं इत बैठि अहौ तुम नारि चुपानी।
थाकी तुम्हैं समुझावत सामतें ऐसी मैं रावरी बानि न जानी॥
मोहि कहा पै यहै 'मकरन्दहुँ' जो कहूँ खीझि कै रूसन ठानी।
आजु मनाये न मानती हौ कलह आपु मनाइहौ राधिका रानी॥

रानी तो मशहूर हैं, पर कृष्णके लिये राधिकाजी कसूसी कर रही हैं। इसपर कृष्णके मुखसे हमारे 'मकरन्द' जी कहला रहे हैं। इसमें रसिकताकी हद ही समझिए।

माँगत मोतिन माल नहीं नहिं माँगत तोसौं मैं भोजन पानी।
सारी न माँगत हौं 'मकरन्द' न थारी अनेक सुगन्धन सानी॥
माँगत हौं अधरा-रस रञ्जक सोउ न दीजतु हौ सनमानी।
सूमता एती तुम्हें नहीं चाहिए बाजति हौ चहूँ राधिका रानी॥

ब्रजके फागका सरस वर्णन भी इसी समस्याकी पूर्त्तिमें देखिए। आँखोंके सम्मुख बहारदार दृश्य नाचने लगता है :—

घूम मची ब्रज फागु री आजु बजैं डफ झाँझ अबीर उड़ानी।
ताकि चलैं पिचुका दुहुँ ओर गलीनमें रङ्गकी धार बहानी॥
भीजैं भिगोवैं ठढ़े 'मकरन्द' दुहूँ लखि सोभा न जात बखानी।
ग्वालन साथ इतै नन्दलाल उतै सङ्ग ग्वालिन राधिका रानी॥

'कदम्बकी डारन' देख-देख गोपियाँ कृष्णके विरहमें कातर हो रही हैं। श्रीकृष्णका दही, दूध और माखनके लिये हाथ पसारना, ब्रजकी कुञ्जोंमें लीलाएँ करना, चीर हरकर कदम्बकी डालपरसे उपदेश देना उनको स्मरण हो रहा है। कातर होकर गोपियाँ कह रही हैं :—

भूलिहैं सो हँसि माँगिबो दानको रङ्ग दही हित पानि पसारन।
भूलिहैं फागुके रागु सबै वह ताकहि ताकिकै कुङ्कुम मारन॥

सो तो भयो सबही 'मकरन्दजू' दासहि चासिकै बैर बिसारन।
जापर चीर चुराय चढ़े वह भूलिहैं कैसे कदम्बकी डारन॥

ढूँढ़्यो चहूँ झकझोरीन झरोखन ढूँढ़्यो किते भर दाव पहारन।
मञ्जुल कुञ्जन ढूँढ़ि फिर्‌यो पर हाय मिल्यौ न कहूँ गिरिधारन॥
लावत नाहि तऊ परतीति सखी इतनो दुख प्रीतिके कारन।
जानत स्याम अजौं उतही चित चौंकत देखि कदम्बकी डारन॥

इधर प्रतापनारायण मिश्र हिन्दीके सिंहासनकी सजावट कर रहे थे, उधर सन् १८७६ ई० में बालकृष्ण भट्ट अपना 'हिन्दी-प्रदीप' लेकर उसकी आरतीका थाल सजा रहे थे। साथ ही उपाध्याय पण्डित बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन—क़लमकी कारीगरी समझनेवाले—अपनी लच्छेदार डोरियोंका हार गूँथ रहे थे। बड़ी चहल-पहल थी। संसारके किसी महाराजा या महारानीके राज्याभिषेकके लिये भी इतनी लगन और उत्साहके साथ तैयारी न हुई होगी, जितनी हिन्दीके राज्याभिषेकके लिये हुई। इन्हीं दिनोंही कवि 'मकरन्द' के सवैये अपने निर्माताकी पूरी रसिकता लेकर हमारे सामने आए। हम क्या कहें, आपको 'मकरन्द' कविका पता दें तो आप चौंक उठेंगे, पर पता देना भी तो ज़रूरी है। भारती-भवन मुहल्लेमें उनका मकान है, हिन्दू युनिवर्सिटी उनका पता है और पचास वर्षोंसे भारतवासियोंके हृदयमें वे रहते आ रहे हैं। उनका इतना ही पता देना काफ़ी होगा।

सचमुच मालवीयजी बड़े रसिक थे और हैं भी। कहनेकी बात तो नहीं है पर उन्होंने स्वयं अपने मुँहसे कई बार कही है, इसलिये हम भी उसे क्यों छिपा रक्खें। मालवीयजीको कविता करनेका और कविता सुननेका प्रेम तो था ही, इन्होंने सैकड़ों सूरके पद और बिहारीके दोहे याद कर रक्खे थे। आजकल बहुतसे लोग बेचारे बिहारीके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं और उसे देशनिकाला दिलानेका उद्योग कर रहे हैं। हम मानते हैं कि बिहारीको स्कूलोंमें स्थान देना मूर्खता है, पर बिहारी बड़ी आसानीसे विवाहित युवकों और युवतियोंके हाथमें दिए जा सकते हैं। शृङ्गार रस मनुष्य-जीवनका आधार है। इसी रसके कारण स्त्री पतिव्रता बनती है, पुत्र माता-पिताका भक्त है, सेवक स्वामीकी सेवा करता है और संसारमें शान्ति रहती है। भवभूतिका करुण रस मसान घाटपर या मुहर्रमके दिनोंके लिये है। प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, अनुरक्ति, सेवा, सबका आधार शृङ्गार रस है। शृङ्गार रसपर नाक-भौं सिकोड़नेवाले वे ही नीरस लोग होते हैं जिन्हें या तो जीवन और सुखका ज्ञान नहीं होता या जो ढोंगी होते हैं।

हाँ, तो जब मालवीयजीका विवाह हुआ, वह उनकी कविता और कल्पनाका युग था। वे बिहारीके सुन्दर-सुन्दर दोहे और सूरके पद याद कर-करके अपने धर्मपत्नी (बहुआ) को सुनाया करते थे। चौदह वर्षकी उम्रमें ही शृङ्गार रसके बारेमें आपने एक दोहा कहा था—

यह रस ऐसो है बुरो, मनको देत बिगारि।
याते पास न जाइए, जब लौं होय अनारि॥

अर्थात् शृङ्गार रस ऐसा है कि इससे मनकी भावनाएँ कुछ बिगड़ जाती हैं, इसलिये अनारि (अनाड़ी) तथा अनारि (अविवाहित) व्यक्तिको इसके पास नहीं फटकना चाहिए। हम समझते हैं कि बिहारी-विरोधी आन्दोलन चलानेवालोंको इस दोहेसे काफ़ी सन्तोष मिलेगा।

एक बार एक सज्जनसे ग्राम्य कविताएँ सुनकर मालवीयजीने अपना सोरठा कहा था—

गुणी जननको साथ, रसमय कविता माँहि रुचि।
सदा दीजियो नाथ, जब-जब इहाँ पठाइयो॥

इधर हिन्दी-प्रचारकी धूमने और इनके साहित्य-प्रेमने उनके मनमें मातृ-भाषाकी सेवाका भाव भर दिया, जो प्रयागके लिटरेरी इन्स्टिट्यूट (साहित्य-समाज) के रूपमें प्रकट हुआ।

सन् १८८४ ई० में 'हिन्दी-उद्धारिणी-प्रतिनिधि-मध्य-सभा प्रयागमें खुली, जिसका उद्देश्य नागरीको उसका अधिकार दिलाना था। मालवीयजीने इसमें जी खोलकर काम किया। व्याख्यान दिए, लेख लिखे

और अपने मित्रोंको भी इस काममें भाग लेनेको उकसाया। आरम्भमें पण्डित बालकृष्ण भट्टजीके 'हिन्दी-प्रदीप' में ये बहुत कुछ लिखते रहे। फिर तो इन्होंने 'हिन्दुस्थान' के सम्पादक और 'अभ्युदय' के सम्पादनद्वारा जो मातृ-भाषाकी सेवा की उसका उल्लेख हम पीछे कर आए हैं।

इतनी सब कुछ तैयारी होनेपर भी अदालतसे उर्दू न निकाली जा सकी। इस उर्दू लिपिसे भारतके लोगोंको कितनी परेशानी होती थी, कितना कष्ट होता था अब क्या कहें। जो आवेदन-पत्र देनेवाले होते थे उन्हें यही नहीं मालूम होता था कि उस आवेदन-पत्रमें लिखा क्या है। लिखा जाता था कुछ, पढ़ा जाता था कुछ। फिर उर्दू यहाँके लोगोंकी व्यवहारकी लिपि भी नहीं थी। पुराने उर्दूदाँ अहलकारोंने नई भाषा सीखनेकी दिक्कत बचानेके लिये बड़ा हाय-तौबा मचाया और उर्दूका दामन कसकर पकड़ रक्खा। अदालतकी लिपि और भाषा उर्दू ही थी और सभी लोग उर्दू ही पढ़ते थे। नागरी अक्षरोंमें पुस्तकें ही नहीं थीं। कैसे क्या हो कुछ समझमें नहीं आता था। सन् १८९३ ई० में बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह के उद्योगसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुई। इस सभाके दो उद्देश्य हुए—नागरी अक्षरोंका प्रचार और हिन्दी साहित्यकी समृद्धि। बबुआ हरिश्चन्द्रके मूल मन्त्र—

निज भाषा-उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटत न हियको सूल॥

और पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्द' का राग ज़ोरोंसे गाया जाने लगा। उधर मेरठमें पण्डित गौरीदत्तजीने भी देवनागरी प्रचारका बीड़ा उठाया और अपना सर्वस्व इसी कार्य्यमें लगाकर वे तन, मन, धनसे इस काममें जुट गए। 'जै रामजीकी' और 'प्रणाम, नमस्कार' की जगह उन्होंने 'जैनागरीकी' कहना शुरू किया। उन्होंने सन् १८९४ ई० में दफ़्तरोंमें नागरी लिपि जारी करनेके लिये एक अभ्यर्थना-पत्र भेजा, किन्तु उसको रद्दीकी टोकरीमें चिर विश्राम दे दिया गया।

युक्तप्रान्तके कुछ दिन अच्छे थे और हिन्दीका भी भाग था कि सन् १८९५ ई० में इस प्रान्तके छोटे लाट सर एण्टोनी मैकडोनल काशी पधारे। नागरी-प्रचारिणी सभाने उनको एक आवेदन-पत्र देकर यह दिखलाया कि नागरीकी अवहेलना करनेसे जनताको बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं और शिक्षाका प्रचार भी रुक जाता है। लाट साहबने इसपर विचार करनेका वचन दिया।

मालवीयजी नागरी-प्रचार आन्दोलनके मुखिया बने। नागरीके सबसे बड़े शत्रु सर सैयद अहमद समाधिमें गहरी नींद ले रहे थे, पर मुसलमानोंके मुखिया मोहसुनुल मुल्कने नागरीके विरुद्ध घनघोर आन्दोलन शुरू कर दिया। जान पड़ा कि बेचारी नागरी यों ही पड़ी रह जायगी। लौर्ड कर्ज़नकी सरकार भी उनकी ओर झुकी जा रही थी पर मालवीयजीसे लोहा लेना भी ज़रा टेढ़ी खीर थी। दिन-रात एक करके अपनी वकालतके सुनहले दिनोंमें धुनके साथ मालवीयजीने गहरी छानबीनके साथ नागरीके पक्षमें प्रमाण और आँकड़े इकट्ठे किए। सैकड़ों जगह डेपुटेशन भेजे गए और हिन्दी भाषा और नागरी लिपिकी सुन्दरता और उपयोगिता दिखलाई गई। मालवीयजीने वकालत करते हुए भी अपने मित्र पण्डित श्रीकृष्ण जोशीके साथ मिलकर घोर परिश्रम किया। अपने पाससे रुपया ख़र्च करके कोर्ट लिपिका इतिहास, प्राचीन अधिकारियोंकी सम्मतियाँ एकत्र करके एक बड़ा सुन्दर लेख लिखा जो 'कोर्ट कैरेक्टर ऐण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नौर्थ वेस्टर्न प्रौविन्सेज़' कहलाता है। यह अभ्यर्थना-लेख लेकर २ मार्च सन् १८९८ ई० को अयोध्यानरेश महाराजा प्रतापनारायण सिंह, माँडाके राजा रामप्रसाद सिंह, आवगढ़के राजा बलवन्त सिंह, डाक्टर सुन्दरलाल और मालवीयजी आदिका एक दल दिनको बारह बजे गवर्नमेण्ट हाउस प्रयागमें छोटे लाट सर एण्टोनी मैकडोनलसे मिला। मालवीयजीकी मेहनत सफल हो गई। उनकी सब बातें मान ली गईं। इस आन्दोलनके समय मुसलमानोंमें बड़ी खलबली मची, बहुतसी सभाएँ हुईं। मालवीयजी इन दिनों उनके वक्तव्योंको देखनेके लिये नित्य सन्ध्याको 'पायोनियर' टटोलते रहते पर जैसी कि 'पायोनियर' की नीति है उसने इस विषयमें चुप्पी साध ली। मालवीयजी कभी-कभी खीझकर कह देते थे "पायोनियरकी चुप्पी देखकर जी खीझ आता है।"

सारे प्रान्तने मिलकर अपने विजयकी माला धन्यवादके रूपमें एण्टोनी मैकडोनलके गलेमें डाल दी। बबुआका चलाया हुआ आन्दोलन मालवीयजीने सफल बना दिया। हिन्दीका राज्य-तिलक मालवीयजीके हाथों ही बदा था।

एक दिन छोटे लाटके प्राइवेट सेक्रेटरीका पत्र मिला कि छोटे लाट साहब प्रयाग आ रहे हैं और भेंट किया चाहते हैं। समय स्वीकार कर लिया गया। पर तीन-चार दिन पहले ज्वर आ गया और नित्य आने लगा। पण्डित शिवराम पाण्डेय वैद्यसे कड़ी ज्वर-रोधक-औषधि लेकर तथा सागूदाना और दूध खाकर भेंटको गए। दो घण्टेतक बात-चीत हुई। बड़े प्रसन्न थे। लाट साहबको मुसलमानोंके अड़ङ्गे लगानेकी चिन्ता न थी। उन्हें निश्चय था कि जो आज्ञा दी गई है वह ठीक और सोच-समझकर दी गई है। मुसलमान मनभर आन्दोलन मचा लें, सुनाई सम्भव नहीं है। उनका आन्दोलन धीरे-धीरे ठण्डा पड़ गया। पर इस आज्ञाको चरितार्थ करनेमें बहुत बाधाएँ हुईं। वे सरकारी नौकर, जिन्होंने जन्मसे ही उर्दूका दूध पिया था, हिन्दीको सौतेली माँ समझने लगे क्योंकि उन्हें आज्ञा हुई कि वे जल्दी ही हिन्दीमें पर्य्याप्त योग्यता पैदा कर लें। लाट साहबके बदल जानेपर उनकी जानमें जान आई। कितने नागरी हितैषियोंने अपना पैसा लगाकर हिन्दीमें बिना कुछ लिए ही प्रार्थना-पत्र लिख देनेवाले मुन्शी कचहरियोंमें भेजे, पर बाबुओंकी डाँट-फटकारने उन्हें व्याकुल कर दिया। इतनेपर भी हठपूर्वक दिए गए पत्र उन्हें लेने ही पड़े। पर अपनी करनीमें वे कसर न छोड़ते थे। अब इतने समय पश्चात् प्रार्थना-पत्र और अभियोग हिन्दीमें लिए जाते हैं और माँगनेसे आज्ञा-पत्र भी हिन्दीमें मिल जाते हैं।

इस नई विजयने नागरी-प्रचारिणी सभाको उत्साहित कर दिया। १ मई सन् १९१० ई० की बैठकमें सभाने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन करनेका निश्चय किया जहाँ सब लोग मिलकर अपने साहित्यकी उन्नतिके उपाय सोचें। इस कार्य्यके लिये एक समिति बनाई गई और शीघ्र ही सम्मेलनका शोर हो गया। समय और सभापतिके लिये सम्मतियाँ माँगी गईं। हिन्दी संसारके सामने हिन्दीके परम सेवक एक ही महापुरुष थे—वही सफ़ेद पगड़ीवाले, सफ़ेद साफ़ेवाले। वही सभापति चुने गए।

निदान सोमवार, १० अक्तूबर, सन् १९१० ई० को दिनके साढ़े ग्यारह बजे नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीके हातेमें एक बड़े मण्डपके नीचे सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी संसारने अपने कर्णधार मालवीयजीका उस अवसरपर जो सम्मान किया वह मनुष्यकी लेखनीके सामर्थ्यसे बाहर है। उनके सभापति पदके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए पण्डित श्यामविहारी मिश्रने जो कुछ कहा था वह कह देना आवश्यक समझते हैं। मालवीयजीने हिन्दीके लिये क्या किया उसका एक थोड़ासा दिग्दर्शन भी हो जायगा—

".....जिस समय मालवीयजीने हिन्दीकी उन्नतिका यत्न करना आरम्भ किया था उन दिनों हिन्दीके जाननेवाले बहुत थोड़े थे। उन दिनों हिन्दीकी उन्नतिका यत्न करनेमें हिन्दी सेवियोंको अगणित असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। मालवीयजी उन दिनों हिन्दीकी उन्नतिके सम्बन्धमें हिन्दीमें बहुतेरी वक्तृताएं दिया करते थे। मुझे याद

है कि जब मैं बहुत छोटा था तब एक दिन मैंने मालवीयजीकी वक्तृता सुनी थी, उससे पहले कभी वैसी वक्तृता मैंने नहीं सुनी थी, वह घड़ी मुझे आजतक याद है। मालवीयजीने हिन्दीको कभी नहीं बिसारा, इसकी उन्नतिका जैसा उद्योग आप पहले करते थे वैसा ही अब भी कर रहे हैं। हिन्दीकी जो उन्नति दिखाई देती है उसमें मालवीयजीका उद्योग मुख्य कहना चाहिए। आपहीके यत्नसे हिन्दीको अदालतोंमें जगह मिली है। यह बात सब लोगोंको मालूम रह सकती है कि तरह-तरहके कामोंमें फँसे रहकर भी मालवीयजी हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं—"

इस सम्मेलनके बाद फिर तो लगातार प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं सम्मेलन होता रहा। साहित्य सम्मेलनके आठवें अधिवेशनमें सभापति महात्मा गान्धी हुए, उसके अगले वर्ष फिर मालवीयजीकी पुकार हुई। वह अपने 'छोटे भाई' गान्धीजीका अनुरोध कैसे टाल सकते थे। १९,२०,२१ अप्रैल सन् १९१९ ई० को साहित्य सम्मेलनका महोत्सव फिर मालवीयजीके सभापतित्वमें दोपहरको ठीक एक बजे बम्बईके भव्य नाटक-भवन एम्पायर थियेटर हौलमें हुआ। लक्ष्मीपुरी बम्बईने अपने सभापतिका कैसा सम्मान किया होगा यह तो हर कोई समझ सकता है।

पिछले वर्ष इन्दौर साहित्य सम्मेलनके लिये भी उनका निर्वाचन हुआ पर कुछ तो उनकी बीमारीने और कुछ उनके बहुधन्धी जीवनने उन्हें छुट्टी न दी।

मालवीयजीका हिन्दी प्रेम वे ही लोग जानते हैं जो उनके साथ रहते हैं या जिन्हें उनकी हिन्दी सुननेका अवसर मिला है। मालवीयजी कितनी मीठी सरस और सुबोध हिन्दी बोलते हैं यह तो सभी जानते हैं पर उन्हें हिन्दी साहित्यसे कितना प्रेम है इसका हम कुछ तो आभास दे ही चुके हैं पर यदि और अधिक जानना हो तो कभी तुलसी जयन्तीपर या कृष्णाष्टमीपर आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें तो पधारें। तब सुनिए जी भरकर असली ठेठ हिन्दी जिसे आप भी समझ लें और आपके बच्चे भी।

मालवीयजीके जीवनका एक-एक अध्याय एक-एक महाभारत है। सत्यकी विजयके लिये उन्होंने जो-जो लड़ाइयाँ लड़ी हैं और स्वार्थत्याग, सेवा और सचाईके साथ काम किए हैं वह किसीसे छिपे नहीं हैं। 'अदालतकी लिपि और प्रारम्भिक शिक्षा' पर जो उनका लेख है वह मानों हिन्दी बनाम उर्दूके मुकदमेका सदाके लिये फैसला है। उसके विषयमें कहा जाता है कि जो इसको पढ़ ले वह केवल हिन्दीका पक्षपाती ही नहीं बल्कि उसका प्रचारक भी बन जायगा।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें एम्० ए० तक हिन्दी साहित्यका अध्यापन होता है और अब इण्टरमिजिएट कक्षाओंमें सभी विषय हिन्दीमें पढ़ाए जाते हैं। यह जानकर किसे सुख न होगा कि हिन्दीके परमसेवी बाबू श्यामसुन्दरदास, अद्वितीय विद्वान् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल तथा कविसम्राट् पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्यायजी, प्रसिद्ध टीकाकार स्वर्गीय लाला भगवान दीनजी आदि हिन्दीके आचार्य सब काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागद्वारा मालवीयजीकी संरक्षतामें हिन्दीकी सेवा कर चुके और कर रहे हैं। लोगोंकी शिकायत यह सदासे रही है कि हिन्दीके इतने पक्षपाती और प्रेमी होते हुए भी मालवीयजीने हिन्दीके विद्वानों और महाकवियोंको विश्वविद्यालयद्वारा सम्मानित नहीं किया। मालवीयजी इस ओरसे उदासीन नहीं हैं। सम्भव है निकट भविष्यमें हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय विद्वान् पण्डित रामचन्द्र शुक्ल और वर्त्तमान काव्यके आचार्य और सर्वश्रेष्ठ कवि उन्हींके हाथों 'आचार्य' बन जायँ। आशा हो चली है कि हिन्दीका उद्धार निकट है। जिसने इसे न्यायालयमें हाथ पकड़कर बैठा दिया है वही इसे भारतके विद्यालयों में पहुँचा देगा।

पर अभीतक उर्दू कचहरियोंमें घुसी बैठी है और बेचारे कितने ही अपढ़ गाँववालोंकी गर्दन उतारती जाती है। पर हमारा विश्वास है कि जो सेनानायक अपनी जवानीमें हिन्दीको उसके सिंहासनपर बैठा गया

वह उसकी ओरसे उदासीन नहीं है, उसे अकण्टक राज्य दिलाए बिना वह चैनसे थोड़े ही बैठेगा। अब तो देश भरमें हिन्दी फैल रही है, लोग बड़े चावसे हिन्दी सीख रहे हैं। राष्ट्रीय महासभाने भी जबसे हिन्दीको अपनाया और जबसे देशके नेता 'मिस्टर प्रेसिडेण्ट, लेडीज़ ऐण्ड जैण्टिलमैन' की जगह 'सभापति महोदय, देवियो और सज्जनो' से अपना व्याख्यान शुरू करने लगे और हिन्दी सचमुच राष्ट्र-भाषा हो गई तबसे तो हिन्दीका बड़ा ही प्रचार हुआ है और होता चला जा रहा है। इस हिन्दी प्रचारके जोशकी एक कथा हमें याद है। सन् १९२८ ई० में पण्डित मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय महासभाके सभापति थे। वे अपना भाषण पढ़ने खड़े हुए। उन्होंने जहाँ शुरू किया 'लेडीज़ ऐण्ड जैण्टिलमैन' कि चारों ओरसे शोर हुआ 'हिन्दीमें, हिन्दीमें, हिन्दीमें', पण्डित मोतीलालजीने अपने पदकी दुहाई दी, बहुत कहा-सुना, पर उनकी एक न सुनी गई। वे हिन्दीमें बोलनेके लिये लाचार किए गए। मद्रास और बङ्गाल, सिन्ध और पञ्जाब सब जगह हिन्दीकी तूती बोल रही है। पर एक बात बड़ी खटकती है, और हरएक देशप्रेमीको खटकनी भी चाहिए कि हमारे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भाई अंग्रेज़ी बोलनेमें अपनी शान समझते हैं और जो हिन्दी बोलते हैं वह भी अंग्रेज़ीके बोझसे दबी हुई निकलती है। एक बार बाबू शिवप्रसाद गुप्तजीने कहा था कि आजकलके लोग शानके मारे अपनी स्त्रीको अंग्रेज़ीमें पत्र लिखते हैं चाहे वह बेचारी ए. बी. सी. भी न जानती हो। हरएक आन्दोलनकी सफलता पढ़ी-लिखी जनताके सहयोगसे ही मिल सकती है। देखें शेक्सपियर और मिल्टनके इन हिन्दुस्थानी चेलोंके कानोंतक हमारी भी पुकार पहुँचती है या नहीं।

महापुरुषकी विभूतिका एक और दृश्य—काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके विड़ला और बोचा छात्रावास।

बेचारा हिन्दू

'मनु' के कड़े नेममें पला हुआ, गाण्डीवकी डोरीकी गूँजसे शत्रुओंको कँपा देनेवाला, भिखारीको चुपचाप कुण्डल और कवच उतारकर दे देनेवाला और अपनी जान देकर भी दीनोंकी पीर हरनेवाला हिन्दू कब, कैसे और कहाँ ग़ायब हो गया, यह एक बड़ी उलझी हुई पहेली है। ताड़के सूखे हुए पत्तोंमें उसके सुहागकी कथा लिखी हुई है, समुद्रकी तरङ्गें और हिमालयकी ऊँची चोटी उसके आखों-देखे गवाह हैं, पर किस रास्तेसे वह हिन्दू अपना देश छोड़कर भाग गया, यह कौन बतायगा? मोहनजो दड़ो और हरप्पाकी खुदाईने यह साबित कर दिया कि वह यहीं मारकर गाड़ दिया गया और उसकी समाधिपर मङ्गोल, फ़ारस, अरब, यूनान और योरोपके लोगोंने आकर अपना-अपना फाग खेला। जिसका रङ्ग पड़ा उसी रङ्गमें वह समाधिमें पड़ा हुआ मुर्दा हिन्दू रँगता गया।

कहा जाता है कि श्रीकृष्णने महाभारत कराकर उसका अँगूठा काट लिया और एकलव्यकी तरह उसने सदाके लिये अपने धनुषका चिल्ला उतारकर रख दिया। कोई कहते हैं कि भगवान् बुद्ध और महावीरकी दयाके नदमें वीर हिन्दू डूब मरा। किसी-किसीका मत है कि कन्नौजके राजा जयचन्दके विश्वासघातने और पृथ्वीराजकी क्षमाने मिलकर उस वीर हिन्दूका गला घोंट दिया। कभी सुनते हैं कि अकबरके मीना बाज़ारमें ही वह लूटा गया और औरङ्गज़ेबकी वधशालामें दो टुकड़े कर दिया गया। फिर सुना कि योरोपमें जाकर वह भूखे मरते हुए भी चोटी कटाकर, टाई बाँधकर और विलायती ढङ्गके कपड़े पहनकर ईसाई बन गया। किसको सच मानें, किसको झूठ। सच पूछिए तो केवल एक ही कारण नहीं है, सभी कारणोंने जोंकोंकी तरह इसका रक्त बारी-बारीसे चूसा है।

हिन्दू जातिने अतिथि-सत्कारका पाठ बचपनमें ही सीखा और वह संस्कार उसके साथ ऐसा लगा कि अतिथि-सत्कारमें उसने अपना सब कुछ लुटा दिया। इधर इसीके घरमें पैदा होनेवाले बच्चोंने भी इसकी सेवा करना तो दूर रहा, अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकानी शुरू कर दी। बौद्धोंने अपना अलग घर बनाया, जैनियोंने अलग, पर इसके बाद जो बहुतसे आस्तिक और नास्तिक मत सम्प्रदाय बने वे सब न जाने कैसे हिन्दू बने रहे।

इस हिन्दू धर्मपर कितने बड़े-बड़े वीरोंने सिर कटा दिए, कितनी स्त्रियोंने अपना कुन्दनसा शरीर आगमें झोंक दिया। यह तो बहुत लम्बी कथा है पर इस सिसकते हुए हिन्दू धर्ममें गुरु गोविन्दसिंहके वीर सपूत जुझावर सिंह और जोरावर सिंह दीवारमें चुने हुए अब भी खड़े हैं। और उस वीर बालक हक़ीक़तकी कथा सुनकर किसे अभिमान न होगा जिसके हिन्दूपनको न तो तलवार डरा सकी न मुल्लाओंकी लाल आँखें। यह सचमुच हमारी कृतघ्नता है कि उस वीर बालकका उतना सन्मान न कर सके जितना करना चाहिए। जहाँ प्रातः-स्मरणीय छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रतापकी पूजा होती है, जयन्ती मनाई जाती है, चित्र टाँगे जाते हैं, वहाँ हक़ीक़त और गुरु गोविन्दसिंहके

वीर लड़के हिन्दू या सिक्ख उपदेशकोंकी कथाओंतक ही कैसे रह गए, कुछ समझमें नहीं आता।

तो यह आर्य्यावर्त्तकी बलवान जाति आपसमें ही बँट गई। रस्सीकी ऐंठन खुल गई, रेशे बिखर गए। जिसके गुरुओंने हिन्दू धर्मके लिये अपने सीस दे दिए, और अपने शरीरपर गरम तेल छुड़वाया, वही बलवान् सिक्ख जाति, अपनेको हिन्दू कहलानेमें सङ्कोच करने लगी, अपना मकान अलग बनाकर बैठ गई। हिन्दू जातिका मानो एक हाथ ही कट गया।

बङ्गालमें जो ब्रह्म समाज और देव समाज आदि चले वे भी हिन्दू न रह गए। अपनी थोड़ीसी पूँजी लेकर वे भी अलग हो गए। पर स्वामी दयानन्दजीका आर्य्यसमाज हिन्दू ही बना रहा। मथुरामें जो दयानन्द शताब्दी मनाई गई उस समय किसीने यह प्रस्ताव किया था कि आर्य्यसमाजको हिन्दुओंसे अलग कर दिया जाय, किन्तु स्वामी श्रद्धानन्द और प्रत्येक समझदार आर्य्यसमाजीने इसका विरोध किया। जिसकी जान बचानेके लिये आप कोशिश कर रहे हों उसीसे बोलचाल बन्द, यह भला कैसे हो सकता था। पर हिन्दू जाति छिन्न-भिन्न अवश्य हो गई थी।

एक बहुत पुरानी कथा है। उस समय बौद्धधर्मका बड़ा बोलबाला था, ज्ञानका भण्डार वेद कूड़ेख़ानेमें फेंका जाने लगा और वेदके रक्षक ब्राह्मणोंकी निन्दा होने लगी, चम्पानगरीके राजा सुधन्वा भी बुद्धके 'अरिय सच्च' और 'अट्ठङ्ग मग्ग' के चक्करमें पड़े हुए थे, पर उनकी रानी अभीतक वेदका पल्ला थामे हुए थी। एक दिन वह अपने राजभवनकी खिड़कीमें बैठी चिन्ता कर रही थी—

"किं करोमि क गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति"—'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन वेदोंका उद्धार करेगा।' कुमारिल भट्ट उसी राहसे जा रहे थे। उन्होंने यह दीनता भरी पुकार सुनी और खड़े हो गए। वहीं उन्होंने पूरे स्वरसे कहा—

'मा विषीद वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले'

"हे रानी! चिन्ता न करो, मैं भट्टाचार्य्य अभी पृथ्वीपर मौजूद हूँ।" और कुमारिलभट्टने बौद्ध गुरुओंसे बौद्धधर्म सीखा और सुधन्वाके दरबारमे ही शास्त्रार्थ हुआ। कुमारिलभट्ट जीत गए और फिर एक बार वेदकी दुन्दुभि बज उठी। उन्होंने बौद्ध गुरुओंसे ज्ञान लेकर उन्हींकी निन्दा और उनका विरोध किया। इसके प्रायश्चित्तमें प्रयागमें त्रिवेणीतटपर भूसीकी अग्निमें जलकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। वह वेदके उद्धारकी बात थी दो हज़ार बरस पहले।

उसके दो हज़ार बरस बाद उसी त्रिवेणीके तटपर एक ब्राह्मणके घरमें एक बालक पैदा हुआ मानो जातिको यही आश्वासन देता हुआ जन्मा—

"मा विषीद वरारोहे मालवीयोऽस्मि भूतले।"

स्वामी दयानन्दजीका आर्य्यसमाज वेदका उद्धार तो कर ही रहा था साथ ही वह हिन्दू समाजको सुधार भी रहा था। यह सब होते हुए भी एक ऐसी संस्थाकी ज़रूरत थी जहाँ हिन्दुस्थानका प्रत्येक हिन्दू कहलानेवाला एक झण्डेके नीचे खड़ा होकर अभिमान कर सके कि 'अब हमें कोई भय नहीं है, हम पचास करोड़ हैं'। हितोपदेशमें एक कथा है कि तीन साँड़ एक जङ्गलमें रहते थे। जबतक वे एक साथ रहते रहे तबतक सिंह उनका बाल भी बाँका न कर सका पर जिस दिन वे अलग-अलग हुए कि सिंह उन्हें मारकर खा गया। यही दशा हिन्दू जातिकी हुई। चारों ओरसे शेर, बाघ, भेड़िये जुटे थे जो इसको मार खानेकी ताकमें थे।

यद्यपि आर्य्यसमाजने हिन्दुओंमें प्रचलित बहुतसी बातोंका विरोध किया पर मूर्त्ति-पूजाका स्वतः विरोध करते हुए भी कई बार मन्दिरों और मूर्त्तियोंकी रक्षाके लिये आर्य्यसमाजियोंने लड़ाई लड़ी। अछूतोद्धार, शुद्धि, विधवा-संरक्षण, बाल-विवाह-निषेध आदि बातें लेकर ही आर्य्य-समाजका प्रचार शुरू हुआ। इनमेंसे कईको बादमें सनातनधर्म सभाने भी अपना लिया।

सन् १८८० ई० में प्रयागमें जो हिन्दू समाज और सन् १८८४ ई० में जो मध्य हिन्दू समाज स्थापित हुआ था उसकी कथा हम कह आए हैं। सन् १८९१ ई० तक मध्य हिन्दू समाजके वार्षिक महोत्सव होते रहे। हिन्दू समाजके बड़े-बड़े नेता वहाँ आकर हिन्दू धर्मकी चर्चा करते और उसमें सुधार करनेके लिये बहुतसी बातें होती रहतीं। इन्हीं दिनों युक्तप्रान्तमें उर्दूकी जगह हिन्दी होनेके लिये घोर आन्दोलन हुआ और मध्य हिन्दू समाजके प्रायः सभी नेता और उसके सर्वेसर्वा मालवीयजी भी उसी आन्दोलनमें पड़ गए जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं। नागरी प्रचार आन्दोलनके सफल होनेके बाद मालवीयजी फिर हिन्दुओंके उद्धारमें जुट गए और उन्होंने हिन्दू युवकोंकी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नतिके लिये एक विश्वविद्यालय खोलनेकी बात चलाई। सन् १९०४ ई० में उनकी यह हिन्दू समाजके सुधारकी सार्थक और सारयुक्त योजना प्रकट हो गई। सन् १९०५ ई० में कांग्रेसके अवसरपर ३१ दिसम्बरको टाउन हौलमें यह हिन्दू विश्वविद्यालयका प्रस्ताव भी विचारके लिये एक सभामें पेश किया गया।

सन् १९०५ ई० का बङ्गभङ्ग वर्त्तमान हिन्दू सङ्गठनका प्रारम्भ समझना चाहिए। लौर्ड कर्ज़नने जो लात लगाई थी उससे बङ्गालके तो दो टुकड़े हुए ही, साथ ही हिन्दुओंकी भी सारी आशा टुकड़े-टुकड़े हो गई। सन् १९०५ ई० में राष्ट्रीय महासभाके साथ-साथ सर गणेशनारायण चन्दावरकरके सभापतित्वमें सोशल कौन्फ़रेन्स हुई, और बरारके श्रीयुत वी० एन० महाजनीके सभापतित्वमें टाउन हौलमें हिन्दुओंकी बड़ी भारी सभा हुई। हिन्दू सभाकी नीति वही थी जो लोकमान्य तिलकने कहा था कि 'सामाजिक सुधार किसी भी समाजमें उसके भीतरसे ही विकसित होने चाहिएँ, न कि बाहरसे थोपे जायँ। यदि ऐसा न हो तो समाजमें एकता नहीं हो सकती।'

बङ्गालके दो टुकड़े तो हुए पर हिन्दू एक होने लगे। उन्होंने अब अनुभव किया कि हमें यदि जीना है तो एक मिलकर रहना होगा। सन् १९०७ ई० में फिर हिन्दू सभाकी बैठक हुई। बहुतसे प्रस्ताव पास हुए, पर वे दिन भारतके लिये दुर्दिन थे। पञ्जाबकेशरी लाला लाजपतरायको देश निकाला हो गया, श्री अरविन्द-घोष और उनके साथी पकड़ लिए गए और बेताजके सम्राट् लोकमान्य तिलकको छः वर्ष कारागारका दण्ड मिल गया। लहरोंके बीचमें पड़ी हुई नौकाको जब अपने बचनेकी चिन्ता रहती है और तो फिर वह कर ही क्या सकती है। लौर्ड मिण्टो अपने साथ सचमुच भूकम्प लाए थे। पञ्जाबमें काँगड़ाके भूकम्पने इन्हींके श्री चरणोंकी अगवानी की थी। लौर्ड मिण्टोने अपना कुदर्शन दमन-चक्र चलाकर पृथक् निर्वाचन प्रणाली शुरू कर दी। सन् १९०९ ई० में फिर हिन्दुओंकी महासभा हुई और लौर्ड मिण्टोके साम्प्रदायिक विशेषाधिकारके विरोधमें पत्र और प्रतिनिधि मण्डल भेजे गए। इस विरोध और प्रतिनिधि मण्डलके कर्त्ता-धर्त्ता मालवीयजी ही थे या यों कहिए कि यह उपज भी मालवीयजी की ही थी। बड़ी दौड़-धूप करके एक प्रतिनिधि मण्डल लौर्ड मिण्टोसे मिला, पर उसका कुछ फल न निकला।

इसके बाद फिर हिन्दू सभा नींद लेती रही, किन्तु सन् १९१३ ई० के कानपुरके दङ्गेने इसकी नींद खोल दी। अप्रैल सन् १९१४ ई० में फिर अखिल भारतीय हिन्दू सभाकी बैठक हुई। उपद्रवियोंको गाली, सङ्गठनका शोर, सुधारके प्रस्ताव—बस इतना ही समझिए। स्वर्गीय पण्डित देवरत्न शर्मा किसी तरह उस हिन्दू-सभा-आन्दोलनको आगे ढकेलते रहे।

सन् १९२० ई० में भारतका 'तिलक' उठ गया, इधर असहयोगकी आँधी आई, उधर ख़िलाफ़तका तूफ़ान आया, इस अँधेरी धर-पकड़में ही ननकानामें निहत्थे वीर सिक्ख सरकारी गोलियोंसे भून दिए गए। सन् १९२१ ई० में मालाबारके मोपलाओंने जो हिन्दुओंकी दुर्गति की उनका धन लूटा, आग लगाई, स्त्रियोंकी बेइज़्ज़ती की, उसके कोड़ेने हिन्दुओंकी पीठ छील दी। मालवीयजी बीमार थे। उनको बड़ा दुःख हुआ। वे वहाँ जाना चाहते थे पर लाचार थे। उन्होंने गान्धीजीको काशीमें बुलाया और फिर पीड़ित हिन्दुओंकी सहायताके लिये उन्होंने जो रुपये, अन्न, वस्त्र भिजवाए और उनकी खोज-खबर ली, यह तो अकथ कहानी है।

यही वह भवन है जिसमें पहले जगद्विख्यात डा० एनी बेसेण्टका स्थापित सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज् था और जहाँसे हिन्दू विश्वविद्यालय और अखिल भारतीय हिन्दू महासभाका जन्म हुआ और जहाँ सन् १९३१ ई० में अखिल एशियाई शिक्षा सम्मेलन हुआ था और सन् १९३४ ई० में जहाँ महात्माजीने अपने हरिजन दौरेको अन्तिम व्याख्यान देकर समाप्त किया था। अब इस भवनमें सेन्ट्रल हिन्दू कौलेज् और रणवीर संस्कृत पाठशाला है।

अभी यह घाव भरने भी नहीं पाया था कि मुल्तानमें दङ्गा हो गया। असङ्घटित हिन्दू ताक़त रखते हुए भी बुरी तरह पिट गए। मालवीयजी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद और हकीम अजमलख़ाँ वहाँ गए। वहाँकी दशा देखकर बाबू राजेन्द्रप्रसाद, हकीम अजमल खाँ और मालवीयजी बच्चोंकी तरह रो पड़े। बस इतनेसे ही उसका अनुमान लगा सकते हैं। मनुष्य क्या इतना पशु हो सकता है, हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। इससे अधिक लज्जाकी और बात ही क्या हो सकती है कि इतने मर्दोंके रहते हुए भी वहाँकी स्त्रियोंको अपनी इज़्ज़त बचानेके लिये तालाबमें डूबकर मरना पड़ा। पर उसी मुल्तानके दङ्गेका एक और भी पहलू है। जहाँ कुछ गुण्डे मुसलमान थे, वहाँ एक भली मुसलमान बहनने अपनी जान हथेलीपर रखकर चालीस हिन्दू मर्दों, स्त्री और बच्चोंको आश्रय दिया, अपने बच्चोंको भूखा रखकर इन आश्रित हिन्दुओंको घरमें रक्खा, उसके पास जो पावभर आटा था दिया और उनके बच्चोंको दूध पिलाया। इस बहनका नाम अल्लाह बसाई था। कौन हिन्दू होगा जो इस मुसलमान बहनके आगे सिर न झुका देगा।

इसीके बाद सहारनपुरमें भी ऐसा ही दङ्गा हुआ और वहाँ भी हिन्दू पिटे। हम जानते हैं कि वहाँ बहुतसे हिन्दुओंने घरमें घुसकर किवाड़के पीछेसे अपनी माताओं, बहनों और बेटियोंकी निर्दय हत्या होते देखी है और कायरताके साथ अपने प्राण बचाए हैं।

इन घटनाओंने हिन्दुओंको जो चाबुक लगाया उससे ये तड़पकर उठ बैठे और मालवीयजी, लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दने हिन्दुओंको एक सूत्रमें बाँधनेका बीड़ा उठाया। स्वामी श्रद्धानन्दजी और लाला लाजपतरायके उद्योगसे सन् १९०७ ई० वाली हिन्दू सभा और सन् १९१४ ई० वाली अखिल भारतीय हिन्दू सभाने सन् १९२३ ई० में एक नया भव्य और व्यवस्थित रूप धारण कर लिया और उसका नाम पड़ा अखिल भारतीय हिन्दू

महासभा। १६ और २० अगस्त सन् १६२३ ई० को काशीमें सेण्ट्रल हिन्दू स्कूलके काशीनरेश हालमें मालवीयजीके सभापतित्वमें बड़ी धूम-धामसे महासभा हुई। सनातनधर्मी, आर्य्यसमाजी, बौद्ध, सिक्ख, जैनी, पारसी सभी सम्प्रदायवाले लोग वहाँ इकट्ठा हुए और भारतके इतिहासमें पहली बार यह जान पड़ने लगा कि भारतमें पैदा होकर, विभिन्न विचार रखकर भी, हम एक ही मञ्चसे बोल सकते हैं और एक ऐसा भी स्थान है जहाँ हम एक साथ बैठकर विचार कर सकते हैं। यह अधिवेशन कई बातोंके कारण महत्त्वपूर्ण रहा। इस सभामें एक ओर कट्टर सनातनधर्मी, दूसरी ओर कट्टर आर्य्यसमाजी और इन दो हिम-शिलाओंके बीच मालवीयजी नाव खे रहे थे और जिस सफ़ाईके साथ उन्होंने कार्य्य किया वह क्या वर्णन किया जा सकता है। इस विरोधी जनसमूहके द्वारा ही मालवीयजीने हिन्दू समाजको सङ्गठित कर दिया।

इस हिन्दू महासभाके उद्देश्य बड़े व्यापक बने।

हिन्दू सभाके उद्देश्य

(१) हिन्दू समाजके सर्वपन्थियोंमें तथा सर्व-वर्गियोंमें पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि करके, एकीकरण द्वारा इस अपने महान् समाजको सुसङ्गटित, प्रबल व उत्कर्षोन्मुख बनाना और उसकी सर्वाङ्गीण प्रगति करना यही हिन्दू सभाका उद्देश है।

(२) सङ्गटित हिन्दू जाति व भारतमेंकी अन्य पर धर्मीय जातियोंके साथ परस्पर सद्भाव उत्पन्न करके भारतको स्वयं-शासित स्वराज्ययुक्त एक महान् राष्ट्र बनानेका प्रयत्न करनेके लिये उनसे मित्रता बढ़ाना।

(३) हिन्दू जातिके निम्न वर्गोंके साथ सर्व-वर्गोंकी उन्नति करके उनको ऊँचे उठाना।

(४) हिन्दुओंके हितकी जहाँ आवश्यकता हो वहाँ रक्षा करना।

(५) हिन्दुओंका संख्याबल क़ायम रखना व उसे बढ़ाना।

(६) हिन्दू स्त्रियोंकी स्थिति सुधारना।

(७) गोरक्षण व गोसंवर्द्धन करना।

(८) हिन्दू जातिके धर्म, सदाचार, शिक्षण और सामाजिक, राजकीय तथा आर्थिक उन्नतिके लिये प्रयत्न करना।

टिप्पणी—हिन्दू सभा हिन्दू जातिमेंके किसी भी विशेष पन्थका, राजनीतिक पक्षका, पक्षपात अथवा विरोध नहीं करेगी, अथवा किसी पन्थके मतमें रद्दोबदल नहीं करेगी।

इसी सभामें बालविवाहके विरुद्ध एक प्रस्ताव था कि चौदह वर्षके पूर्व कन्याका विवाह न किया जाय। बहुतसे लोगोंने इसका विरोध किया और नरकमें पड़नेका भय और आशङ्का प्रकट की। मालवीयजीने बड़ी गम्भीरतासे उसका फ़ैसला देते हुए कहा—'आठ-दस बरसकी अवस्थामें कन्याओंका विवाह करनेसे तो रजोदर्शनके बाद भी विवाह करना श्रेष्ठ है और इसके लिये यदि हमें नरकमें भी जाना पड़े तो नरकमें जाना अच्छा है पर बालविवाह करना अच्छा नहीं।' चाहे इस फ़ैसलेसे किसीको सन्तोष भले ही न हुआ हो पर इस फ़ैसलेके आगे सबने सिर झुका दिया।

इसी अधिवेशनमें, जब अस्पृश्यता-निवारणका सवाल उठा तो लोगोंने कहा कि मालवीयजी ख़ुद तो छूतछात इतनी मानते हैं और ऊपरसे उपदेश देते हैं, पर थोड़ी ही देर बाद उनकी शङ्का दूर हो गई क्योंकि मालवीयजीने थोड़ी ही देर बाद देहरादूनके एक हरिजन (चमार) सज्जनका हाथ पकड़कर खड़ा किया और कहा कि अब मेरे भाई बिहारीलाल कुछ कहेंगे। न जाने कितने नेत्रोंने इन प्रेमभरे शब्दोंपर मोती बरसा दिए थे।

इसके बाद तो हरद्वार, दिल्ली, कानपुर, जबलपुर, कलकत्ता, बेलगाँव, अकोला, अजमेर आदि बहुतसे स्थानोंमें हिन्दू-महासभाके वार्षिक अधिवेशन हुए।

कलकत्तेके अधिवेशनकी बात है। कलकत्ता नगर हैलीडे पार्कमें पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामें हिन्दू महासभाका अधिवेशन हो रहा था। महासभाके खुले अधिवेशनमें लाहौरके उर्दू-दैनिक 'वन्दे-मातरम्' के सम्पादक लाला रामप्रसादजी, एम० ए० ने अछूतों और शूद्रोंको वेद-पाठका अधिकार देनेका प्रस्ताव उठाया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजकने समर्थन करते हुए कहा—"ईश्वरकी दी हुई रोशनी, हवा और वर्षासे जब शूद्र वञ्चित नहीं हैं तब ईश्वरकी वाणी (वेद) से क्यों वञ्चित रहें?" पण्डालमें बड़ी हलचल मच गई। बहुतोंको यह बात अच्छी न लगी। उनको सँभालनेके लिये किसी नेताने आगे बढ़नेका साहस न दिखाया। नाव मँझधारमें आ पड़ी। पण्डालमें बड़ा शोर मचा।

वहाँ मालवीयजी तो थे ही। व्याख्यान-वाचस्पतिजीने तथा अनेक प्रमुख सज्जनोंने और स्वयं लालाजीने भी उन्हें बोलनेका कहा। तालियोंकी गड़-गड़ाहटके बीच मालवीयजी उठे, और अपनी अमृतमयी वाणीकी धारामें कहना प्रारम्भ किया—"ईश्वरके दिए हुए प्रसाद प्राणिमात्रके लिये सुलभ हैं। पर वेदोंका अध्ययन करनेके लिये कठोर तपस्याकी आवश्यकता है, जो सबके लिये साध्य नहीं। इसी लिये स्वयं भगवान्‌ने वेदशास्त्रोपनिषदोंका सार 'श्रीमद्भगवद्गीता' के रूपमें प्रकट कर दिया। वह भी साक्षात् ईश्वर ही की वाणी है। गीता भूमण्डलका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसका अध्ययन और मनन सबके लिये सुलभ है। शूद्र और अन्त्यज भी उसका पाठ करके सफल-मनोरथ हो सकते हैं। वेद-पाठका अधिकार-मात्र लेनेसे कोई लाभ नहीं। उसके लिये कठिन साधनाकी आवश्यकता होगी। प्रस्ताव वही पास करना चाहिए जो कार्य्य-रूपमें परिणत हो सके। भगवान्‌ने यही समझकर गीताका

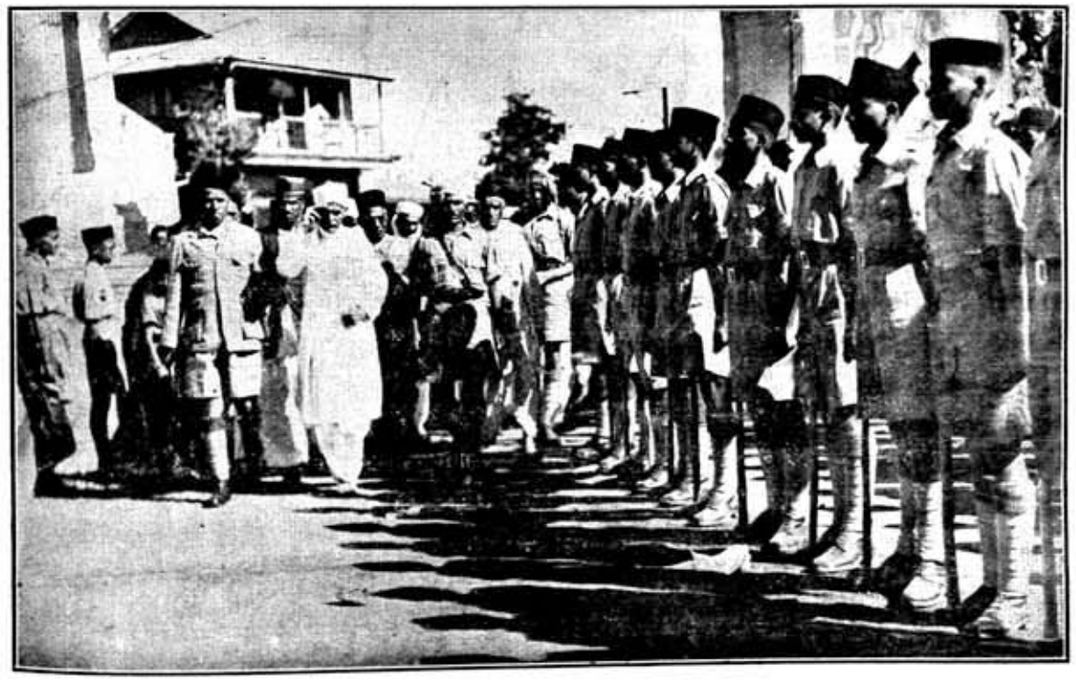

पूना सेवासमितिद्वारा सभापति मालवीयजीको अभिवादन-सम्मान।

उपदेश दिया है कि कलियुगमें वेदपाठ सब श्रेणीके मनुष्योंके लिये साध्य न होगा। गीता प्रत्यक्ष भगवद्वाणी है। वह वेद ही के समान पूज्य और फलप्रद है। मानवजातिके कल्याणके लिये उसमें सब कुछ है। आप लोग प्रयत्न करें कि घर-घरमें गीताका प्रचार हो। प्रत्येक हिन्दूके पास गीताकी पोथी रहे। शूद्र और अस्पृश्य भी उसका पाठ करें और अल्प प्रयाससे ही वेदोंका मुख्य तत्त्व प्राप्त करें। इसाई लोग एक-एक आनेमें बाइबिल बेचकर स्वधर्मका प्रचार करते हैं। हिन्दू धर्मका हृदय गीतामें है। आप लोग उसके सस्ते संस्करण निकालकर प्रत्येक हिन्दूके हाथमें वेदोंका सार रख दें। उसे पाकर फिर किसी ग्रन्थकी चाह न रहेगी।"

क्षुब्ध समुद्रपर तेल पड़ गया। बिड़लाजीने गीताके सस्ते संस्करणकी एक लाख प्रतियाँ बाँटनेकी घोषणा की। देखते-देखते आँधी थम गई।

२७ तथा २८ दिसम्बर सन् १९२९ ई० को बेलगाँवकी हिन्दू महासभा हुई और मालवीयजी ही सभापति बनाए गए। यह सभा बेलगाँव कांग्रेसके साथ ही हुई थी और इसमें गान्धीजी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, श्री केलकर, श्री सत्यमूर्त्ति, मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली, डाक्टर मुञ्जे आदि सभी भारतीय नेता उपस्थित थे।

इसके बाद २९ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को पूनाके तिलक स्मारक हौलमें पूज्य मालवीयजीके सभापतित्वमें हिन्दू महासभाका सत्रहवाँ अधिवेशन बड़े धूम-धामसे हुआ। हिन्दू सेवासमिति पूनाने उन्हें अभिवादन-सम्मान दिया।

इस अधिवेशनको सुन्दरतम बनानेमें महाराष्ट्रके हिन्दुओंने कुछ उठा न रक्खा। इस अवसरपर मालवीयजीने जो सभापतित्व पदसे भाषण

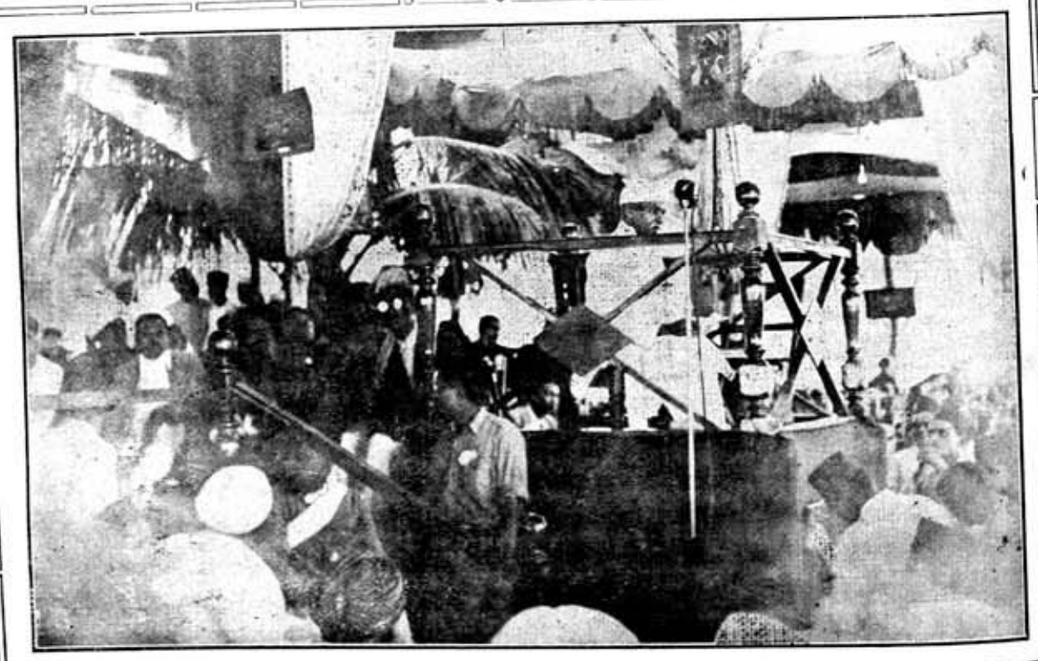

पूज्य मालवीयजी अखिल भारतीय हिन्दू महासभा पूनामें २९ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को सभापति पदसे भाषण दे रहे हैं।

दिया वह कम महत्त्वका नहीं है। इसीमें मन्त्रदीक्षाका महत्त्व, शारीरिक तथा सैनिक शिक्षाकी आवश्यकता, अछूतोद्धार, मन्त्रदीक्षा और सार्वजनिक शिक्षा आदिपर उन्होंने महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

बहुतसे लोग समझते हैं कि मालवीयजी मुसलमानोंसे द्वेष रखते हैं पर हम उनका ध्यान मालवीयजीके उस वक्तव्यकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं जो उन्होंने २८ जून सन् १९३३ ई० को लाहौरमें अपने भाषणमें कहा था :—

"हिन्दू बलवान होकर मुसलमानोंको तकलीफ़ दें, ऐसी मेरी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं है। मेरे मनमें ऐसा विचार आया कि मैं धर्मच्युत हुआ समझिए। मेरी सदा ऐसी इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान हों और जगत्के अन्य समाजोंके साथ खड़े होनेके लायक़ बनें। हिन्दू और मुसलमान एकत्र हों और उनके अखाड़े भी एक ही हों, ऐसी मेरी प्रबल इच्छा है। गामा और ग़ुलामने परदेशी पहलवानोंको चित किया, इसका आनन्द हिन्दुओंको नहीं हुआ, ऐसा तो कोई नहीं कह सकता। हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमानोंको उस जीतका सुख अधिक हुआ, यह बात भी नहीं कही जा सकती।

"समाजमें ऐक्य स्थापन करना यह स्वराज्य सोपान चढ़नेकी पहली सीढ़ी है। दोनों समाजोंका सम्बन्ध इतना दृढ़ होना चाहिए कि उसे कोई भी तोड़ न सके। इस भारतवर्षका नागरिक होना एक बड़े सौभाग्यकी बात है। हिन्दू और मुसलमान दोनोंको ऐसा निश्चय करना चाहिए कि कैसा भी प्रसङ्ग आवे, हम आपसमें धर्म अथवा मतके लिये कभी न झगड़ेंगे। भगिनी, माता व कन्या इनकी ओर सन्मानभरी दृष्टिसे देखना चाहिए। आज जो अपनी दुर्दशा हो रही है वह न हो, इस विषयमें अधिक दक्ष रहना चाहिए। दूसरेका अनिष्ट चिन्तन नहीं करेंगे व दूसरेका अकल्याण नहीं करेंगे, ऐसा निश्चय किया कि ऐक्य स्थापन हुआ ही समझिए।

"मेरा अपने धर्मपर दृढ़ विश्वास है, परन्तु परधर्मका अपमान करनेकी कल्पना मेरे मनको छूतक नहीं गई। किसी गिरजाघर अथवा मसजिदके पाससे जब मैं जाता हूँ तब मेरा मस्तक अपने-आप झुक जाता है। जब कि परमेश्वर एक ही है तो लड़नेका कारण क्या? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी परिस्थिति रहते हुए भी आपसमें दङ्गे टण्टोंका होना, इससे बढ़कर और आश्चर्यकी बात क्या हो सकती है। हमारा रक्षण विदेशी सैन्य करें यह बड़ी लज्जाकी बात है। पाठशालाओंमें सैनिक शिक्षण देना चाहिए और गाँव-गाँव तथा मुहल्ले-मुहल्लेमें नगर-रक्षणका बन्दोबस्त होना चाहिए।"

१४ अप्रैल, सन् १९२६ ई० को लखनऊमें अयोध्या हिन्दू परिषद्का अधिवेशन भाई परमानन्दजीकी अध्यक्षतामें हुआ। उसमें भी मालवीयजीने भाग लिया और उस अवसरपर पं० मालवीयजीने इस आशयका व्याख्यान दिया था :—

बहनो और भाइयो!

"यह विषम परिस्थिति सरकारने उत्पन्न की है। कांग्रेसमें बहुतसे लोग ऐसे हैं जो अपनेको हिन्दू कहनेमें शरमाते हैं। कांग्रेस केवल मुट्ठीभर लोगोंकी संस्था नहीं है। आजकल उसमें स्वराज्य पक्षका प्राबल्य है। उसका मत समझदार मनुष्योंके पालने योग्य नहीं है। कांग्रेस पक्षके लोग सरकारका विरोध करनेके लिये कौन्सिलमें गए। परन्तु वे अपने ध्येयका संरक्षण नहीं कर सके। श्री पटेलने अध्यक्ष-पद स्वीकार किया व पण्डित नेहरूजीने स्कीम-कमेटीमें जगह ली। इस प्रकार विरोधकी बात समूल नष्ट हो गई। पं० नेहरूने एक बार कमेटीमें स्थान स्वीकार करके फिर उसे बीच ही में छोड़ दिया, यह अत्यन्त अदूरदर्शिता की। असेम्बलीमेंके स्वराज्य पक्षका लक्ष्य निरर्थक ही सिद्ध हुआ। अतः अब जो प्रतिनिधि कौन्सिलमें हिन्दू हितका रक्षण करेंगे उन्हींको चुनिए"।

मार्च सन् १९३१ ई०में कानपुरमें हिन्दू मुसलमानोंमें

बड़ा दङ्गा हुआ। उसके बाद तुरन्त ही ११ अप्रैल सन् १९३१ ई० को कानपुरमें हिन्दू-मुसलमानोंकी एक भारी खुली सभा हुई। उसमें भाषण करते हुए पण्डितजीने कहा :—

"मैं मनुष्यताका पूजक हूँ। मनुष्यत्वके आगे मैं जातपाँत नहीं मानता। कानपुरमें जो दङ्गा हुआ उसके लिये हिन्दू या मुसलमान इनमेंसे एक ही जाति जवाबदेह नहीं है। जवाबदेही दोनों जातियोंपर समान है। मेरा आपसमें आग्रहपूर्वक ऐसा कहना है कि ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए कि अब भविष्यमें अपने भाइयोंसे ऐसा युद्ध नहीं करेंगे। वृद्ध, बालक व स्त्रियों पर हाथ नहीं छोड़ेंगे। मन्दिर अथवा मसजिद नष्ट करनेसे धर्मकी श्रेष्ठता नहीं बढ़ती। ऐसे दुष्कर्मोंसे परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। आज आप लोगोंने आपसमें लड़कर जो अत्याचार किए हैं उसका जवाब आपको ईश्वरके सामने देना होगा। हिन्दू और मुसलमान इन दोनोंमें जबतक प्रेमभाव नहीं उत्पन्न होगा तबतक किसीका भी कल्याण नहीं होगा। एक दूसरेके अपराध भूल जाइए और एक दूसरेको क्षमा कीजिए। एक दूसरेके प्रति सद्भाव और विश्वास बढ़ाइए। ग़रीबोंकी सेवा कीजिए, उनका प्रेमसे आलिङ्गन कीजिए और अपने कृत्योंका पश्चात्ताप कीजिए।"

शुद्धि

शुद्धिपर मालवीयजीने कहा है :—

"इस देशमें आज सात करोड़ मुसलमान दिखाई दे रहे हैं। उनमेंसे बहुत थोड़ेसे विदेशसे आए हुए हैं। अरब और अफ़गानिस्थानसे अधिक-से-अधिक पचास लाख मुसलमान यहाँ आए होंगे। बाक़ी सब यहींके बनाए हुए मुसलमान हैं। कोई मुसलमान यदि ईसाई हो जाय तो फिर क़लमा पढ़कर वह मुसलमान हो जा सकता है। परन्तु हिन्दू ऐसा नहीं कर सकते। यह बड़े दुःखकी बात है।

इस प्रकार क्रमशः घटते-घटते आज हम लोगोंमेंसे साढ़े छः करोड़ हिन्दू परधर्ममें चले गए। हिन्दुओंको मुसलमान बनानेके लिये नाना प्रकारके उपायोंसे काम लिया जाता है। मलकाना राजपूत, साष्टी, गोआ प्रान्तमेंके हिन्दू, इन सबको ऐसे ही हम लोग खो बैठे। ज़रा परधर्मियोंका संसर्ग हुआ कि हम मनुष्यको भ्रष्ट कह देते हैं। वह समाजसे निकाल दिया जाता है। जो लोग जुलुम-जबर्दस्तीसे परधर्ममें गए हैं उनको शुद्ध करना ही चाहिए। इनमेंसे बहुतसे ऐसे भी हैं जिनको हिन्दुओंने छोड़ दिया है तिसपर भी वे अपने प्राचीन आचारपर अटल हैं। ऐसे लोगोंको अवश्य शुद्ध करना चाहिए। एक हिन्दू बालकने ग़लतीसे एक मुसलमानके डब्बेका पान खा लिया। उसने मुझे सब हक़ीकत लिखी। मैंने उसे बुला लिया। वह सनातनधर्माभिमानी और बड़ा कुलीन लड़का था। मैंने उसे कहा—*"जात पाँत पूछै नहि कोई, हरिको भजै सो हरिका होई।"* परमेश्वरका नाम स्मरण करो। गङ्गाजल प्राशन करो। तुम्हारे सब पाप दूर हो जावेंगे।" अगर ऐसा न किया होता तो वह मुसलमान हो जाता। एक ओर मुसलमान व ईसाई और दूसरी ओर हिन्दू बनानेमें प्रतिबन्धक अभेद्य धर्मकी दीवार, इसी वजहसे लाखों हिन्दू परधर्ममें चले गए। अगर परिस्थिति ऐसी ही रही तो कुछ दिनोंमें हिन्दू धर्मका नाम निशानतक न रहेगा। प्राचीन कालमें ऋषियोंने अनार्य्योंको आर्य्य और सभ्य बना लिया था। अतः जो लोग आज भी स्वेच्छासे हिन्दू धर्म स्वीकार करना चाहें उन्हें ऐसा करनेका अधिकार है। ईश्वरका नाम लेकर चारों ओर यह घोषणा कीजिए। इससे हिन्दू धर्मका अँधेरा दूर होकर धर्म सूर्य्यका उदय होगा और हिन्दू समाज विशाल और बलवान बनेगा।"

सङ्गठन क्यों चाहिए?

सङ्गठनके सम्बन्धमें मालवीयजीका मत थोड़ेमें इस प्रकार है :—

"भारतवर्षके गौरव, उसकी संस्कृति व उसके साहित्यकी रक्षाके लिये सङ्गठन करना आवश्यक है, इनकी रक्षा करना हिन्दूका परम कर्त्तव्य है। भारतवर्षको स्वराज्य दिलाए बिना उसकी संस्कृति, साहित्य तथा गौरवकी रक्षा नहीं हो सकती है। अतः हिन्दुस्थानको स्वराज्य प्राप्त करा देना यह प्रत्येक हिन्दूका परम धर्म है। परन्तु इस स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेका मुख्य साधन हिन्दू सङ्गठन है। अतः हमारा प्रथम कर्त्तव्य यही है।"

मालवीयजी मन, कर्म और वचनसे हिन्दू हैं। पहले गौ और ब्राह्मण प्रतिपालकको ही हिन्दू-रक्षक कहा जाता था और वास्तवमें बात भी यही थी। गौकी रक्षामें हमारे देशकी सम्पत्तिकी रक्षा थी और ब्राह्मणोंकी रक्षामें हमारे ज्ञानकी रक्षा थी। यदि ये दोनों नष्ट हो जाते तो हमारी सम्पत्ति और हमारा ज्ञान दोनोंका नाश हो जाता। मालवीयजीकी गोरक्षापर तो हम कह ही चुके हैं पर हिन्दुओंके ज्ञानकी रक्षाके लिये जो उन्होंने सफल भगीरथ प्रयास किया है वही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और हिन्दू जाति उसके लिये उनकी सदा ऋणी रहेगी।

राष्ट्रीय महासभाके कुछ नेतागण हिन्दू महासभाको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। उनकी समझमें हिन्दू महासभा एक ऐसी संस्था है जो राजनीतिक प्रगतिमें बाधा डालती है पर हम उनका तर्क नहीं समझ पा रहे हैं। जब हमपर विपत्ति आती है, हमारा घर जला दिया जाता है, हम लूट लिए जाते हैं, हमारी बहू-बेटियोंपर सङ्कट आता है तब कोई मदद नहीं करता और यदि हम उनकी रक्षाका प्रबन्ध अपने आप कर लेते हैं तो लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, आँखें तरेरते हैं और उसमें मीन-मेख निकालते हैं। आप हमें मारते जाइए, ठोंकते जाइए तब कुछ नहीं, हमारे घरका सामान उठाकर दूसरोंको देते जाइए तब कुछ नहीं, यदि हम

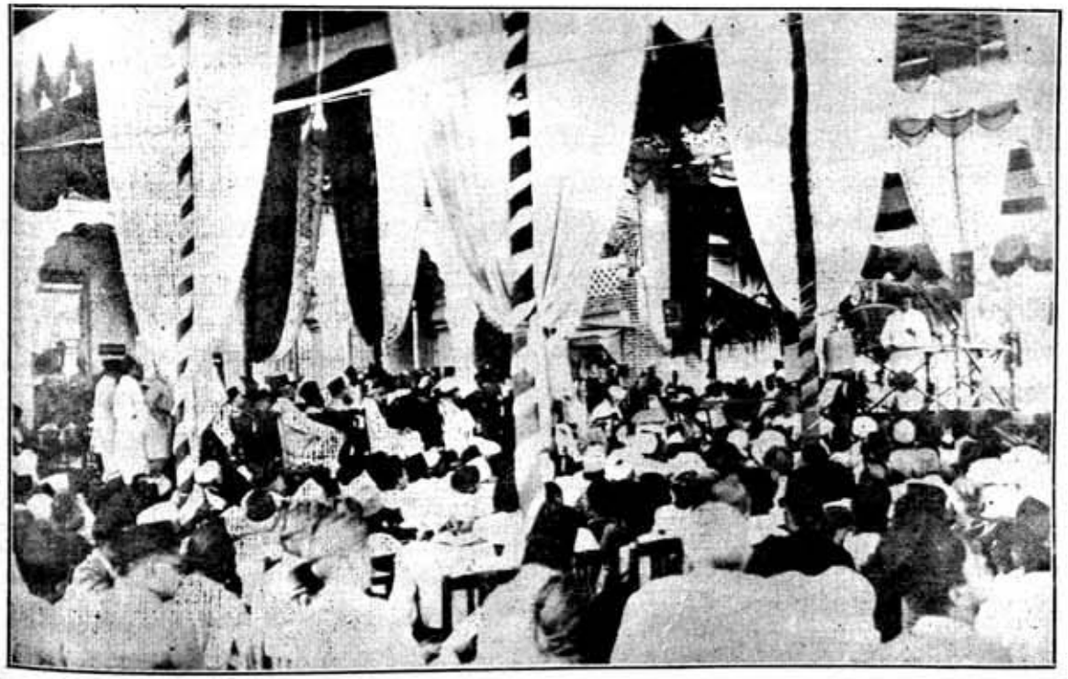

हिन्दू महासभाका पूना अधिवेशन, ३१ दिसम्बर सन् १९३५ ई०। सभापति मालवीयजी बीचमें बैठे हैं।

कुछ बोल दें, अन्यायके विरुद्ध आवाज़ उठावें तब हम बुरा करते हैं। यह बात कुछ समझमें न आई। यदि राष्ट्रीय महासभा थोड़ासा पक्षपात कम कर देती तो शायद हिन्दू महासभाको राष्ट्रीय महासभाके विरुद्ध सन् १९२६ और सन् १९३४ ई० में कौन्सिलोंकी लड़ाई न लड़नी पड़ती। सहनशीलताकी भी एक सीमा होती है।

मालवीयजीसे भी कुछ लोग इसलिये भी नाराज़ हैं कि वे हृदयसे हिन्दू हैं। और यदि मालवीयजी हृदयसे देश और जाति दोनोंके परम सेवक न होते तो शायद वर्त्तमान नेता उन्हें भी दूधकी मक्खी बना देते, किन्तु उनका अग्नि विस्फोट मालवीयजीके स्वभाव-रूपी शीतल विस्तृत अथाह महासागरमें उठकर स्वयं विलीन हो जाता है। हिन्दू जाति मालवीयजीकी कितनी ऋणी है और रहेगी, इसका उत्तर भविष्य देगा। पर सङ्क्षेपमें हम पूछते हैं कि हिन्दुओंको किस विपत्तिमें मालवीयजीका सहारा नहीं मिला, उनकी किस संस्थाको मालवीयजीका पुनीत आशीर्वाद नहीं मिला और उनके किस आन्दोलनको मालवीय-जीका नेतृत्व नहीं मिला? बस इसका उत्तर ही हमारा वक्तव्य है।

मालवीयजीकी हिन्दू-जाति-सेवाका मूर्त्तिमान् स्वरूप—काशी विश्वविद्यालयका एक भवन।

हमारे देशका अभिमान हिन्दू-विश्वविद्यालय

सपना

इतिहासके जन्मसे बहुत पहलेकी बात है जब सारे संसारके मनुष्य पेड़ोंके खोखलों और माँदोंमें रात काटते थे, जङ्गली फल और जङ्गली जानवरोंका भोजन करते थे और इशारोंमें बातें किया करते थे, उस समय हिमालयके पवित्र जलसे सिंचे हुए आर्य्यावर्त्तमें पञ्चनद और गङ्गा-यमुनाके दोआबेमें सामवेदका गान होता था, गौओंका पालन होता था, खेती होती थी, अनेक धान्य पैदा किए जाते थे और इतना ही नहीं बल्कि यहाँके लोग सृष्टि रचनेवाले परमेश्वरकी भी खोजमें लगे हुए थे और उसे पा भी चुके थे। हमने संसारकी सभी जातियोंकी सभ्यताका प्रभात देखा पर हमारी सभ्यताका प्रभात किसने देखा? ऋग्वेद हमारी सभ्यताका सबसे पुराना गवाह है पर जिस सभ्यताका उसमें वर्णन किया गया है वह एक-दो सदीकी पैदावार नहीं है बल्कि लगातार कई सदियोंके निरन्तर प्रकाशने उसे पक्का बनाया था। पके हुए आमको बाज़ारमें देखकर हमें समझ लेना चाहिए कि यह कई महीने पहले रसालकी डालमें भौरोंसे घिरा हुआ एक फूल रहा होगा। इसी तरह वैदिक सभ्यता भी—जिसमें अध्यात्मका पूरा विकास हो चुका था—कई हज़ार वर्षोंकी कमाई रही होगी।

इस सभ्यताके प्रकाशकी ओर सभी देश खिंचे चले आए, जिन्हें हमने ही धोती पहनना, बात करना और हिलमिलकर रहना सिखाया। भारत कला और विद्याओंका खान था। कुछ नहीं तो चौंसठ कलाएँ और चौदह विद्याओंका तो पूरा पता मिलता ही है। भारत संसारका गुरु बन गया। वह विद्याका ऐसा फुहारा बन गया जहाँ सारे संसारके प्यासे लोग आ-आकर अपनी प्यास बुझाने लगे। पर भारतके सभी शिष्योंने अपने गुरुकी ही ख़बर लेनी शुरू कर दी। जिस हँड़ियामें पानी पिया उसीमें छेद कर दिया। भलमनसाहत क्या इसीका नाम था? जो इसकी महिमा समझते थे उन्होंने इसका भण्डार समेटा और अपने घर उठा ले गए, जिन्होंने इसके विद्याधनकी कद्र नहीं की वे इसके पुस्तकालयोंमें आग लगा गए। पर धन्य है भारतवासियोंकी वर्णाश्रमधर्म-प्रणालीको। समाजके एक वर्ग ब्राह्मणोंने यह काम अपने ज़िम्मे ले लिया और धनकी लिप्साको लात मारकर, सन्तोषका बाना पहनकर सारा ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी आजतक बचाए रक्खा। इन्हें लोगोंने 'पाखण्डी' कहा, 'पोप' कहा, 'उन्नतिके विरोधी' कहा और क्या-क्या नहीं कहा पर ये लोग गालियाँ सहकर भी चुपचाप अपना काम करते आए, और आज जो हमें इतने ग्रन्थ मिल सके हैं उनका एकमात्र श्रेय इन्हीं ब्राह्मणोंको है जिनकी सम्पत्ति केवल एक जनेऊ और एक धोती है।

इनके जनेऊ और इनकी चोटीकी रक्षा करनेवाले क्षत्रिय अपनी तलवारें तोड़ चुके थे। जिनकी मूँछ सिंहकी तरह ऊँची रहती थी उन्होंने अपनी

बेटियाँ अनार्य्योंको सौंप दी। जिनके सहारेपर ब्राह्मण, भारतकी सभ्यता इकट्ठी करते आए थे, उनकी जब यह दशा हो गई तो ब्राह्मणकी चोटी और उसके जनेऊ भी कटने लगे। ये ज्ञानके दीप, जिन्होंने भयानक आँधियोंमें भी हिन्दुस्थानमें दीवाली मनाई थी, एक-एक करके बुझने लगे और जिसके चरणोंपर न जाने कितने देशी राजा और विद्यार्थी अपना सिर झुका गए थे, उस गुरुकी पगड़ी उसीके चेलोंने उछाल दी, उसका आसन छीन लिया और इतना ही नहीं, उसे ऐसा नशा पिला दिया कि वह अपना ज्ञान भूल बैठा और फिर द्वार-द्वार ज्ञानकी भिक्षाके लिये हाथ पसारने लगा। क्या यह हमारे लिये डूब मरनेकी बात नहीं है कि भारतके विद्यार्थी हिन्दी, संस्कृत, पाली, अर्थशास्त्र आदि विषयोंके आचार्य्य (डाक्टर) बननेके लिये लन्दन, बर्लिन और पैरिस विश्वविद्यालयोंकी शरण लें और इससे भी अधिक क्या यह कम आश्चर्य्य और शर्मकी बात है कि हमारे देशके विश्वविद्यालय अपने विश्वविद्यालयोंके पढ़े हुए छात्रोंको स्थान न देकर विलायती विद्या लगे हुए लोगोंको अध्यापक नियुक्त करें। हम समझते हैं कि इस कलङ्कसे कोई भी भारतीय विश्वविद्यालय नहीं बच सका।

नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, नदिया, धार, सभी विद्यालय और विश्वविद्यालय समयकी चक्कीमें पिस गए, छुट-पुट एकाध पण्डित पुरानी चटाईपर बैठकर पाणिनि और मनु, भास्कराचार्य्य और पतञ्जलिकी उद्धरणी करते रहे। उसका उद्देश्य भी विद्या-प्रचारका उतना नहीं था जितना अपना और अपने कुटुम्बका पेट पालना था। पर फिर भी कुछ स्थान ऐसे बने रहे जो दिल्लीके लोहेकी किल्लीकी तरह अचल खड़े रहे और जिनमें घनघोर वर्षा होनेपर भी मुर्चा न लग सका। काशी एक ऐसा ही स्थान था।

सन् १८५८ ई० में अंग्रेज़ी राज्यकी नींव ही नहीं पड़ी बल्कि यों कहिए कि उसका पूरा क़िला तैयार हो गया और महारानी विक्टोरियाके घोषणापत्रने उसका उद्घाटन किया। उस समय हिन्दुस्थानियोंने इतनी जय-जयकार की कि उनके गले बैठ गए, बहुत दिनोंतक कुछ भी न बोल सके।

सन् १८८० और ८४ के बीचकी बात है। म्योर सेण्ट्रल कौलेज् प्रयागमें एक छात्रके मनमें यह बात पीड़ा दे रही थी कि हमारे देशके विद्यार्थियोंको विदेश क्यों जाना पड़े, फिर विद्यार्थियोंका नैतिक पतन देखकर उसके मनमें यह भावना हुई कि क्यों न पुराने आश्रमके आधारपर नये आश्रम खुलें। उसने बहुतोंसे यह बात कही। किसीने सुना और हँस दिया। किसीने कहा 'पागल हुए हो'। जिसके घरमें दोनों जूनका भोजन न नसीब हो वह अगर ऐसी बात कहे तो वह पागल नहीं तो और है क्या। पर उस 'पागल' को धुन थी।

वह अपने अकेले समयमें कभी उस अढ़ाई हज़ार बरस पहलेके नालन्दा विश्वविद्यालयका स्वप्न देखा करता था जिसमें अध्यापकोंके सौ आसन लगे हुए हैं। वहीं खेती हो रही है। गुरु और शिष्य सभी मिलकर काम कर रहे हैं। कहीं विज्ञान पढ़ाया जा रहा है, कहीं तर्कशास्त्र, कहीं साहित्य कहीं आयुर्वेद, कहीं दर्शन तो कहीं ज्योतिष। कहा जाता है कि—

काजरकी कोठरीमें कैसो हू सयानो जाय,
एक रेख काजरकी लागि है पै लागि है।

पर यह तो सोनेकी खान थी जहाँ जो पहुँच गया वह कुन्दन बनकर निकल आया। कभी उस नौजवानके आगे तक्षशिलाका विद्यालय दिखाई देने लगता था—विद्यार्थी और अध्यापक एक ही आश्रममें रहते हैं। कुछ शुल्क देते हैं, कुछ मुफ़्तमें पढ़ते हैं। दिनको काम करते और रातको पढ़ते हैं। एक-एक कला या विद्यामें विशेषज्ञ होते हैं। कभी उसके मस्तिष्कमें सातवीं सदीका बिहारका विक्रमशिलाका विश्वविद्यालय घूमता था।

यों तो हरएक कोई अपनी मनके महल बनाता है पर इनमें कितने ऐसे निकलेंगे जिन्होंने अपने हवाई

Z M
G 6

इनमें कितने ऐसे निकलेंगे जिन्होंने अपने हवाई महलोंको आँखोंसे देखा है?

आज हम जिसकी कथा कह रहे हैं वह सचमुच ऐसा ही था। पहले कल्पना की। धीरे-धीरे उस कल्पनामें बनी हुई मूर्त्तिमें जान पड़ने लगी। फिर उसका स्वरूप बनना शुरू हुआ और देखते-देखते काशीमें गङ्गाजीके किनारे खेतों और अमराइयोंके बीचसे गेरुआ वस्त्र पहन-पहनकर वह कल्पना विशाल रूप धारण करके निकल आई। नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिलाकी याद लेकर। सभीने आँखें मलकर देखा क्या सपना है, नहीं सपना कैसे हो सकता है। यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। कल तो नहीं था—सचमुच नहीं था—रात-रातमें बन गया है? हाँ, रात-रातमें बन गया। जब सारा संसार अँधेरी रातमें चादर तानकर सो रहा था उस समय रातको अपनी नींद हराम कर अपने पसीनेके गारेसे एक आदमीने अपने कुछ मित्रोंसे ईंट-चूना माँगकर इसको बनाया है। संसारमें बहुतसी आश्चर्य्य-जनक चीज़ें हैं पर यह सबसे बड़ा आश्चर्य्य है। बहुतसे वनस्पति-विशारदोंका दावा है कि वे एक दिनमें एक पौदेको एक फ़ीट बड़ा कर सकते हैं—शायद यन्त्रसे या बिजलीसे। पर जिसके पास यन्त्र भी नहीं हो और पैसा भी पास न हो वह यदि गेहूँ और चनेके खेतोंमेंसे या हरी-भरी अमराइयोंमेंसे इतने थोड़े समयमें एक इतना बड़ा विश्वविद्यालय पैदा कर दे—भला कौन वैज्ञानिक है जो इस बातका दावा करेगा।

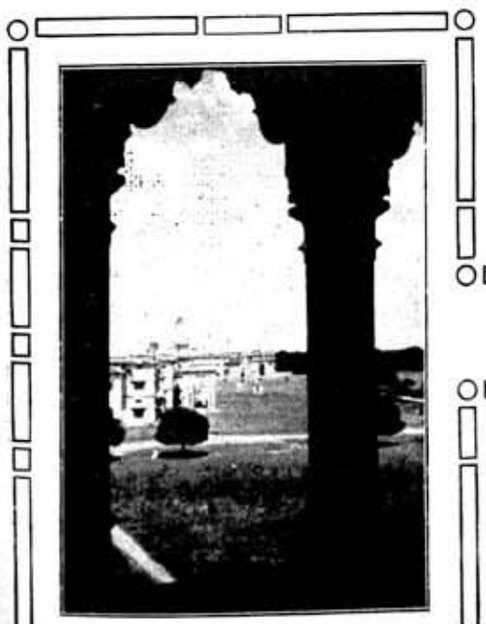

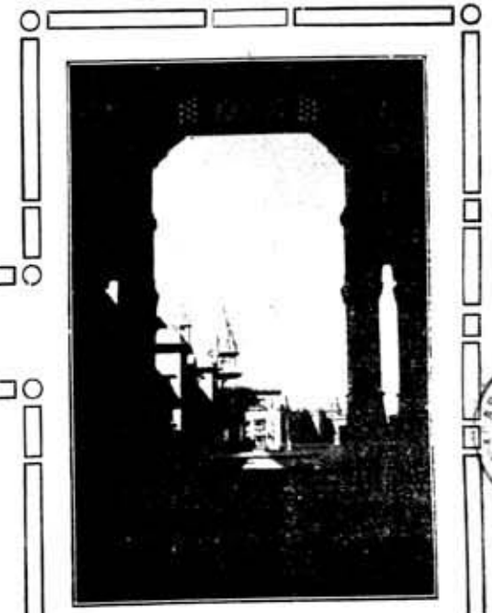

B.H.U. MALAVIYA BHAVAN.
M451

फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज हिन्दुस्थानमें पैसा पैदा करनेके लिये स्थापित हुआ था, कुछ राज करने या यहाँका इन्तज़ाम करनेके लिये नहीं। भारतका भाग्य उस समय भँवरमें पड़ चुका था। उसने विदेशियोंसे गाँठ जोड़नेमें ही शायद भलाई समझी। धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जब सिक्का चलने लगा तब उसने समझा कि यहाँके लोगोंको बिना खुश किए अधिक दिन जी न सकेंगे। सन् १७८२ ई० में कलकत्तेमें मुसलमानोंका कलकत्ता मदरसा खुला और अरबी पढ़ाई जाने लगी। उसीके पीछे सन् १७९१ ई० में काशीमें संस्कृत कौलेजकी नींव पड़ी। पर इससे उनका उद्देश्य सफल होता नज़र न आया। उन्होंने अंग्रेज़ी पढ़नेपर ज़ोर दिया। सन् १८३५ ई० में मेकौले महोदयने अंग्रेज़ी शिक्षाके पक्षमें फ़ैसला दे दिया। चारों ओर स्कूल और कौलेज खुलने लगे। सन् १८५४ ई० में सर चार्ल्स वुडने ख़रीत जारी किया, जिसके अनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। सन् १८५८ ई० में बम्बई और मद्रासमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया गया। सन् १८८८ ई० में शिक्षा कमीशन बैठा और लौर्ड रिपनने देखा कि विश्वविद्यालयोंकी संख्या कम है, उन्होंने लाहौरमें एक विश्वविद्यालय स्वयं सन् १८८२ ई० में स्थापित किया और सन् १८८७ ई० में उनके उत्तराधिकारी लौर्ड लिटनने प्रयागमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया।

इन विद्यालयोंमें, जहाँ एक ओर सिरसे पैरतक अंग्रेज़ी रङ्गमें रँगे लोग निकलते थे, वहाँ ऐसे भी लोग निकले, जो राजनीतिक दाव-पेंच समझने लगे और शासनमें स्थान पानेका जतन करने लगे। सरकारका माथा ठनका। चिरजीवी लौर्ड कर्ज़नने अपने शासनमें इण्डियन युनिवर्सिटीज़ कमीशन (भारतीय विश्वविद्यालय जाँच समिति) लाए और सब विश्वविद्यालयोंको सरकारने हथिया लिए। पर सन् १९१७ ई० में कलकत्ता युनिवर्सिटी कमीशनका शुभागमन हुआ और ढाकामें शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो गया। शेष विश्वविद्यालय परीक्षा ही लेते रहे।

हाँ, तो मालवीयजीके मनमें प्रयागसे काशीतक गङ्गाजीके किनारे-किनारे एक ऐसा आश्रम बनानेकी धुन थी जहाँ भारतीय युवक अपने चरित्रका सुधार करें और विद्या सीखें। इनके मित्र बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा और सुन्दरलाल इनके सलाहकार थे। पण्डित सुन्दरलालके कहनेसे यह विचार बदल गया। प्रयागके पुराने निवासियोंमेंसे बहुतोंको वे दिन याद होंगे जब मालवीयजी और स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलाल घोड़े-गाड़ीपर शामको घूमने निकलते थे और कभी-कभी बड़ी देरतक घूमते रहते थे। भावी विश्वविद्यालयका बहुतसा नक़शा इसी सैर सपाटेमें बना था और देश तथा नगरकी न जाने कितनी समस्याएँ उसी समय सुलझाई गई थीं।

वह राष्ट्रीय शिक्षाका युग था। एक राष्ट्रीय शिक्षालयके लिये बनारसके रईस मुन्शी माधोलालने तीन लाख रुपया दान दिया था। दक्षिणमें सर्व श्री तिलक देशमुख, वैद्य तथा बीजापुरकरने 'समर्थ विद्यालय' स्थापित किया था। बहुतसे लोग राष्ट्रीय शिक्षाके लिये अपनी सेवाएँ दे रहे थे। बनारसमें स्थापित होनेवाले राष्ट्रीय शिक्षालयमें सेवा करनेके लिये बहुतसे लोग तैयार हो चुके थे पर कौन जानता था कि उस छोटेसे बीजमें इतनी बड़ी सृष्टि छिपी है। नाभाके राजाने सिक्ख जातिको अमृतसर ख़ालसा कौलेजका सुधार करनेके लिये आमन्त्रित किया। बङ्गालमें राँचीके नए कौलेजके लिये अच्छी रक़में दान की गईं। अलीगढ़ कौलेजके संरक्षक अपने कौलेजको गुरुकुल प्रणालीका विश्वविद्यालयमें परिणत करनेकी सोचने लगे। नवाबरामपुरको सहायतासे बरेली कौलेजकी भी उन्नति हुई। महाराजा बलरामपुरने एक गुरुकुलकी तरहके नये शिक्षालयके स्थानके लिये तीन लाख रुपया दिया। सबसे अन्तमें उल्लेखनीय तातावैज्ञानिक अन्वेषण संस्था भी धीरे-धीरे अस्तित्वमें ही थी। केवल लौर्ड कर्ज़नके विधानके अनुसार सरकारी सहयोगसे विश्वविद्यालयों अथवा कौलेजोंमें उच्च शिक्षाके कार्य्यको प्रोत्साहन करना व लाभ पहुँचाना कादापि सम्भव न था।

सन् १९०४ ई० में पहले-पहल काशी नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहके सभा पतित्वमें मिण्ट हाउस काशीमें एक सभा हुई और पहले उसमें मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयका ब्यौरेवार प्रस्ताव रक्खा। उस सभामें बहुतसे ऐसे लोग थे जो उस प्रस्तावमें सफल होनेमें सन्देह करते थे, इनमें उभाके सभापति काशी नरेश स्वयं थे। इस बातको एक बार स्वयं उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजमें भाषण देते हुए कहा भी था—"कि जब हमारे माननीय मित्र पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने—जिन्होंने इस पवित्र कार्य्यका सूत्रपात किया है, मुझसे पहले-पहल हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित करनेके विचारको कहा, मुझे इस कार्य्यकी सफलतामें सन्देह था।" मनमें सन्देह करते हुए भी सभीने उस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। अब तो मालवीयजीको बड़ा उत्साह हुआ। नवम्बर, सन् १९०५ ई० में मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये फ़क़ीरी ले ली। संसारके कल्याणके लिये बुद्ध अपना राज्य और घर छोड़कर निकल पड़े उसी साल श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामें दिसम्बरमें राष्ट्रीय महासभा होनेवाली थी। उससे पहले ही अक्तूबरमें 'प्रस्तावित विश्वविद्यालय' का विवरण छपवाकर भारतवर्षके राजा, महाराजा पण्डित, विद्वान् और नेताओंको भेजा गया। दिसम्बरमें काशीमें राष्ट्रीय महासभा हुई और उसी अवसरपर ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को बरारके श्री बी० एन्० महाजनी एम्० ए० के सभापतित्वमें काशीके टाउनहौलमें एक बड़ी भारी सभा हुई। सब धर्म्मोंके प्रतिनिधि, देश भरके प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियोंके सामने यह योजना रक्खी गई। यहाँ भी हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजनाका सबने स्वागत किया। पहली जनवरी सन् १९०६ ई० को वहीं कांग्रेसके पण्डालमें हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी घोषणा हुई।

अगले ही वर्ष सन् १९२६ ई० में २० से २९ जनवरी तक प्रयागमें परमहंस परिव्राजकाचार्य्य जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्य्यजीके सभापतित्वमें सुप्रसिद्ध साधुओं तथा विद्वानोंकी सनातनधर्म महासभामें यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि—

"१—भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशीमें एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना की जाय, जिसके निम्नाङ्कित उद्देश हों—

(अ) श्रुतियों तथा स्मृतियों-द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मके पोषक सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये धर्मके शिक्षक तैयार करना।

(आ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययनकी अभिवृद्धि।

(इ) भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमें योग देना।

२—विश्वविद्यालयमें निम्नाङ्कित संस्थाएँ होंगी—

(अ) वैदिक विद्यालय—जहाँ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, इतिहास तथा पुराणोंकी शिक्षा दी जायगी। ज्यौतिष-विभागमें एक ज्यौतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी निर्मित की जाय।

(अ) आयुर्वैदिक विद्यालय—जिसमें एक प्रयोगशाला हो तथा वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनके लिये

फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो

ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज हिन्दुस्थानमें पैसा पैदा करनेके लिये स्थापित हुआ था, कुछ राज करने या यहाँका इन्तज़ाम करनेके लिये नहीं। भारतका भाग्य उस समय भँवरमें पड़ चुका था। उसने विदेशियोंसे गाँठ जोड़नेमें ही शायद भलाई समझी। धीरे-धीरे ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जब सिक्का चलने लगा तब उसने समझा कि यहाँके लोगोंको बिना खुश किए अधिक दिन जी न सकेंगे। सन् १७८२ ई० में कलकत्तेमें मुसलमानोंका कलकत्ता मदरसा खुला और अरबी पढ़ाई जाने लगी। उसीके पीछे सन् १७९१ ई० में काशीमें संस्कृत कौलेजकी नींव पड़ी। पर इससे उनका उद्देश्य सफल होता नज़र न आया। उन्होंने अंग्रेज़ी पढ़नेपर ज़ोर दिया। सन् १८३५ ई० में मेकौले महोदयने अंग्रेज़ी शिक्षाके पक्षमें फ़ैसला दे दिया। चारों ओर स्कूल और कौलेज खुलने लगे। सन् १८५४ ई० में सर चार्ल्स वुडने ख़रीत जारी किया, जिसके अनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। सन् १८५८ ई० में बम्बई और मद्रासमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया गया। सन् १८८८ ई० में शिक्षा कमीशन बैठा और लौर्ड रिपनने देखा कि विश्वविद्यालयोंकी संख्या कम है, उन्होंने लाहौरमें एक विश्वविद्यालय स्वयं सन् १८८२ ई० में स्थापित किया और सन् १८८७ ई० में उनके उत्तराधिकारी लौर्ड लिटनने प्रयागमें विश्वविद्यालय स्थापित कर दिया।

इन विद्यालयोंमें, जहाँ एक ओर सिरसे पैरतक अंग्रेज़ी रङ्गमें रँगे लोग निकलते थे, वहाँ ऐसे भी लोग निकले, जो राजनीतिक दाव-पेंच समझने लगे और शासनमें स्थान पानेका जतन करने लगे। सरकारका माथा ठनका। चिरजीवी लौर्ड कर्ज़नने अपने शासनमें इण्डियन युनिवर्सिटीज़ कमीशन (भारतीय विश्वविद्यालय जाँच समिति) लाए और सब विश्वविद्यालयोंको सरकारने हथिया लिए। पर सन् १९१७ ई० में कलकत्ता युनिवर्सिटी कमीशनका शुभागमन हुआ और ढाकामें शिक्षा विश्वविद्यालय स्थापित हो गया। शेष विश्वविद्यालय परीक्षा ही लेते रहे।

हाँ, तो मालवीयजीके मनमें प्रयागसे काशीतक गङ्गाजीके किनारे-किनारे एक ऐसा आश्रम बनानेकी धुन थी जहाँ भारतीय युवक अपने चरित्रका सुधार करें और विद्या सीखें। इनके मित्र बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा और सुन्दरलाल इनके सलाहकार थे। पण्डित सुन्दरलालके कहनेसे यह विचार बदल गया। प्रयागके पुराने निवासियोंमेंसे बहुतोंको वे दिन याद होंगे जब मालवीयजी और स्वर्गीय पण्डित सुन्दरलाल घोड़े-गाड़ीपर शामको घूमने निकलते थे और कभी-कभी बड़ी देरतक घूमते रहते थे। भावी विश्वविद्यालयका बहुतसा नक़्शा इसी सैर सपाटेमें बना था और देश तथा नगरकी न जाने कितनी समस्याएँ उसी समय सुलझाई गई थीं।

वह राष्ट्रीय शिक्षाका युग था। एक राष्ट्रीय शिक्षालयके लिये बनारसके रईस मुन्शी माधोलालने तीन लाख रुपया दान दिया था। दक्षिणमें सर्व श्री तिलक देशमुख, वैद्य तथा बीजापुरकरने 'समर्थ विद्यालय' स्थापित किया था। बहुतसे लोग राष्ट्रीय शिक्षाके लिये अपनी सेवाएँ दे रहे थे। बनारसमें स्थापित होनेवाले राष्ट्रीय शिक्षालयमें सेवा करनेके लिये बहुतसे लोग तैयार हो चुके थे पर कौन जानता था कि उस छोटेसे बीजमें इतनी बड़ी सृष्टि छिपी है। नाभाके राजाने सिक्ख जातिको अमृतसर ख़ालसा कौलेजका सुधार करनेके लिये आमन्त्रित किया। बङ्गालमें राँचीके नए कौलेजके लिये अच्छी रक़में दान की गईं। अलीगढ़ कौलेजके संरक्षक अपने कौलेजको गुरुकुल प्रणालीका विश्वविद्यालयमें परिणत करनेकी सोचने लगे। नवाबरामपुरकी सहायतासे बरेली कौलेजकी भी उन्नति हुई। महाराजा बलरामपुरने एक गुरुकुलकी तरहके नये शिक्षालयके स्थानके लिये तीन लाख रुपया दिया। सबसे अन्तमें उल्लेखनीय तातावैज्ञानिक अन्वेषण संस्था भी धीरे-धीरे अस्तित्वमें ही थी। केवल लौर्ड कर्ज़नके विधानके अनुसार सरकारी सहयोगसे विश्वविद्यालयों अथवा कौलेजोंमें उच्च शिक्षाके कार्य्यको प्रोत्साहन करना व लाभ पहुँचाना कादापि सम्भव न था।

सन् १९०४ ई० में पहले-पहल काशी नरेश हिज़ हाइनेस महाराजा सर प्रभुनारायण सिंहके सभा पतित्वमें मिण्ट हाउस काशीमें एक सभा हुई और पहले उसमें मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयका ब्यौरेवार प्रस्ताव रक्खा। उस सभामें बहुतसे ऐसे लोग थे जो उस प्रस्तावमें सफल होनेमें सन्देह करते थे, इनमें उभाके सभापति काशी नरेश स्वयं थे। इस बातको एक बार स्वयं उन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कौलेजमें भाषण देते हुए कहा भी था—"कि जब हमारे माननीय मित्र पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने—जिन्होंने इस पवित्र कार्य्यका सूत्रपात किया है, मुझसे पहले-पहल हिन्दू विश्वविद्यालयके स्थापित करनेके विचारको कहा, मुझे इस कार्य्यकी सफलतामें सन्देह था।" मनमें सन्देह करते हुए भी सभीने उस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। अब तो मालवीयजीको बड़ा उत्साह हुआ। नवम्बर, सन् १९०५ ई० में मालवीयजीने हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये फ़क़ीरी ले ली। संसारके कल्याणके लिये बुद्ध अपना राज्य और घर छोड़कर निकल पड़े उसी साल श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखलेकी अध्यक्षतामें दिसम्बरमें राष्ट्रीय महासभा होनेवाली थी। उससे पहले ही अक्तूबरमें 'प्रस्तावित विश्वविद्यालय' का विवरण छपवाकर भारतवर्षके राजा, महाराजा पण्डित, विद्वान् और नेताओंको भेजा गया। दिसम्बरमें काशीमें राष्ट्रीय महासभा हुई और उसी अवसरपर ३१ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को बरारके श्री वी० एन्० महाजनी एम्० ए० के सभापतित्वमें काशीके टाउनहौलमें एक बड़ी भारी सभा हुई। सब धर्म्मोंके प्रतिनिधि, देश भरके प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमियोंके सामने यह योजना रक्खी गई। यहाँ भी हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजनाका सबने स्वागत किया। पहली जनवरी सन् १९०६ ई० को वहीं कांग्रेसके पण्डालमें हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी घोषणा हुई।

अगले ही वर्ष सन् १९२६ ई० में २० से २९ जनवरी तक प्रयागमें परमहंस परिव्राजकाचार्य्य जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्य्यजीके सभापतित्वमें सुप्रसिद्ध साधुओं तथा विद्वानोंकी सनातनधर्म महासभामें यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया कि—

"१—भारतीय विश्वविद्यालयके नामसे काशीमें एक हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना की जाय, जिसके निम्नाङ्कित उद्देश हों—

(अ) श्रुतियों तथा स्मृतियों-द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्मके पोषक सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये धर्मके शिक्षक तैयार करना।

(आ) संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययनकी अभिवृद्धि।

(इ) भारतीय भाषाओं तथा संस्कृतके द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्पकला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रचारमें योग देना।

२—विश्वविद्यालयमें निम्नाङ्कित संस्थाएँ होंगी—

(अ) वैदिक विद्यालय—जहाँ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, इतिहास तथा पुराणोंकी शिक्षा दी जायगी। ज्यौतिष-विभागमें एक ज्यौतिष-सम्बन्धी तथा अन्तरिक्ष विद्या-सम्बन्धी वेधशाला भी निर्मित की जाय।

(अ) आयुर्वैदिक विद्यालय—जिसमें एक प्रयोगशाला हो तथा वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनके लिये

एक उद्यान भी हो। एक सर्वोत्कृष्ट चिकित्सालय तथा पशु-चिकित्सालयकी स्थापना की जाय।

(इ) स्थापत्यवेद व अर्थशास्त्र—जिसमें तीन विभाग होंगे (१) भौतिक शास्त्र-विभाग (२) प्रयोगों तथा अन्वेषणके लिये एक प्रयोगशाला और (३) मशीन तथा बिजलीका काम सीखनेवाले इञ्जिनियरोंकी शिक्षाके लिये यन्त्रालयकी स्थापना की जाय।

(इ) रसायन विभाग—जिसमें प्रयोगों और अन्वेषणोंके लिये प्रयोगशालाएँ तथा रासायनिक द्रव्योंके बनानेकी शिक्षाके लिये यन्त्रालय स्थापित किया जाय।

(उ) शिल्पकला विभाग—जिसमें मशीनद्वारा व्यवहारमें आनेवाली नित्यप्रतिकी वस्तुएँ तैयार की जाँय। इस विभागमें भूगर्भशास्त्र खनिज तथा धातुशास्त्रकी शिक्षा भी सम्मिलित रहेगी।

(ऊ) कृषि विद्यालय—जहाँ प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएँ कृषिशास्त्रके नवीन अनुभवोंके अनुसार दी जाय।

(ए) गन्धर्ववेद तथा अन्य ललित कलाओंका विद्यालय।

(ऐ) भाषा विद्यालय—जहाँ अंग्रेज़ी, जर्मन तथा अन्य विदेशी भाषाएँ इस उद्देश्यसे पढ़ाई जायँ कि उनकी सहायतासे भारतीय भाषाओंका साहित्य-भाण्डार नये रत्नोंसे परिपूर्ण हो तथा विज्ञानकलाके नवीन शोधों-द्वारा उनके विकासमें अभिवृद्धि हो।

३—(अ) इस विश्वविद्यालयका धर्म-सम्बन्धी कार्य्य तथा वैदिक कौलेज्का कार्य्य उन हिन्दुओंके अधिकारमें होगा जो श्रुति, स्मृति तथा पुराणों-द्वारा प्रतिपादित सनातनधर्मके सिद्धान्तोंके माननेवाले होंगे।

(आ) इस विश्वविद्यालयमें वर्णाश्रमधर्मके नियमानुसार ही प्रवेश होगा।

(इ) इस विद्यालयके अतिरिक्त अन्य सब विद्यालयोंमें सब धर्मावलम्बियों तथा सब जातियोंका प्रवेश हो सकेगा तथा संस्कृत भाषाके अन्य शाखाओंकी शिक्षा बिना जाति-पाँतिका भेदभाव किए सबको दी जायगी।

४—(अ) निम्नाङ्कित सज्जनोंकी एक समिति बनाई जाय जिन्हें अपने सदस्योंकी संख्या बढ़ानेका अधिकार हो, जो इस विश्वविद्यालयकी आयोजनाको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिये आवश्यक उपाय काममें लावें, जिसके मन्त्री माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय हों।

(आ) बनारस टाउन हौलकी सभामें जो समिति नियुक्ति हुई थी उसके सदस्योंसे प्रार्थना की जाय कि वे समितिके भी सदस्य हो जायँ।

५—(अ) विश्वविद्यालयके लिये एकत्र किया हुआ समस्त धन काशीके माननीय मुन्शी माधोलालके पास भेजा जाय जो उसे "बैङ्क ऑफ़ बङ्गाल, बनारस" में जमा कर दें, जबतक कि उपर्युक्त समिति इस सम्बन्धमें कोई और आज्ञा न दे।

(आ) इस विश्वविद्यालयके लिये आए हुए रूपयोंमेंसे तबतक कुछ भी धन व्यय न किया जाय जबतक कि विश्वविद्यालय समिति एक सङ्गठित संस्थाकी तरह रजिस्टर्ड न हो जाय और जबतक इसके नियम निश्चित न हो जाँय तबतक इसका व्यय सनातनधर्म महासभाके लिये आए हुए धनमेंसे होना चाहिए।"

यह सोचा गया है विश्वविद्यालयका शिलारोपण तीस लाख रुपया एकत्र हो जानेपर अथवा एक लाख रुपया वार्षिक सहायताका वचन मिल जानेपर हो जायगा।

इन प्रस्तावोंको पढ़कर यह तो पता चल ही सकता है कि यह केवल बी० ए०, एम्० ए० की पढ़ाईके लिये विश्वविद्यालयकी योजना नहीं हुई थी बल्कि उसका उद्देश्य यह था—जहाँ एक विद्यार्थी शिल्पकला और यन्त्रकला सीखता हो वहाँ वह मशीनको ही सर्वशक्तिमान् न समझ बैठे बल्कि मनुष्योंके भाग्यका शासन करनेवाले उस परमात्माका भी स्मरण करे। और मन, वचन तथा कर्मसे आदर्श हिन्दू बन जाय। पर उन्होंने व्यावहारिक और विशेषतया औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शिक्षापर तो और महत्त्वपूर्ण स्थान दिया

था। पण्डितजीके शब्दोंमें यह बात और स्पष्ट हो जाती है "रसायन तथा भौतिक शास्त्रमें योरोप तथा अमेरिकाने पिछले पचत्तर वर्षोंसे जो उन्नतिकी है तथा उनकी (विज्ञानकी) सहायतासे धनोपार्जन करनेके साधनोंमें जो उन्नति हुई है विशेषतया जो भाप तथा विद्युत्की सहायतासे औद्योगिक वस्तु तैयार करने तथा एञ्जिन चलानेके कारण हुई है उसे देखते हुए भारतवर्ष उन देशोंसे बहुत पीछे रह गया है, जहाँ प्रयोगों द्वारा विज्ञानका अध्ययन सामाजिक हित और सेवाके लिये होता है।"

यह प्रस्ताव पास हो गया पर अचानक सन् १९०५ ई० में ही भारतमें एक भूकम्प आया—उसने काँगड़ाको ही नहीं हिलाया बल्कि देशकी आन्तरिक शान्ति भङ्ग कर दी। भारतमाताके बाएँ हाथके दो टुकड़े कर दिए। बेचारी भूखी, दुर्बल, अनाथ और पराधीन माता एक बार तड़प उठी। दीनकी आहसे भगवान्की योगनिद्रा भी खुल जाती है। बस वही हुआ। एक बार देशमें ऐसी लहर उठी जैसे साँपके काटनेपर उठा करती है। सन् १९०७ ई० का मनहूस साल आया और अपने साथ बहुतसा तूफ़ान ले आया। उसका ज़िक्र आगे होगा। बस इतना ही कहना बहुत होगा कि हिन्दू विश्वविद्यालयके कई पक्षपाती हिन्दुस्थानसे बाहर कर दिए गए या जेलमें ठूँस दिए गए। राजनीतिक बवण्डरमें हिन्दू विश्वविद्यालयका नाम भुला दिया गया।

इधर श्रीमती एनी बेसेण्टके सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज्का बड़ा नाम हो रहा था। बड़े-बड़े त्यागी विद्वान् सेवा-भावसे वहाँ आकर पढ़ा रहे थे। श्रीमती एनी बेसेण्ट हिन्दूधर्म और संस्कृतिकी बड़ी पक्षपातिनी थीं और उन्होंने धर्मपर बहुतसी पुस्तकें भी लिखीं। धीरे-धीरे उन्होंने उस हिन्दू कौलेज्को 'युनिवर्सिटी' बनानेका विचार किया, जिसके अन्तर्गत देशके बहुतसे कौलेज् रहें और सब जगह यहाँकी परीक्षाका केन्द्र रहे। सन् १९०७ ई० में उन्होंने 'युनिवर्सिटी ऑफ़ इण्डिया' स्थापित करनेके लिये एक प्रार्थनापत्र कई प्रभावशाली भारतवासियोंके हस्ताक्षर कराकर भारत-सरकारके पास 'रौयल चार्टर' के लिये भेज दिया। इधर सनातनधर्म महामण्डलने भी दरभङ्गा-नरेश स्वर्गीय माननीय महाराजा सर रामेश्वरसिंह बहादुर के० सी० आई० ई० के नेतृत्वमें एक विश्वविद्यालय स्थापित करनेका प्रस्ताव किया। ये तीनों धाराएँ अलग-अलग बहती रहीं पर तीनों भगवान् विश्वनाथजीकी जटाओंमें ही रहना चाहती थीं।

सन् १९११ ई०के अक्तूबर महीनेमें माननीय महाराजा रामेश्वरसिंह बहादुर दरभङ्गानरेशने अपने विश्वविद्यालयकी योजनाको भी हिन्दू विश्वविद्यालयसे मिला दिया और ये दोनों महानुभाव इस सम्बन्धमें लौर्ड हार्डिञ्जसे मिले। उन्होंने उसे बहुत पसन्द किया और भारत-सरकारसे पूरी सहायताका वचन दिलाया।

बहुत दिनोंतक मालवीयजी और एनी बेसेण्टके पत्र व्यवहार होते रहे, पर अप्रैल सन् १९११ ई० में श्रीमती एनी बेसेण्ट प्रयागमें मालवीयजीसे मिलीं और ये तीनों धाराएँ एक हो गईं।

हिन्दू कौलेज्के ट्रस्टियोंमें इन्हीं दिनों 'कृष्ण-मूर्त्ति' का बखेड़ा खड़ा हो गया था। हिन्दू विश्वविद्यालयकी चर्चा उठकर फिर बैठ चुकी थी। इसी बीच सन् १९०९ ई० में अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी बननेकी बात पक्कीसी हो गई—

'हम इधर बैठे रहे अग़यार बाज़ी ले गए'।

हिन्दू विश्वविद्यालयकी भनक फिर कानोंमें पड़नी शुरू हुई। मालवीयजी उसका नया स्वरूप लेकर फिर प्रकट हुए। उन्होंने पण्डित सुन्दरलालजीको मन्त्री बनानेकी बड़ी कोशिश की पर सब बेकार हुई, क्योंकि पण्डित सुन्दरलाल नक्षत्रकी गति देखकर चलना चाहते थे। सैर मण्डलसे अलग होकर धूम्रकेतु बनकर चलनेका साहस होते हुए भी वे अपनी कक्षा नहीं छोड़ना चाहते थे। तब मालवीयजीने अपने पैरोंका

सहारा लिया और लक्ष्मीपतियोंके विशाल नगर कलकत्तेमें जा पहुँचे।

प्रयागके इस धवल ब्राह्मणकी एक हाँकपर कलकत्तेकी लक्ष्मी दोनो हाथोंमें सोनेका कलश लेकर आई और जिस झोलीमें यह ब्राह्मण अपने देशकी करुण कथा सुनाकर आँसू बरसा रहा था उसमें उसने सोना उड़ेलना शुरू किया। इन्हीं दिनों उस समयके बड़े लाटके शिक्षामन्त्री श्री हारकोर्ट बटलर मालवीयजीसे मिले और बातचीतके सिलसिलेमें साफ़ कह दिया कि "यदि इस संस्थामें मातृभाषा-द्वारा पढ़ानेकी व्यवस्था रही तो उसमें सरकारसे आप कोई आशा न रखिएगा।" उन्होंने यह भी जतला दिया कि "जिस समयतक आप अंग्रेज़ीमें लिखते, बोलते, पढ़ते, पढ़ाते हैं तबतक तो हमें शान्ति रहती है, क्योंकि उस समयतक हम आपकी सब बातों और चालोंको भली भाँति समझ सकते हैं और उसे सँभाल सकते हैं, पर जिस समय आप अपनी भाषामें काम करना आरम्भ कर देते हैं तब उसका समझना हमारे लिये कठिन हो जाता है। इसलिये मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी अनुमति सरकारसे किसी हालतमें नहीं मिल सकती।" मालवीयजी बटलर साहबका इशारा ताड़ गए और मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेकी बात उस समय पी गए।

इन्हीं दिनों श्रीमती एनी बेसेण्टके भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वविद्यालयके सम्बन्धमें कलकत्तेमें हुए। इसीके बाद एक सार्वजनिक सभामें हिन्दू विश्वविद्यालयकी घोषणा की गई। कलकत्तेमें जो आर्थिक सहायताका वचन मिला था वह प्रकट किया गया और प्रायः पाँच लाखका वचन मिला और बहुतसा रुपया नक़द भी मिला। मालवीयजीके साथ उनके लँगोटिया यार स्वर्गवासी बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा, स्वर्गवासी पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र, मुन्शी ईश्वरशरण और बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी हो लिए। हिन्दू विश्वविद्यालयकी मथानी लेकर इन लोगोंने देशको मथना शुरू कर दिया। इस यात्रामें बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुईं।

मुज़फ़्फ़रपुरमें एक भिक्षा माँगनेवाली भङ्गिनने अपने दिन भरकी कमाई, इस यज्ञ-वेदीपर समर्पण कर दी। इसी तरह एक व्यक्तिने बदनपरकी एक फटी कमीज़, उतारकर प्रदान कर दी। इन चीज़ोंके नीलाम करनेपर सैकड़ों रुपये मिले थे और ये वस्तुएँ भी विश्वविद्यालयको वापस कर दी गई थीं कि ये उसके संग्रहालयमें विवरणके साथ सुरक्षित रक्खी जावें। यहीं मुज़फ़्फ़रपुरमें एक बङ्गाली महोदयने शायद पाँच हज़ार रुपया दान किया था और फिर उनके घरपर जानेपर उनकी पत्नीने अपना बहुमूल्य सोनेका कङ्कन मालवीयजीको भेंट दिया जिसे उनके पतिने उसके दूनेसे अधिक मूल्य देकर ले लिया और पत्नीको फिर वापस दे दिया और जिसे उनकी पत्नीने संग्रहालयमें रखनेके लिये पुनः मालवीयजीको दे दिया। यहीं मुज़फ़्फ़रपुरकी एक घटना और उल्लेखनीय है। रात्रि हो चली थी, सभामें धन एकत्र हो चुका था, एक ओर उनकी गिनती हो रही थी, दूसरी ओर छोटी-छोटी चीज़ें नीलाम हो रही थीं, रोशनी ज़रा धीमी थी कि एक उचक्का हज़ार-हज़ारकी दो थैलियाँ उठाकर चल दिया। पीछे दौड़ हुई पर यह जा वह जा नाले और झाड़ियोंमें होकर वह ग़ायब ही हो गया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि विश्वविद्यालयकी दुन्दुभी बजाते हुए मालवीयजी और उनके साथी कलकत्तेसे लाहौर पहुँच गए थे। बीस, पचीस लाखका वचन मिल चुका था। हिन्दू विश्वविद्यालयका आन्दोलन ब्रह्मपुत्रकी बाढ़के समान समुद्रकी ओर वेगसे बह रहा था। उसके आगेका पथ रोकना असम्भव हो चुका था। शिमलेसे मालवीयजीके लिये बुलावा आया, मालवीयजी शिमला पहुँचे। परलोकवासी राजा हरनाम सिंहजीकी कोठीमें वे ठहराए गए। मालवीयजी उस समयके वाइसराय लौर्ड हार्डिञ्जसे मिलने गए और वहाँसे बड़े प्रसन्न लौटे और बाबू

शिवप्रसाद गुप्तको बुलाकर कहा कि वाइसरायने विश्वविद्यालयको अपनानेका वचन दे दिया है। गुप्तजी सन्न रह गये और उनके मुँहसे हठात् निकल पड़ा कि 'दिस इज़ दि डेथ्-नैल् ऑफ़ दि हिन्दू युनिवर्सिटी' अर्थात् यह तो हिन्दू विश्वविद्यालयकी मृत्यु-घोषणा है। ये लोग ऊपरसे उतरकर फिर लाहौर वापस आए। लाहौरकी विशाल सभामें पञ्जाबकेशरी परलोकवासी लाला लाजपतरायने कहा कि, "चार्टर और नो चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट ऐग्ज़िस्ट" चार्टर मिले या न मिले हिन्दू युनिवर्सिटी अवश्य रहेगी।" जिसके उत्तरमें मालवीयजीने कहा कि, "चार्टर ऐण्ड चार्टर, हिन्दू युनिवर्सिटी मस्ट एग्ज़िस्ट" चार्टर मिलेगा, फिर मिलेगा और हिन्दू-युनिवर्सिटी बनेगी।" लाहौरसे यह दल मेरठ पहुँचा वहाँ बड़े समारोहसे सभा हुई। बारह घण्टेतकका लम्बा जलूस निकला, परलोकवासी महाराजा दरभङ्गा भी उसीमें शामिल हुए और सभापति बनना स्वीकार किया और पाँच लाखका दान भी दिया। इसीके पहले पण्डित सुन्दरलालजीने भी श्री हारकोर्ट बटलरके कहनेपर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था।

मालवीयजी त्रिवेणी बन गए, हिन्दू विश्वविद्यालय पर्व बन गया और सारे देशने जी खोलकर इस पर्वपर सोना लुटाया। जहाँ-जहाँ डेपुटेशन जाता था वहाँ-वहाँ कई स्टेशन पहलेसे ही स्वागत प्रारम्भ हो जाता था, रेलवे पटरियोंपर पटाखे रख दिए जाते। गाड़ी पहुँचते-पहुँचते आवाज़ें दगने लगतीं। लोग चिल्ला उठते—हिन्दू धर्मकी जय, मालवीयजीकी जय। हाथियोंपर सवारियाँ निकलती, बड़े-बड़े विशाल जलूस निकलते—वही-वही मालवीयजी हैं, सफ़ेद साफ़ेवाले, वही जो मुस्कुराकर हाथ जोड़े खड़े हैं। वह देखो महाराज दरभङ्गा हैं। पीछे वह देखो व्याख्यान वाचस्पतिजी पगड़ी बाँधे खड़े हैं, आगेवाले पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र हैं। ये देशी साड़ी पहने अंग्रेज़ औरत—अरे यही एनी बेसेण्ट हैं। लोग इन महापुरुषोंको कितनी उत्सुकतासे देखते थे। पेड़ोंपर चढ़कर, मकानोंकी छतोंसे, खिड़कियोंके सींखचोंसे लटककर केवल इनके दर्शनके लिये लोग अपने प्राण सङ्कटमें डालकर भीड़के धक्के खाते हुए भी उमड़े पड़ते थे। फ़ैज़ाबाद, जौनपुर, बाँकीपुर, गोरखपुर, कानपुर, छपरा, लखनऊ, कलकत्ता, फ़रीदपुर, मालदा, रावलपिण्डी, लाहौर, अमृतसर, मुज़फ़्फ़रनगर, मेरठ, बरेली, सहारनपुर, मुरादाबाद, उन्नाव, सीतापुर, इटावा, बहराइच, बनारस, आगरा, अजमेर, उदयपुर, नैनीताल, अलमोड़ा, काश्मीर, अम्बाला, शिमला, रायबरेली, इन्दौर, कोटा, अलवर, बीकानेर, गया, बम्बई—भारत भरमें यह दल घूमा। महाराज बीकानेर सर गङ्गासिंहजी बहादुर जी० सी० एस्० आई० भी बहुत जगह साथ रहे। उस समय देशभरमें एक ही आन्दोलन था, एक ही शोर था—बस हिन्दू विश्वविद्यालय। ३ सितम्बर सन् १९११ ई० की बात है, यह दल लखनऊ पहुँचा। बड़ा भारी जल्सा हुआ। मालवीयजीका व्याख्यान होनेसे पहले चकबस्त साहबने एक क़ौमी मुसद्दस सुनाया। लोग फड़क उठे। सिली हुई थैलियाँ भी अपने आप खुल गईं और बरस पड़ीं। क्या जादू था उस कवितामें। हिन्दू विश्वविद्यालयका इतिहास इसके बिना अधूरा ही समझिए।

सुनिए—

क़ौमी मुसद्दस (जातीय षट्पदी)

(हिन्दू विश्वविद्यालय)

इलाही कौन फ़रिश्ते[1] हैं ये गदाए वतन[2]।
सफ़ाए क़ल्ब[3] से जिनके ये बज़्म[4] है रौशन॥
झुकी हुई है सबोंकी लिहाज़से गर्दन।
हर इक ज़बाँ पै है ताज़ीम[5] औ अदब के सख़ुन[6]।
सफ़ें[7] खड़ी हैं ज़बानोंकी और पीरों[8]की।
ख़ुदाकी शान यह फेरी है किन फ़क़ीरोंकी॥

१ देवता। २ स्वदेशके फ़क़ीर। ३ हृदयकी उज्ज्वलता। ४ सभा। ५ प्रतिष्ठा। ६ वाक्य। ७ पंक्तियाँ। ८ वृद्ध।

फ़क़ीर इल्मके हैं इनकी दास्ताँ[1] सुन लो।
पयाम क़ौम[2]का दुख-दर्दका बयाँ सुन लो।
यह दिन वो दिन है जो है यादगार हाँ सुन लो।
है आज ग़ैरते क़ौमी[3]का इम्तहाँ सुन लो॥
यही है वक़्त अमीरोंकी पेशवाई[4]का।
फ़क़ीर आए हैं कासा[5] लिए गदाई[6] का।
जो अपने वास्ते माँगें ये वो फ़क़ीर नहीं।
तमअ[7] में दौलते दुनियाकी ये असीर[8] नहीं॥
अमीर दिलके हैं ज़ाहिरके ये अमीर नहीं।
वह आदमी नहीं जो इनका दस्तगीर[9] नहीं।
तमाम दौलते ज़ाती[10] लुटाके बैठे हैं।
तुम्हारे वास्ते धूनी रमाके बैठे हैं॥
सवाल इनका है तालीमका बने मन्दिर।
कलश हो जिसका हिमालासे औज[11]में बरतर[12]।
इसी उमीद पै ये घूमते हैं शामोसहर[13]।
सदा[14] लगाते हैं राहे खुदामें यह कहकर॥
"वह खुदग़रज़ हैं जो दौलत पै जान देते हैं।
वही हैं मर्द जो विद्याका दान देते हैं॥"
सवाल रद न हो इनका ये शर्त है तदबीर।
इसीसे पायँगे ईमान आबरू तौक़ीर[15]॥
यह है तरक्क़िए[16] क़ौमीके वास्ते अक्सीर।
बहें उलूम[17]की गङ्गा पिएँ ग़रीब-अमीर॥
बक़ारे क़ौम[18] बढ़े दूर बेज़री[19] हो जाय।
उजड़ गई है जो खेती वह फिर हरी हो जाय॥
जो हो रहा है ज़मानेमें है तुम्हें मालूम।
कि हो गए हैं गराँ[20] किस क़दर फ़िनून उलूम[21]॥
तुम्हारी क़ौमसे दौलत हुई है यों मादूम[22]।
कि अब तरसते हैं पढ़नेको सैकड़ों मासूम[23]॥
वह खुद तरसते हैं, माँ-बाप उनके रोते हैं।
तुम्हारी क़ौमके बच्चे तबाह होते हैं॥
ये बेगुनाह उसी क़ौमके हैं लख़्ते-जिगर[24]।
कि जिसने तुमको भी पाला है सूरते मादर[25]॥
जिगर पै क़ौमके इफ़्लास[26]का चले ख़ञ्जर।
ग़ज़ब खुदाका तुम्हारे दिलों पै हो न असर॥
उसीसे बेख़बरी जिसके दमसे जीते हो।
उसे रुलाते हो जिस माँका दूध पीते हो॥
यह क़हत[27] क्या है, यह ताऊन क्या है, क्या है वबा[28]।
तुम्हारी क़ौम पै नाज़िल[29] हुआ है क़हरे खुदा[30]॥
जो राहेरास्त[31]से होती है कोई क़ौम जुदा।
इसी तरह उसे मिलती है एक रोज़ सज़ा॥
इसी तरहसे हवा क़ौमकी बिगड़ती है।
इसी तरहसे ग़रीबोंकी आह पड़ती है॥
गुनाह क़ौमके धुल जायँ अब वह काम करो।
मिटे कलङ्कका टीका वह फ़ैज़ आम[32] करो॥
किफ़ा[33] को जहल[34]को बस दूरसे सलाम करो।
कुछ अपनी क़ौमके बच्चोंका इन्तज़ाम करो॥
यह काम होके रहे चाहे जाँ रहे न रहे।
ज़मीं रहे न रहे आसमाँ रहे न रहे॥
ये कारे ख़ैर[35]में कोशिश यह क़ौमका दरबार।
लगा दो आज तो चाँदीके हर तरफ अम्बार[36]॥
ये सब कहें कि है ज़िन्दा ये क़ौम ग़ैरतदार[37]।
है इसके दिलमें बुज़ुर्गोंकी आबरूका बक़ार[38]॥
सरोंमें हुब्बे वतन[39]का जुनून[40] बाक़ी है।
रगोंमें भीषमो अर्जुनका ख़ून बाक़ी है॥
मिसेज़ बिसेण्टके अहसानकी तुम्हें है ख़बर।
किया निसार[41] बुढ़ापा तुम्हारे बच्चोंपर॥
शरीक़ वो भी हैं इस कार ख़ैरके अन्दर।
न आँख उनकी हो नीची रहे ये मद्दे नज़र॥
मिटे न बात कहीं तुमपै मिटनेवालोंकी।
तुम्हारे हाथ है शर्म उन सफ़ेद बालोंकी॥

१ कहानी। २ सन्देश। ३ जातीय लाज। ४ स्वागत। ५ प्याला। ६ फ़क़ीरी। ७ लालच। ८ क़ैद। ९ सहायक। १० निजी सम्पत्ति। ११ ऊँचाई। १२ बढ़कर। १३ सुबह। १४ आवाज। १५ इज्जत। १६ जातीय उन्नति। १७ विद्या। १८ जातीय प्रतिष्ठा। १९ निर्धनता। २० महँगे। २१ कला-कौशल। २२ मिट गई। २३ बालक। २४ कलेजेके टुकड़े। २५ माताकी तरह। २६ ग़रीबी। २७ दुर्भिक्ष। २८ आफ़त। २९ गिरों। ३० ईश्वरीय कोप। ३१ सच्ची राह। ३२ व्यापक दान। ३३ द्वेष। ३४ मूर्खता। ३५ नेक काम। ३६ ढेर। ३७ लज्जावान। ३८ प्रतिष्ठा। ३९ स्वदेश-प्रेम। ४० उन्माद। ४१ निछावर।

तुम्हारे वास्ते लाज़िम है मालवीका भी पास[1]।
कि जिसकी ज़ातसे अटकी हुई है क़ौमकी आस॥
लिया ग़रीबने घर बार छोड़कर बनवास।
जो यह नहीं है तो कहते हैं फिर किसे संन्यास॥
तमाम उम्र कटी एक ही क़रीने[2]पर।
गिराया अपना लहू क़ौमके पसीनेपर॥
इसीके हाथमें है क़ौमका सँवर जाना।
तुम्हारी डूबती क़श्ती[3]का फिर उभर जाना॥
जो तुमने अब भी न दुनियामें काम कर जाना।
तो यह समझ लो कि बेहतर है इससे मर जाना॥
ग़ज़ब हुआ जो दिल इसका भी तुमसे ऊब गया।
गिरा इस आँखसे आँसू तो नाम डूब गया॥
घटाएँ जहल[4]की छाई हुई हैं तीर-ओ तार[5]।
यह आरज़ू है कि तालीमसे हो बेड़ा पार॥
मगर जो ख़्वाबसे अब भी न तुम हुए बेदार[6]।
तो जान लो कि है इस क़ौमकी चिता तैयार॥
मिटेगा दीन भी और आबरू भी जाएगी।
तुम्हारे नामसे दुनियाको शर्म आएगी॥
जो इस तरह हुआ दुनियामें आबरूका ज़वाल[7]।
तो काम आयगा उक़्बा[8]में क्या यह दौलतोमाल।
करो खुदाके लिये कुछ मरे हुएका ख़याल।
न हों तुम्हारे बुज़ुर्गोंकी हड्डियाँ पामाल[9]॥
यह आबरू तो हज़ारों बरसमें पाई है।
न यों लुटाओ कि ऋषियोंकी यह कमाई है॥
लुटाओ नामपै दौलत अगर हो ग़ैरतदार[10]।
पुकार उठे ये ज़माना कि है यह परउपकार॥
है ज़ोर हिम्मते मर्दाना[11] क़ौमको दरकार।
बरक़ उलट दो ज़मानेका मिलके सब इक बार॥
अगर हो मर्द न यों उम्र रायगाँ[12] काटो।
ग़रीब क़ौमके पैरोंकी बेड़ियाँ काटो॥
यह कारे ख़ैर वो हो नाम चारसू[13] रह जाय।
तुम्हारी बात ज़मानेके रूबरू रह जाय॥
जो ग़ैर हैं उन्हें हँसनेकी आरज़ू[14] रह जाय।
ग़रीब क़ौमकी दुनियामें आबरू रह जाय।
ज़रा हमैयतो ग़ैरत[15] का हक़ अदा कर लो।
फ़क़ीर क़ौमके आए हैं झोलियाँ भर दो॥
यहाँसे जायँ तो जाएँ यह झोलियाँ भरकर।
लुटाएँ इल्मकी दौलत तुम्हारे बच्चोंपर॥
इधर हो नाज़ यह तुमको कि खुश गए ये बशर[16]।
जो हो सका वह किया नज़्र इनके टेकके सर॥
यही हो फ़ख़्र[17] जवानोंका और पीरों[18]का।
सवाल रद न किया क़ौमके फ़क़ीरोंका॥

मालवीयजीकी जीभ सरस्वती बनी हुई थी। उनकी वाणीपर कितनी स्त्रियोंने अपने आभूषण न्यौछावर किए, कितने लोगोंने अपनी दिन भरकी कमाई लुटा दी। हिन्दू और मुसलमान सभी इस यज्ञमें भाग ले रहे थे। मुरादाबादमें मालवीयजीके व्याख्यानके बाद एक मुसलमान सज्जन आँखोंमें आँसू और हाथमें पाँच रुपये लिए हुए खड़े हुए, और ले जाकर मालवीयजीके चरणोंपर रख दिए और कहा, "मैं बहुत ग़रीब आदमी हूँ, तब भी इस नेक काममें मैं पाँच रुपए देता हूँ।" इस सच्चे मुसलमानके इस दानसे सबकी आँखें डबडबा आईं। मालवीयजीने किस धुनसे रुपया इकट्ठा किया वह भी एक कहानी है। एक बार मालवीयजी देहरादून गए हुए थे और लाला उग्रसेनके घर ठहरे। वहाँके मुसलमान तहसीलदार मालवीयजीसे मिलने आए। मालवीयजीने उनसे भी हिन्दू विश्वविद्यालयके लिये सवाल किया और उनसे चन्दा लेकर ही उनको छुट्टी दी।

मालवीयजी और पण्डित सुन्दरलाल दोनों एक दूसरेकी कमी पूरी करते थे। मालवीयजी ब्राह्मणकी भाँति झोली पसारते थे पर सुन्दरलालजी ज़मीन्दारकी तरह वसूल करते थे। वचन दिए हुए रुपएको इकट्ठा करनेमें उन्होंने कमालका काम किया। सर सुन्दरलालने एक लाख रुपया स्वयं विश्वविद्यालयको दिया और पहले वाइस चान्सलर भी बने। उनके

१ ख़याल। २ ढङ्ग। ३ नाव। ४ नादानी। ५ अन्धेरी। ६ जागृत। ७ अवनति। ८ परलोक। ९ बरबाद। १० लज्जावान। ११ मानुषिक-साहस। १२ व्यर्थ। १३ चारों ओर। १४ कामना। १५ शिष्टता और लज्जा। १६ आदमी। १७ गर्व। १८ शकुन।

भाई पण्डित बलदेवराम दवे भी मालवीयजीके साथ-साथ काम करते रहे।

इस भिखारीकी झोलीमें सारे भारतने एक करोड़ रुपयेकी भीख डाल दी और इसे 'भिखारी-सम्राट्' की उपाधि भी दे दी। यह कला इनसे गान्धीजीने भी सीखी और उन्होंने कहा भी है कि भीख माँगना मैंने अपने बड़े भाई मालवीयजीसे सीखा है। मालवीयजीके इस आत्मत्याग और परिश्रमको देखकर ही श्रीमती एनी बेसेण्टने ३१ जनवरी सन् १९१२ ई० को काशीमें व्याख्यान देते समय कहा था कि "आपने अपना सांसारिक जीवन, अपनी सब शक्ति, अपनी विलक्षण वाणी, क्या कहा जाय—अपना समस्त जीवन और स्वास्थ्यतक इस महत् कार्य्य (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) में लगा दिया है।

महाराजा मैसूर, महाराजा कश्मीर, महाराजा ग्वालियर, महाराजा इन्दौर, हिन्दूपति महाराणा उदयपुर, हिज़ हाइनेस महाराजा सर गङ्गा सिंहजी बहादुर, जी० सी० एस० आई० बीकानेर नरेश, महाराजा कोटा, महाराजा सर प्रताप सिंह बहादुर, जोधपुर, दरबार, महाराजा अलवर, महाराजा नाभा, महाराजा क़ासिम बाज़ार, महाराजा बनारस, महाराजा बलरामपुर इत्यादि हिन्दू राजाओंने हिन्दू विश्वविद्यालयके कार्य्यसे सहानुभूति प्रकट की और उसके लिये अपना समय और धन दिया। बङ्गालके नेताओंमें बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, बाबू अम्बिकाचरण मजुमदार, बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु, डाक्टर सर राशबिहारी घोष, स्वर्गीय सर गुरुदास बैनर्जी, डाक्टर सर्वाधिकारी, पञ्जाबमें लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, पण्डित दीनदयालु, लाला हरिकिशन लाल, राय रामशरणदास, रामगोपालदास भण्डारी बहादुर, बम्बईमें सर भालचन्द्र कृष्ण, सर नारायन चन्दावरकर, हिज़ हाइनेस आगाख़ाँ, सर विट्ठलदास थैकरसी, नरोत्तमदास मूरजी गोकुलदास; बिहारमें माननीय कृष्णसहाय, माननीय सच्चिदानन्द सिंह, माननीय हसन इमाम, मध्यप्रदेशमें राजा वल्लभदास और संयुक्तप्रान्तमें डाक्टर सर सुन्दरलाल, डाक्टर तेजबहादुर सप्रू, पण्डित मोतीलाल, राजा मोतीचन्द, राना शिवराना सिंह खजूरगाँव, राजा सूर्य्यबख्श सिंहजी कसमण्डा नरेश, राजा रामपाल सिंहजी, राजा प्रतापबहादुर सिंहजी, राजा माँडा, इत्यादि सब हिन्दू जातिके हितैषियोंने हिन्दू विश्वविद्यालयको अपना समय और धन देकर हिन्दू जातिके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

एक करोड़ रुपया एकत्र हो गया। सन् १९११ ई० में हिन्दू युनिवर्सिटी सोसाइटीकी रजिष्ट्री हो ही चुकी थी, इसके एक वर्ष बाद ही भारत-मन्त्रीने लौर्ड हार्डिञ्जकी सलाहसे 'गुरुकुल प्रणाली विश्वविद्यालय' स्थापित करनेकी मञ्जूरी दे दी। पहली अक्तूबर सन् १९१५ ई० को 'हिन्दू विश्वविद्यालय बिल' पेश हुआ और स्वीकृत हो गया। श्रीमती एनी बेसेण्टने और सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़के ट्रस्टियोंने बड़ी उदारताके साथ सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़को हिन्दू विश्वविद्यालयके हाथों सौंप दिया। यह हिन्दू विश्वविद्यालयका बीज समझिए।

"हिन्दू विश्वविद्यालयका शिलारोपण महोत्सव"

निदान ४ फ़रवरी सन् १९१६ ई० को १२ बजे वसन्त पञ्चमीके दिन काशीमें, विशेष समारोह हुआ। सम्राट्के प्रतिनिधि श्रीमान् लौर्ड हार्डिञ्ज, बङ्गालके गवर्नर, तथा बिहार-उड़ीसा, युक्तप्रान्त और पञ्जाबके लेफ़्टिनेण्ट-गवर्नर पधारे। काश्मीर, जम्बू, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, झालावाड़, डूँगरपुर, ईदर, कोटा, किशनगढ़, काशी और सुहावल इत्यादिके महाराजागण तथा बलरामपुर, डुमराँव, बस्ती इत्यादिके राजाओंने भी पधारकर पण्डालकी शोभा बढ़ाई थी। सर गुरुदास बैनर्जी, डाक्टर राशबिहारी घोष, सर प्रभाशङ्कर पट्टनी, बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, दीवान-बहादुर गोविन्दराघव ऐयर, सरदार दलजीतसिंह इत्यादि प्रभावशाली महानुभाव तथा कितने ही अन्य भारत-रत्न, महामहोपाध्याय, धर्म-धुरीण आचार्य्य—

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई—देश-सेवक स्कूलों और कौलेजोंके चुने हुए छात्रगण भी इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। रङ्गबिरङ्गे वस्त्राभूषणोंसे सजकर ये सब लोग वहाँ एक ही उद्देश्य लेकर जमा हुए थे। शायद सन् १९११ ई० के दरबारको छोड़कर बृटिश भारतमें ऐसा दृश्य कभी न दिखाई दिया होगा।

मि० लैम्बर्ट कलेक्टर तथा राय छोटेलाल साहब इञ्जिनियरने मालवीयजीकी इच्छाके अनुसार मण्डप बनाया था। जिन आँखोंने देखा उन्होंने ज़बानको गूँगा बना दिया, वर्णन क्या ख़ाक करें। पतित-पावनी गङ्गाजीके बाएँ किनारे, श्रीमान् काशी-नरेशके रामनगरके क़िलेके ठीक सामने गोल मण्डप बनाया गया था। चबूतरे धनुषाकार थे। चारों ओर रङ्ग-बिरङ्गी मालाओं, फूलपत्तियों, झण्डियों और परदों इत्यादिसे वह सजाया गया था। श्रीमान् वाइसरायके आसनके नीचे खण्डोंमें बहुमूल्य क़ालीन और गद्दे बिछे हुए थे। उनके ऊपर सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ रक्खी थीं। मण्डपकी शोभा स्थानकी सुरम्यतासे और भी बढ़ गई थी। मण्डपके भीतर दक्षिणी भागके बीचमें, श्रीमान् वायसरायका आसन उत्तर मुँह बैठनेके लिये बनाया गया था। आसनके दाहिनी ओर तीन खण्ड थे। उनमें तीन सौ मनुष्योंके बैठनेका स्थान था। बाईं ओरके चार खण्डोंमें चार सौ आदमियोंके बैठनेका स्थान था। श्रीमान् वायसरायके आसनके ठीक सामने मण्डपके बीचों-बीच एक ऊँची वेदीपर नींव रखनेका पत्थर एक दृढ़ जंज़ीरसे लटक रहा था।

उसके आगे, उत्तर ओर, तीन खण्डोंमें बैठनेके सात सौ चौवालीस स्थान थे। उनके ऊपर पाँच और खण्ड थे। उनमें बैठनेके चार हज़ार एक सौ छिहत्तर स्थान थे। प्रथमके ग्यारह खण्डोंतक तो कुर्सियोंका प्रबन्ध था और शेष पाँच खण्डोंमें चापाकार बेञ्च बनाए गए थे। मण्डपके बाहर चारों ओर, स्थान-स्थानपर, विशाल तम्बू खड़े थे। उनमें, भिन्न-भिन्न खण्डोंमें बैठनेवाले महानुभावोंके सुभीते और आरामकी ओर ध्यान रखकर, सब प्रकारके ज़रूरी सामान रक्खे हुए थे। पानी पिलानेका भी उत्तम प्रबन्ध था, पास ही एक अस्पताल भी था। महोत्सव मण्डपके पूर्व, गङ्गाजीकी ओर, महारुद्र-यज्ञके लिये एक विशाल यज्ञशाला बनाई गई थी। उसके पास ही एक सुन्दर मण्डप था। उसमें सिक्ख भाइयोंके ग्रन्थ साहबके पढ़नेका विधान था। दूसरे मण्डपमें जैन भाइयोंकी ओरसे पूजाकी व्यवस्था की गई थी। पूजाके सभी स्थान महोत्सव-मण्डपकी तरह भले प्रकार सजाए गए थे। एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिये सुन्दर मार्ग बनाए गए थे। घोड़ा-गाड़ियों और मोटरोंके लिये अलग-अलग स्थान नियत थे।

टिकट

महोत्सव-मण्डपमें जानेके लिये पाँच प्रकारके टिकट थे—सुफ़ेद, नीले, पीले, लाल और हरे। किस टिकटवाले कहाँ बैठें, यह निश्चित कर दिया गया था। परदानशीन महिलाओंके लिये लाल टिकटोंकी योजना थी।

मार्ग

महोत्सव-मण्डपमें जानेके लिये श्री दुर्गाजीके मन्दिरकी दक्षिण-पूर्ववाली पक्की सड़कमेंसे तीन नए सुन्दर मार्ग बनाए गए थे। किस मार्गसे कौन प्रवेश करे, इसका प्रबन्ध कर दिया गया था।

मार्ग-सूचक पट्टियाँ स्थान-स्थानपर बड़े-बड़े खम्भोंमें लगी हुई थीं। तो भी पुलिसका प्रबन्ध था ही। मार्ग भूलनेवालोंको लाल पगड़ीवाले टिकट देखकर मार्ग बतला देते थे। पुलीसका पहरा केवल राजमार्गोंपर ही नहीं था बल्कि प्रत्येक गली और सड़क तथा उनके पासके घरोंकी छतों और बाग़के वृक्षोंपर भी था।

महोत्सव-मण्डपमें पहुँचनेका समय

महिलाओंको साढ़े दसतक, हरे टिकटवाले निमन्त्रित सज्जनों और छात्रोंको ग्यारह बजेतक और अन्य महानुभावोंको साढ़े ग्यारह बजेतक मण्डपमें अपनी-अपनी जगहपर बैठनेकी सूचना दे दी गई थी। सोनपुर, भदैनी और अस्सीके राजमार्गोंसे बिना टिकट कोई मनुष्य रामनगर अथवा नगवाकी तरफ़ आठ बजेके बाद नहीं जाने पाया। टिकटवाले लोगोंके लिये भी कोई-कोई मार्ग साढ़े नौ और दस बजे बन्द कर दिए गए थे।

साढ़े ग्यारह बजेके पश्चात् पाँचवीं हैम्पशायर और सातवीं राजपूत पल्टनके सिपाही क्रमशः आकर मध्यवेदीके दाहिने-बाएँ खड़े हो गए। उनके यथास्थान खड़े हो जानेपर हिन्दू कौलेज्की केडेट् कोर, मध्यवेदीके तीन ओर घेरकर खड़ी हो गई। यदि उस समय महोत्सव-मण्डपको एक विचित्र रङ्ग-बिरङ्गा पौदा कहें तो हिन्दू कौलेज्के केडेट् कोरको उस पौदेका मनोमोहक फूल कहे बिना नहीं रह सकते। उनके सामने सचमुच हीरे-जवाहिरों, मोतियों तथा बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंकी चमक-दमक और जगमगाहट छिप गई। वे तेजस्वी बालक सूर्य्य भगवान्की तरफ़ मुँह करके जो खड़े हो गए तो अन्ततक अपनी जगहसे नहीं हिले। सूर्य्य भगवान् भी मण्डपके ऊपर रथ रोककर मानो विचित्र शोभा देखनेके लिये आ जमे थे।

श्रीमान् वायसराय ठीक बारह बजे सभा-मण्डपमें पधारे। गार्ड ऑफ़् ऑनरने सलामी उतारी। बैण्डवालोंने समयोचित वाद्य बजाया। सर्वसाधारणने खड़े होकर करतल-ध्वनिसे श्रीमान्का स्वागत किया। श्रीमान्के आसनपर विराजते ही दाहिनी ओर रक्षित देशोंके नरेश और बाईं ओर बङ्गाल, बिहार, युक्तप्रान्त, पञ्जाबके लाट, बलरामपुर, डुमराँव इत्यादिके महाराज तथा मिस्टर नायर, महाराज दरभङ्गा, श्रीमान् मालवीयजी, पण्डित सुन्दरलाल, डाक्टर सर्वाधिकारी, सर गुरुदास बैनर्जी, सर पट्टनी, सरदार दलजीतसिंह इत्यादि सज्जन अपने-अपने आसनपर बैठ गए।

निश्चित समयसे बहुत पहले ही सभा-भवन दर्शकोंसे भरने लगा और साढ़े ग्यारह बजते-बजते सब अपने स्थानपर बैठ गए। पाँचवीं हैम्पशायर तथा सातवीं राजपूत पल्टनसे आए सिपाही वायसराय महोदयके स्थानके चारों ओर सम्मान प्रदर्शनके लिये खड़े थे। हिन्दू कौलेज्के स्वयंसेवक उस शिला-मञ्चको चारों ओरसे घेरे खड़े थे। हिन्दू कौलेज्के छात्रोंने इस अवसरपर जो अदम्य उत्साह दो घण्टे निरन्तर खड़े रहकर (जब कि पाँचवीं हैम्पशायर पल्टनके आठ व्यक्ति तथा सातवीं राजपूत पल्टनके चार व्यक्ति मूर्छित होकर गिर पड़े थे) दिखलाया था उनकी शिक्षाका भली भाँति परिचय दे रहा था।

ठीक बारह बजे वायसराय महोदय पधारे तथा राष्ट्रीय गानके साथ उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया।

राष्ट्रीय गानके समाप्त होनेपर सेण्ट्रल हिन्दू कन्या-पाठशालाकी बारह बालिकाओंने जो वायसराय महोदयके स्थानसे दर्शकोंके स्थानतक खड़ी हुई थीं पहले गणपतिकी तथा फिर सरस्वती देवीकी स्तुति की। संस्कृत श्लोकोंमें जो इस अवसरके लिये सर्वथा उपयुक्त थे। महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमारजी शास्त्रीने तब इस कार्य्यकी सफलताके लिये स्वस्ति-वाचन श्लोक कहे। उसके बाद हिन्दू विश्वविद्यालय सोसाइटीके प्रधान महाराजा दरभङ्गाने अपना भाषण पढ़ा और फिर लौर्ड हार्डिञ्जसे शिलान्यास करनेकी प्रार्थना की।

सर गुरुदास बैनर्जीने वायसराय महोदयको शिवालयके आकारके सुन्दर रजत डिब्बेमें बन्द मान-पत्र भेंट किया। इसके बाद वायसराय महोदयने भाषण दिया

तत्पश्चात् श्रीमान् वायसराय मध्यस्थ मञ्चकी ओर गए। नन्हीं-नन्हीं बालिकाओंकी पुष्प-वर्षाके मध्यमें उन्होंने शिलान्यास संस्कार किया जिसपर खुदा हुआ था—

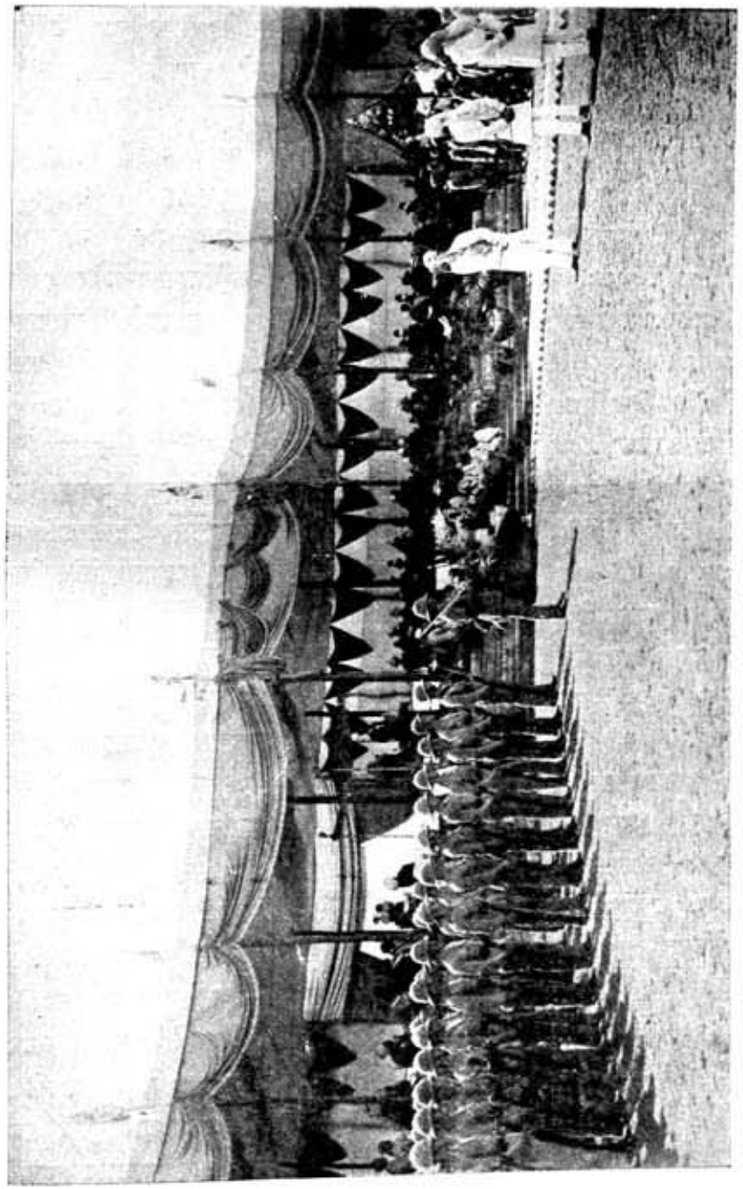

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका शिलान्यास-महोत्सव

वसन्त पञ्चमी ४ फरवरी सन् १९१६ ई० को काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर तत्कालीन वायसराय लौर्ड हार्डिञ्ज अपना भाषण पढ़ रहे हैं।

ॐ

काशीविश्वविद्यालयः ।

माघे शुक्ले प्रतिपदि तिथौ शुक्रवारे शिलाया
न्यासं काश्यां ह्यगनव महीसम्मिते विक्रमाब्दे ।
प्राच्यं धर्मं परिफलयुतं विश्वविद्यालयस्या-
कार्षीत् सम्राट् प्रतिनिधिवरो लौर्डहार्डिङ् सुकीर्त्तिः ॥

काशी विश्वविद्यालय

यह शिलान्यास श्रीमान् हिज़ एक्सेलैन्सी पेन्शर्स्टके माननीय चार्ल्स वेरन हार्डिञ्ज, पी. सी., जी. सी. बी., जी. एम्. एस्. आई., जी. सी. एम्. जी., जी. एम्. आई. ई., जी. सी. वी. ओ., आई. एस्. ओ., भारतवर्षके गवर्नर-जनरल तथा वायसराय-द्वारा ४ फ़रवरी सन् १९१६ ई० को किया गया ।

उस सङ्गमरमरके नीचे रिक्त स्थानमें एक ताँबेका डब्बा है जिसमें भारत-सरकार तथा बहुतसी देशी रियासतोंके प्रचलित सिक्के, हिन्दू विश्वविद्यालय सोसाइटीकी रिपोर्ट, उस दिनके लीडर तथा पायोनियरकी एक-एक प्रतियाँ तथा एक ताम्रपत्र रक्खे हैं । ताम्रपत्रपर यह अङ्कित है :—

धर्मं सनातनं वीक्ष्य कालवेगेन पीड़ितम् ।
भूतले दुर्व्यवस्थं च व्याकुलं मानवं कुलम् ॥
कलेः पञ्चसहस्राब्दे गते भारतभूमिषु ।
आरोपयितु मुद्धारबीजस्य पुनर्नवम् ॥
काशीक्षेत्रे पवित्रेऽत्र गङ्गातीरे महोदया ।
शुभेच्छा पुण्यसम्पन्ना सञ्जाता जगदात्मनः ॥
सङ्गम्याथ पाश्चात्याः प्राच्याश्चापि प्रजा निजाः ।
तच्छ्रेष्ठानां विधायैकमत्यं सुमति लक्षणम् ॥
विश्वनाथपुरे विश्व जनीनो विश्वभावनः ।
विश्वात्माऽऽकारयद्विश्व विद्यापीठ व्यवस्थितिम् ॥
निमित्तमात्रमत्राभूत् समीहायाः परेशितुः ।
मालवीयो देशभक्तो विप्रो मदनमोहनः ॥
निधाय वाङ्मयं तेजस्तस्मिन्नुद्बोध्य भारतम् ।
प्रह्वीकृत्वापि तच्छास्तानस्मिन्नर्थे व्यधात्प्रभुः ॥
अन्ये चापि निमित्तानि प्राभवन्नन्तरात्मनः ।
बीकानेर नृपो वीरो गङ्गासिंहो महामना ॥
श्रीरामेश्वरसिंहश्च दरभङ्गा - महीपतिः ।
प्रधानः कार्य्यकारिण्याः सभाया मानवर्धनः ॥
सुधीः सुन्दरलालश्च मन्त्री कोषाभिरक्षकः ।
गुरुदासादित्यरामौ वासन्ती वाग्मिनी तथा ॥
तथा रासविहारी च वृद्धा ये देशवत्सलाः ।
दासाश्चान्ये भगवतो यथाशक्यं सिषेविरे ॥
विक्टोरियामहाराज्ञः पौत्र एडवर्डदेहजे ।
सम्राजि पञ्चमे ज्याजें भारतं परिशाततति ॥
मेवारकाशिकाश्मीर मयसूराल्वराधिपान् ।
कोटा जयपुरेन्दौर जोधपुरादिभूमिपान् ॥
तथा कर्पूर्थलानाभाग्वालेरादि नरेश्वरान् ।
ईरयित्वा सहायार्थं सज्जनानपरांस्तथा ॥
गर्भस्य सर्वधर्माणां रक्षायै प्रचयाय च ।
प्रसाराय स्वलीलानां स एवैकः परः प्रभुः ॥
लार्डहार्डिङ् सुविख्यातं सम्राट्प्रतिनिधि वरम् ।
धीरं वीरं प्रजावन्धुं जनानां हृदयङ्गमम् ॥
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत् ॥
संप्राप्ते नेत्रभूभृद् ग्रहधरणिमिते वैक्रमेऽब्दे च मासे ।
माघे पक्षे च शुक्ले प्रतिपदि च तिथौ वह्नि शुक्रे क्षणेऽच्छे ॥
श्रीकाश्यां श्रीलसम्राट्प्रतिनिधिकरतो यच्छिलान्यास आसीद् ।
यावच्चन्द्रार्कतारं विलसतु स महा विश्वविद्यालयोऽयम् ॥
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
ततः स्रुता ज्ञानसुधा निपीयताम् ॥
सदा मतिः शुभचरिते विधीयताम् ।
रतिः परा परमगुरौ प्रचीयताम् ॥

(सनातन-धर्मको कालके वेगसे पीड़ित तथा सम्पूर्ण भूमण्डलके प्राणियोंको दुरवस्थ और व्याकुल देखकर कलियुगके पाँच हज़ार वर्ष बीतनेपर भारत-भूमिमें काशी-क्षेत्रमें जाह्नवीके पवित्र तटपर इस सनातन-धर्मके बीजका पुनः नवीन रूपसे आरोपण करनेके लिये जगदीश्वरकी शुभ पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य प्रजाको एक सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानोंका ऐक्यमत कर विश्व-भावन, विश्वस्वरूप, विश्व-स्रष्टाने विश्वनाथकी नगरीमें विश्वविद्यालयके संस्थापनकी व्यवस्था की। देशभक्त विप्र मदनमोहन मालवीय परमेश्वरकी इस इच्छाके पूर्ण करनेके निमित्त-मात्र बने। भारतको जगाकर और उसमें वाङ्मय तेजका विधान कर भारतके शासकोंको नम्र बनाकर इस कार्य्यको सफल करनेमें उन्हें प्रवृत्त किया। भगवान्की इस इच्छाकी पूर्त्तिमें और भी कई महापुरुष निमित्त बने। बीकानेर नरेश-वीर महामना महाराज श्री गङ्गासिंह बहादुर, कार्य्य-कारिणी सभाके सम्मान-वर्द्धक सभापति दरभङ्गा नरेश श्री रामेश्वरसिंहजी, मन्त्री एवं कोषाध्यक्ष डाक्टर श्री सुन्दरलालजी, सर श्रीगुरुदास बैनर्जी, श्री आदित्य-राम भट्टाचार्य्य-जी, विदुषी श्रीमती एनी बेसेण्ट, डाक्टर रासविहारी घोष तथा अन्य विद्या-वयोवृद्ध देशप्रेमी भगवत्-दासोंने यथाशक्ति इसकी सेवा की। महारानी वि-क्टोरियाके पौत्र महाराज एडवर्ड के पुत्र सम्राट् प ञ्च म जा र्ज के शासन-कालमें मेवाड़, काशी, काश्मीर, मैसूर, अलवर, कोटा, जयपुर, इन्दौर, जोधपुर, कपूर्थला, नाभा, ग्वालियर आदि राज्योंके नृपतियोंको तथा अन्य धनी-मानी सज्जनोंको इसकी सहायताके लिये प्रेरणा कर सब धर्मोंके जन्मदाता सनातन-धर्मकी रक्षा एवं उन्नतिके लिये तथा अपनी लीलाके विस्तारके निमित्त उन्हीं परात्पर प्रभुने सम्राट्के प्रतिनिधि (वायसराय) धीर-वीर प्रजावन्धु श्री लौर्ड हार्डिञ्जके द्वारा इस विश्वविद्यालयका शिलान्यास कराया।

श्री विक्रम सम्वत् १९७३ में माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवारके दिन शुभ मुहूर्त्तमें श्री काशी नगरीमें सम्राट्के प्रतिनिधि (वायसराय) के द्वारा जिस विश्वविद्यालयका शिलान्यास किया गया वह सूर्य्य-चन्द्र स्थिति तक सुशोभित रहे।

इसे सङ्क्षेपमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका इतिहास कहना चाहिए। अब भी वसन्त पञ्चमीके दिन वसन्ती रङ्गमें रङ्गकर इसका जन्मदिन बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। अध्यापक, विद्यार्थी, स्त्रियाँ और बच्चे सब जुलूस निकालते हैं, भजन गाते हैं और अपनी मातृ-संस्थाका जन्मोत्सव मनाते हैं :—

वसन्त पञ्चमीके दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका परिवार अपनी मातृसंस्थाका जन्मोत्सव मनानेके लिये निकल पड़ता है।

हिन्दू विश्व वि द्या ल य की स्थापना हो गई और सन् १९१८ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालयकी पहली परीक्षा हुई।

इसीके बादकी घटना है। देशमें असहयोग आन्दोलनकी धूम थी। चारों तरफ़ धर-पकड़ जारी थी। इन्हीं दिनों प्रिन्स ऑफ़ वेल्स (पूर्व सम्राट् एडवर्ड अष्टम और अब ड्यूक ऑफ़ विण्डसर) उस समय भारतवर्षमें सैर कर रहे थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने उन्हें 'आचार्य्य' (डाक्टर) बनानेकी ठानी। आख़िर मालवीयजीकी बात तो ठहरी। चारों ओर लोगोंने मालवीयजीकी निन्दा की, बुरा-भला कहा, व्यङ्ग चित्र बनाए, पर मालवीयजी अटल रहे। १३ दिसम्बर सन् १९२१ ई० को दिनको ठीक ग्यारह बजे राजकुमार पधारे। बड़ी सजधज थी, बहुतसे लोग आए हुए थे। महाराजा

मैसूर चान्सलरने उनका स्वागत किया, जिसका राजकुमारने बड़े सुन्दर शब्दोंमें उत्तर दिया। राजकुमारने जब सुनहरी धारीका लाल चोग़ा पहना और रेशमी पगड़ी बाँधी तो बड़ी देरतक करतल-ध्वनि हुई। मालवीयजीके हाथों राजकुमार भी स्नातक बन गए।

इसी अवसरपर हिन्दू युनिवर्सिटी अपने मूल स्थान कमच्छासे उठकर नगवाके नए भवनोंमें चली आई। यह स्थान पहले महाराजा बनारसका था जिन्होंने अपने ज़मीन्दारीका हक़ युनिवर्सिटीको सौंप दिया और जिसका काश्तकारीका हक़ छः लाख रुपयेमें ख़रीदा गया। अर्द्ध गोलमें युनिवर्सिटीका निर्माण हुआ और धनुषाकार समानान्तर सड़कोंके किनारे बड़े क्रमसे विद्यालय, छात्रावास और अध्यापकवास स्थानोंके भवन बने हैं। आज यह विश्वविद्यालय बीस बरसका हो गया है। इसका परिवार बढ़ता चला जा रहा है। यहाँ क़रीब साढ़े तीन हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं और अढ़ाई सौ अध्यापक पढ़ा रहे हैं। एक नया ही नगर है। अपनी बिजली, अपना पानी, अपना नगर-प्रबन्ध—जिन्हें रोम, पैरिस, लन्दन और बर्लिनका वैभव चकित न कर सका होगा उन्हें यह नया नगर अवश्य अच्छा लगेगा।

अनेकों कर्मवीरोंके हृदयकी भावनाका फल।
हमारे मालवीका प्राण हिन्दू विश्वविद्यालय॥

हिन्दू विश्वविद्यालयकी कथा कहनेके लिये एक युग चाहिए और पढ़नेके लिये अमित सन्तोष। न हमारे पास इतना समय और शक्ति है और न आपको इतना धैर्य्य। पर यही समझ लीजिए कि यह एक दीन ब्राह्मणकी निरन्तर कल्पनाकी सजीव सृष्टि है। कल जो स्वप्न था, वह आज आखोंके आगे है।

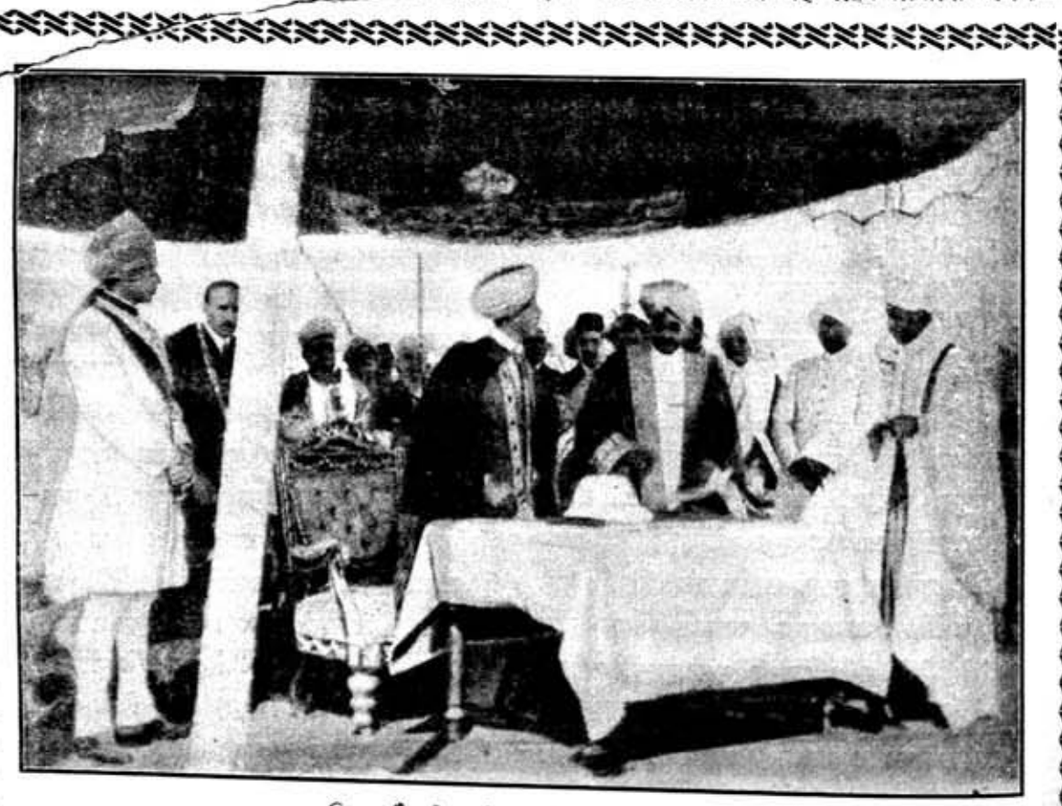

प्रिन्स ऑफ़ वेल्सको उपाधि दी जा रही है।

हिन्दू विश्वविद्यालयके भीतर

आप कहेंगे कि इतना गुन बखान गए, ज़मीन आसमानके कुलाबे मिला दिए, पर यह न बतलाया कि आख़िर काशी विश्वविद्यालय है क्या चीज़। आप समझते होंगे कि एक भवन बना होगा। दस बजे घण्टी बजती होगी, लड़के और प्रोफ़ेसर आते होंगे, पढ़ते होंगे, यही न? मैं कहने लगूँगा तो आप मानेंगे नहीं। आइए मेरे साथ चले चलिए, पर साथ-ही-साथ जेबमें रुपयोंकी थैली भी लेते चलिएगा, नहीं तो आपको वहाँ जाकर पछताना पड़ेगा कि अपनी थैली क्यों भूल आए। उस तीर्थका माहात्म्य ही यह है कि न पण्डा है न पुजारी, पर जो दर्शनके लिये आता है वह अपने आप अपनी जेब ख़ाली कर जाता है। डरिए मत, वहाँ जेब-कतरे नहीं रहते।

हाँ, तो आप काशीमें गङ्गास्नान करके भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन कर चुके न? अब मेरे साथ गोदौलियासे इसी इक्केपर बैठ लीजिए। अब काशी बहुत बदल गई है, पर ये इक्के अभी नहीं बदले। जो तपस्या न भी करना चाहता हो उसे भी तपस्या करा देते हैं। अब सड़क भी अच्छी हो गई है। चले चलिए, अभी तो हरिश्चन्द्र घाट पीछे छूटा है। यह देखिए! अस्सी घाट, यहाँपर तुलसी घाट है और उनका मन्दिर है। लौटती बार अवश्य देखिएगा। जिस हिन्दूने काशीमें आकर गोस्वामी तुलसीदासजीका यह स्थान नहीं देखा, उनकी चरणपादुकाके दर्शन न किए, उसका चोटी रखना व्यर्थ है। हैं! आप चौंक क्यों पड़े? हाँ, ठीक है, यह पुल अभी बना है। आप जब पहले आए थे तब नहीं था। इसके खम्भोंपर देख रहे हैं। अंग्रेज़ीमें लिखा है—'बी० एच० यू०' जिसका अर्थ है बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी। यहाँके वर्त्तमान प्रोवाइसचान्सलरके उत्साह और प्रेरणासे ही बना है। इस पुलके बननेसे बड़ा चक्कर बच गया है। यह लीजिए, आप आ गए। सामने यह देखते हैं फाटक। यहींसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रारम्भ होता है।

इक्केपरसे मत उतरिए। तेरह सौ एकड़ ज़मीन और बीस मीलकी सड़कोंपर कहाँतक पैदल चलिएगा? यह देखिए बाईं ओर दीवार दिखाई दे रही है। इसके पीछे जो भवन है इसीमें महिला विद्यालय और महिला छात्रावास है। इस बीसवीं सदीमें महिला विद्यालयके चारों ओर दीवार देखकर आपको कम अचरज तो न होता होगा पर क्या किया जाय, अभीतक हम लोगोंने अपनी बहनोंके शील और उनकी मर्य्यादाका आदर करना नहीं सीखा है। जबतक हमारे नौजवान लक्ष्मण नहीं बन जाते तबतक ईंटोंकी दीवार ही उनके शीलकी रक्षा करेगी। आजकलकी शिक्षा ही ऐसी है, वातावरण ही ऐसा है। फ़िल्म कम्पनीके राम और सीताके सामने वाल्मीकि और तुलसीके राम और सीताको पूछता ही कौन है? बाहरसे देख रहे हैं, सामने फ़ुव्वारा है, दोनों ओर बाग़ीचा है, ठण्ढी अमराई है, पीछे खेलनेके मैदान हैं। आप बाहर ही रहिए, भीतर जाना ठीक नहीं है, लड़कियाँ इधर-उधर बैठी पढ़ रही होंगी। अपनी धर्मपत्नीजीको भेज दीजिए, भीतरसे देख आयँगी।

क्यों देखा न आपने? महिला छात्रावासके भीतर कितना मनोरम उद्यान है, उसमें नीचे छात्रावास है, ऊपर विद्यालय है। आप सितार सुन रहे हैं न? यहाँ लड़कियोंको सङ्गीत भी सिखाया जाता है। भीतर ही एक बड़ा कमरा है जिसमें वे अपनी सभाएँ करती हैं, उत्सव करती हैं और नाटक करती हैं। केवल स्त्रियाँ ही उसमें जा सकती हैं। आजकल क़रीब सौ लड़कियाँ होंगी जो एम्० ए० तक पढ़ती हैं। एम्० ए० पढ़नेवाली और विज्ञान पढ़नेवाली लड़कियोंको अभीतक सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़में जाना पड़ता है। रुपया मिले तो उनकी पढ़ाईका भी प्रबन्ध यहीं हो जाय। यह भवन दानवीर श्रीमाखनजी खटाऊने बनवाया है।

इधर दाईं ओर जँगलेके भीतर आयुर्वेदिक कौलेज़ और सर सुन्दरलाल चिकित्सालय है। इसमें आयुर्वेदके साथ-साथ पाश्चात्य शल्य शास्त्र भी पढ़ाया जाता है। इसमें छः वर्षका पाठ्यक्रम है। आयुर्वेद और अंग्रेज़ी दोनों तरहकी चिकित्साका प्रबन्ध है। पीछेकी ओर चलिए। यही आतुरालय है। देखिए कितनी सफ़ाईसे रोगियोंकी सेवा की जा रही है। इसमें सौ रोगियोंके रखनेकी व्यवस्था है। इधर आँख, नाक, कान और गलेकी विशेष चिकित्साका भी प्रबन्ध है। ऊपर चलिए, यह देखिए, यहाँ कीटाणुओंकी परीक्षा हो रही है।

उतर चलिए। यह देखिए, सामने कैसी सुन्दर आयुर्वैदिक वाटिका है। इसके भीतर चलिए, कोई हर्ज नहीं है। यहाँ अनेक प्रकारकी आयुर्वैदिक जड़ी-बूटियाँ, पेड़-पौदे, लताएँ उगाई गई हैं। वाटिकाके पूरब-दक्खिनके कोनेमें एक भवन देख रहे हैं न? यहाँ मुर्दे रक्खे और चीरे जाते हैं और विद्यार्थियोंको शरीर-शास्त्रका प्रयोगात्मक ज्ञान कराया जाता है। सड़कके उस पार वनस्पति वाटिका है। इसमें अनेक प्रकारके वनस्पति प्रयोगोंके लिये पेड़-पौधे उगाए जाते हैं। देखिए, है न कितना सुन्दर? बहुत देर मत लगाइए। अभी बहुत दूर चलना है।

देखिए, यही सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज है। कितना

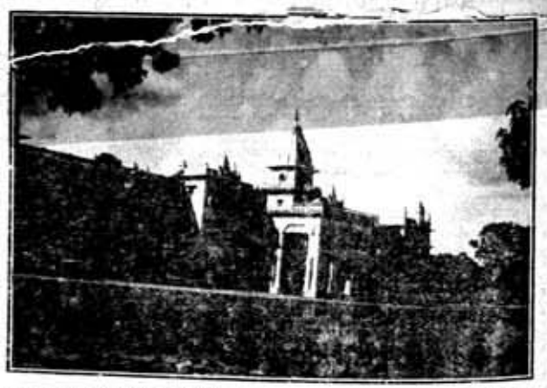

विशाल भवन है। इसीमें सुबह संस्कृत कौलेज़ और वकालतका कौलेज़ और दिनमें सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़ लगता है। इसीमें प्रो-वाइसचान्सलर और युनिवर्सिटीका दफ़्तर है। ऊपर चले चलिए। यह

देखिए, कितना बड़ा भव्य-भवन है। इसमें दो हज़ार विद्यार्थी समा सकते हैं। नाटक भी यहीं होते हैं, रविवारको गीताप्रवचन और एकादशीकी कथा भी यहीं होती है। हाँ, इसे ही आर्ट्स् कौलेज़ हौल कहते हैं। इक्केवाला इसीको 'आठ कालिज' कहता था।

और ऊपर चढ़ चलिए। यहाँसे पूरा विश्व-विद्यालय दिखाई देगा। ऊपर जो आप मन्दिर देखते हैं वह केवल हिन्दूपनका चिह्न है। उसमें मूर्त्ति नहीं है।

सामने देखिए, सभी विद्यालयोंके शिरपर मन्दिर, कलश और हिन्दुस्थानी कङ्गूरे दिखाई पड़ रहे हैं।

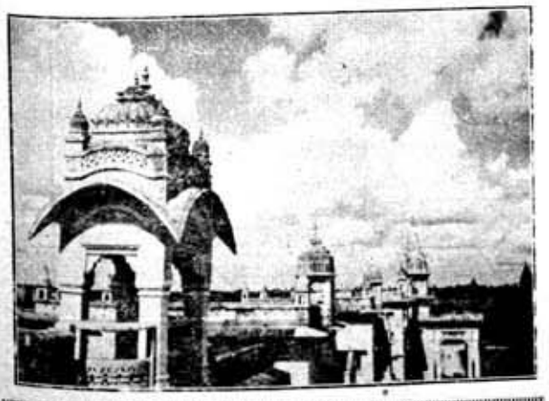

इधरसे धूप पड़ रही है और पीछे बादल उठे हैं उस समय ये भवन बड़े मनोहर लगते हैं।

इसके बराबर यह विज्ञानका विद्यालय है। पहले यह विद्यालय भी सेण्ट्रल हिन्दू कौलेज़के अन्तर्गत ही था, पर इस वर्षसे अलग हो गया है।

विज्ञान कौलेज़के उद्घाटनके समय। बाईं ओरसे—आचार्य ध्रुव, डा० वर्मा, पूज्य मालवीयजी और विज्ञान विद्यालयके स्वर्गवासी प्रिन्सिपल श्री कृष्णकुमार माथुर।

यह भौतिक विज्ञान-विभागका भवन है, इसे फ़िज़िकल लैबोरेटरी कहते हैं। ऊपर चलिए, आपके मनकी चीज़ दिखाते हैं। यह देखिए, यह जीव-शास्त्र-विभाग है। इसमें अनेक प्रकारके जीवोंके ढाँचे, मृत शरीर या लकड़ी और मट्टीके नमूने दिखाई देंगे। यह 'जन्तु-प्रदर्शनी' है। देखिए, कहाँ-कहाँके जानवर यहाँ इकट्ठे किए गए हैं।

ऊपरसे ही दूसरी ओर चलिए। इधर वनस्पति-शास्त्रकी प्रयोगशाला है। अनेक पेड़-पौधे, फल, जड़, काई, घास आदिके विषयमें खोज की जाती है। इधर वनस्पतियोंकी प्रदर्शनी है। आप यह पौधे देखते हैं। यह मकिखयोंको मारकर खा जाता है। भगवान्की माया तो देखिए। कहिए, अब तो आपने देखा।

उधर अब दूसरे भवनमें चलिए। इसे रसायन विज्ञान-प्रयोगशाला (कैमिकल लैबोरेटरी) कहते हैं। यह नीचे देखिए, धातु और खनिज-विभाग है।

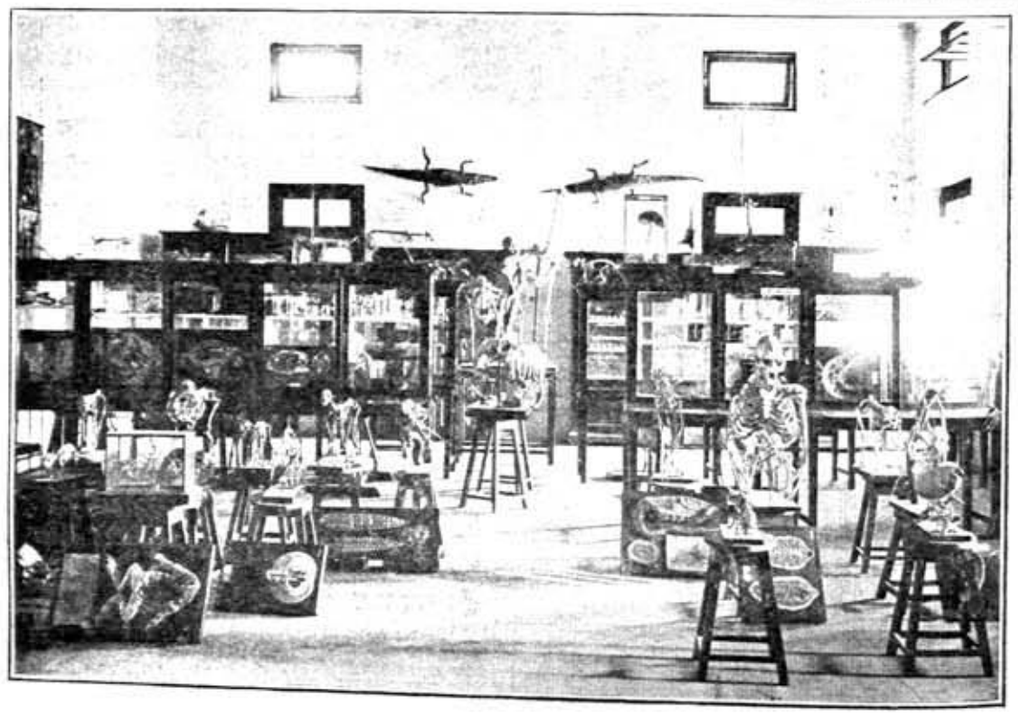

जन्तु-प्रदर्शिनी।

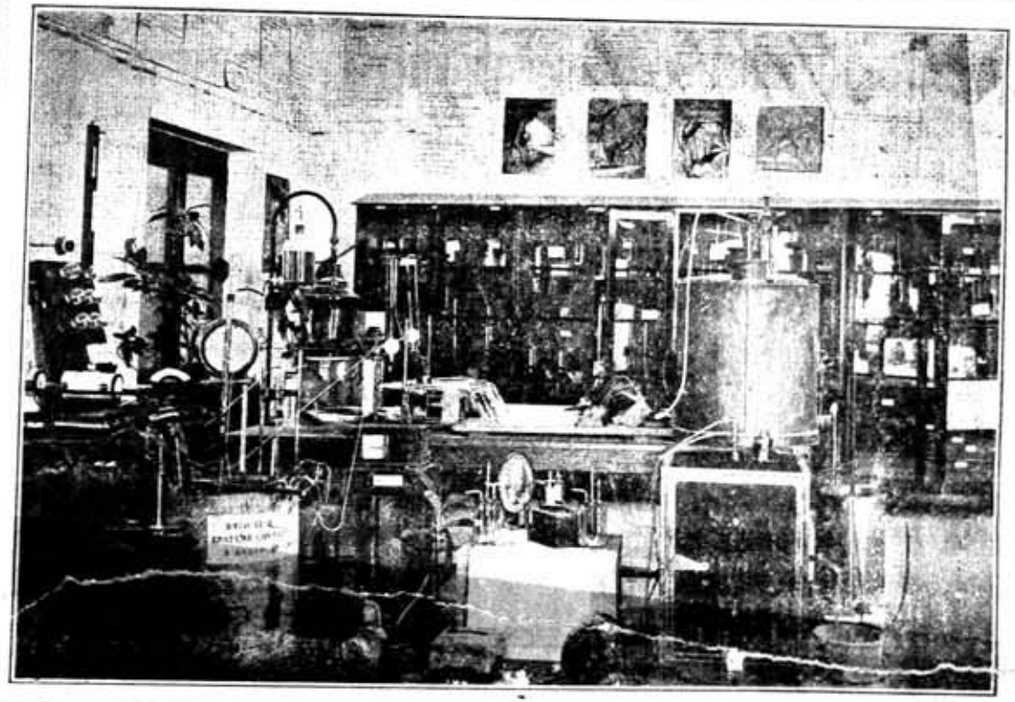

वनस्पति प्रयोगशाला

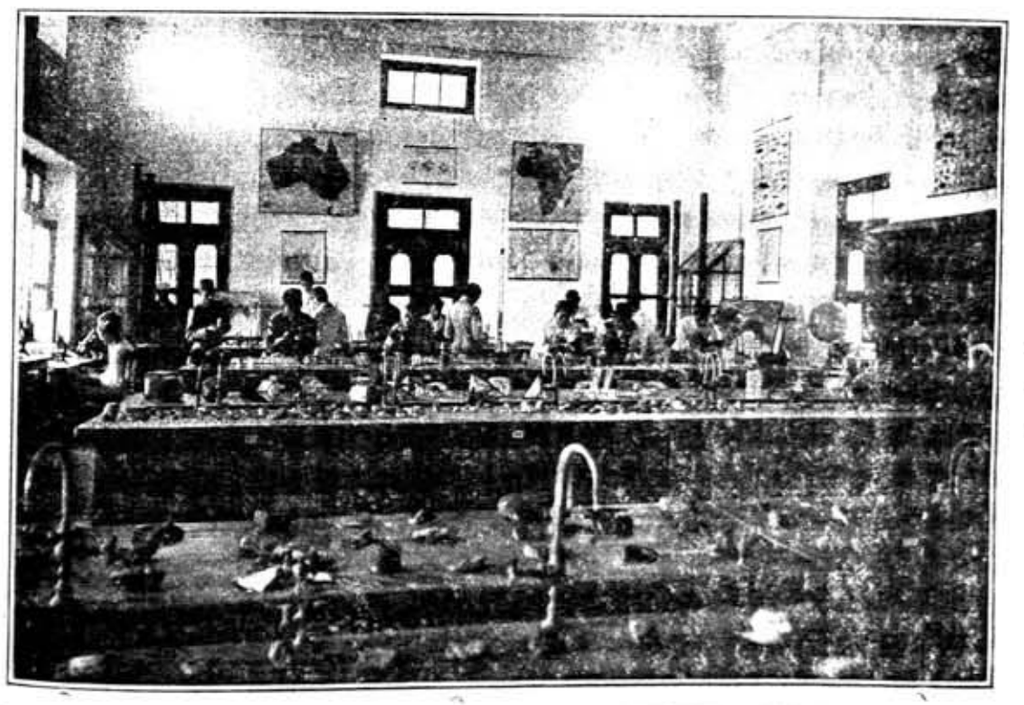

वनस्पति प्रदर्शिनी

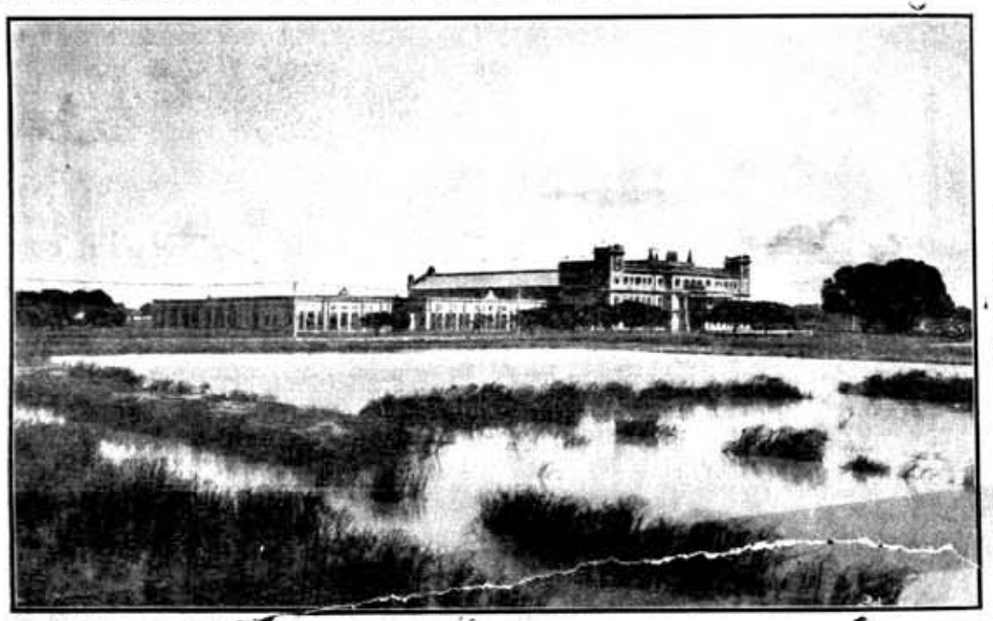

इञ्जिनीयरिङ्ग कॉलेज।

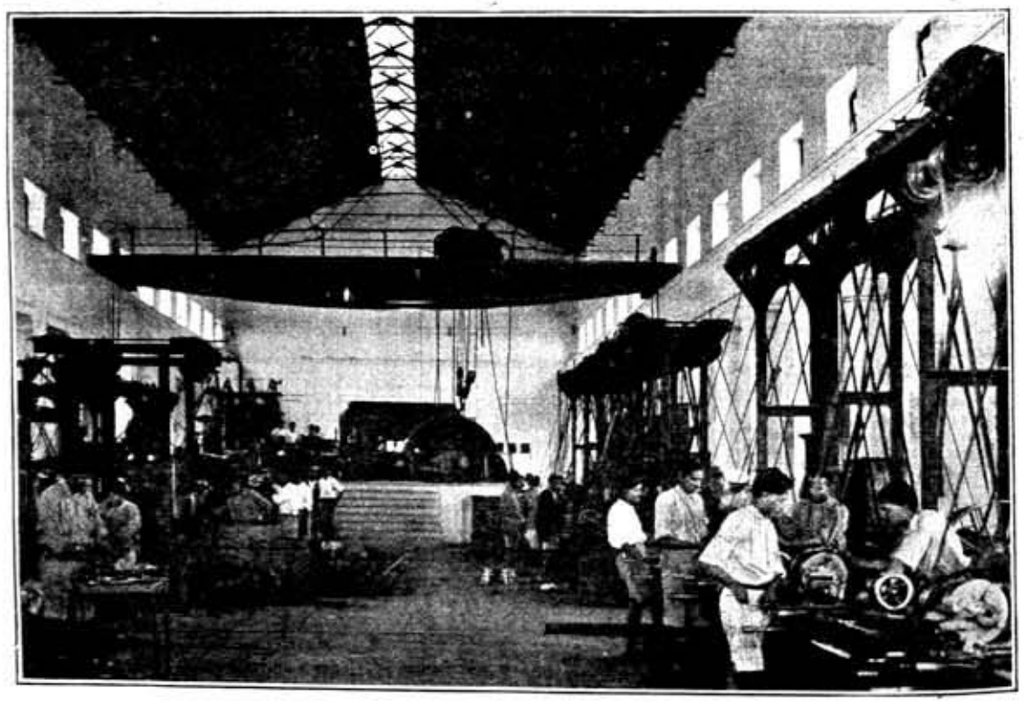

इञ्जिनीयरिङ्ग प्रयोगशाला।

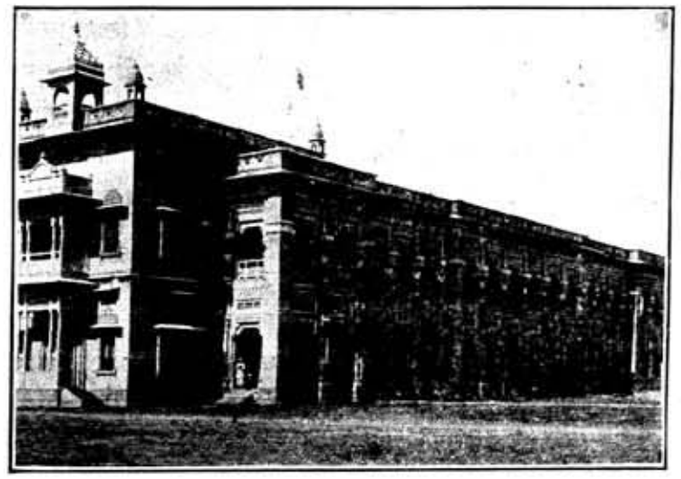

धातु और खनिज-विभाग

इसमें धातु और खनिजशास्त्र पढ़ाया जाता है। ये सब जो आप चर्ख़ियाँ और मशीनें देख रहे हैं ये तो खानोंमें किस प्रकार काम होता है उसे दिखलानेके नमूने हैं। तेज़ीसे चलिए, नाक फटी जाती होगी। यहाँ लड़के अनेक रसायनोंकी परीक्षा कर रहे हैं। सचमुच बड़ी बदबू है। यह लीजिए, यह हमारे यहाँका औद्योगिक रसायन-विभाग है। यहाँ तेल, साबुन, इत्र, रोशनाई, पौलिश, क्रीम आदि नित्य व्यवहारकी चीज़ोंको बनाना सिखाया भी जाता है और उन्हें तैयार भी किया जाता है। आप स्वयं देख लीजिए, साबुन किस तरह बनता है। आपको जो चीज़ पसन्द आवे ले लीजिए। आगे चलिए। ये देखिए, कैसे सुन्दर खिलौने हैं। हाँ, दाम ज़रूर ज़्यादा हैं। बहुत बार समझाया कि दाम कम कर दो तो खूब बिक्री हो पर ये लोग मानते नहीं हैं। हम मानते हैं कि इन्हें सचमुच यदि प्रचार करना हो तो क़ीमत कम कर देनी चाहिए। मैं फिर इस बारेमें इन लोगोंसे कहूँगा। ऊपर आपको भूगर्भ प्रयोग-शाला मिलेगी। न जाने कहाँ-कहाँसे कङ्कड़, पत्थर, कौड़ी, घोंघा बटोर लाए हैं और उनकी परीक्षा किया करते हैं।

क्या थक गए? अभी तो तिहाई भी नहीं पहुँचे हैं।

धनुषाकार सड़कोंके किनारे कितने मनोहर भवन दिखाई पड़ रहे हैं।

यह बग़लमें गायकवाड़ पुस्तकालय है, कितना विशाल भवन है। आपने इतना बड़ा पुस्तकालय किसी विश्वविद्यालयमें नहीं देखा होगा। इसकी चित्रशाला देखिए। कितने अनोखे, सुन्दर और पुराने चित्र इकट्ठा किए हैं। एक-से-एक नए हैं।

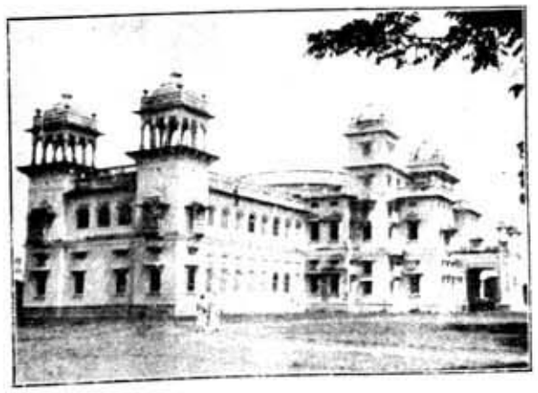

गायकवाड़ पुस्तकालय।

कितने क़ायदेसे पुस्तकें लगी हैं, आलमारियाँ रक्खी हैं। कुछ ठिकाना है पुस्तकोंका। फिर भी अभी पुस्तकें कम हैं। अभी और पुस्तकोंकी ज़रूरत है। सब भगवान् देगा ही।

यह सामने कृषि अनुसन्धान विद्यालय है। इसमें कृषिपर खोज होती है। देखिए कितनी बड़ी ईख उगाई है। और यह टमाटर देखिए, कितना बड़ा है। हमारे देशमें अभी ऐसे लोगोंकी बड़ी ज़रूरत है जो किसानोंको जाकर ऐसी सलाह दें कि जिससे उनके खेतमें भी भारी फ़सल हो।

आप जो घरड़-घरड़ आवाज़ सुन रहे हैं वह सामनेके भवनसे आ रही है। वही भारतका अद्वितीय विद्यालय है। यही यहाँका प्रसिद्ध इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज् है।

यहाँ मशीनोंका और बिजलीका काम सिखाया जाता है, साथ ही लकड़ी और लोहेका काम भी सिखाया जाता है। ये सब लड़के, जिन्हें आप हथौड़ा चलाते, रन्दा करते और मशीन चलाते देखते हैं, सब भारत भरके भले घरोंके लड़के हैं जो यहाँ इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज़में शिक्षा पा रहे हैं।

वह सामने जो ऊँचेपर अञ्जन चल रहा है उसीसे सारे विश्वविद्यालयमें बिजलीकी रोशनी पहुँचती है। उसके पीछे जो बड़े-बड़े काले हाथी से पड़े दिखाई देते हैं ये डायनमो मैसूरसे लाए गए थे कि सारे काशी शहरको बिजली पहुँचावें जिससे विश्वविद्यालयको कुछ पैसा भी हाथ लगे। पर सुनते हैं कि सरकारको यह दूकानदारी पसन्द न आई। ये डायनमो हर साल बेसलीन चाटते हैं और पड़े रहते हैं। देखें कब इनका भाग चेतता है। इधर देखिए, सब बिजलीके पङ्खे और कल-पुर्ज़े यहींके बने हुए हैं और ये लोहेकी जालियाँ भी यहींकी ढली हैं। यह विद्यालय यहाँकी नाक समझिए।

उधर सामने आप देखते हैं, वहाँ काँचका काम शुरू होनेवाला है। शायद अगले सालसे गिलास, क़लमदान, फूलदान, इत्रदान, तश्तरियाँ और चूड़ियाँ आपको मिलने लगें। और आगे जो भवन आप

इञ्जिनीयरिङ्ग छात्रावास

देखते हैं वह हिन्दू युनिवर्सिटीका छापाख़ाना है। इधर पीछे गोशाला फ़ार्म है। इसमें बड़े पैमानेपर खेती होती है। यहाँकी गाजरें, टमाटर, सँगरे और गन्ने अपनी मोटाई और लम्बाईमें कई नुमायशोंमें इनाम पा चुके हैं।

अब वापस चलिए। देर हो चली है, पीछेकी सड़कसे चलिए। यह छात्रावासोंकी सड़क है। यह सफ़ेद-सफ़ेद जो दो भवन दिखाई पड़ते हैं ये राजपूताना और लिमडी छात्रालय हैं। इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज्के छात्र इसीमें रहते हैं, इसके आगे छात्रालय है।

इधर बाईं ओर तो ये छात्रालय आप देख रहे हैं उधर दाईं ओर प्रसिद्ध विश्वनाथजीका मन्दिर बन रहा है। इसके चारों ओर बीस फुट चौड़ी नहर रहेगी। बन जाने दीजिए फिर इसकी रौनक़ देखिएगा। यह सचमुच दुःखकी बात है कि हिन्दुओंने अभी मन्दिरकी उपयोगिता नहीं समझी। जब मन्दिरका प्रस्ताव हुआ तो बहुत लोगोंने फ़बतियाँ कसीं कि 'मालवीयजी ताजमहल बनवा रहे हैं'। बहुतसे लोगोंका कहना है कि इतना रुपया मालवीयजी इसमें क्यों लगा रहे हैं, पर बात यह है कि प्रत्येक वस्तुका एक महत्त्व होता है, वह महत्त्व ही हमारे भावोंको भी ऊपर उठा देता है। लोगोंने बहुतसे गुरुद्वारे देखे होंगे पर जो भाव अमृतसरके 'स्वर्ण मन्दिर' में आता है या उस तालाबके अठसट्ठि घाटपर पैदा होता है, वह और कहीं नहीं होता। यह तो विश्व-विद्यालयका हृदय है। शरीरके अनुरूप ही उसका हृदय भी विशाल होना चाहिए। इसी लिये विश्व-विद्यालयके बीच ही में इसकी स्थापना भी हो रही है। यह मन्दिर भारतकी हिन्दू जातिका केन्द्रस्थान होगा। उसे उतना ही बड़ा, उतना ही विशाल होना

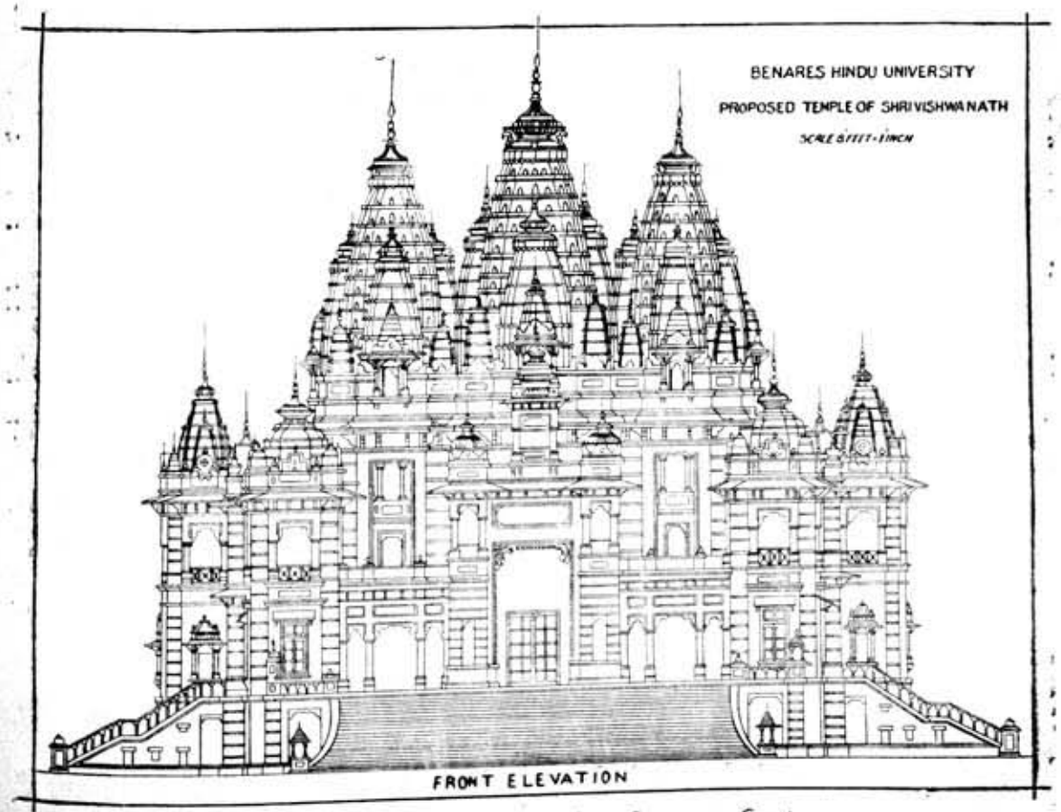

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके प्रस्तावित मन्दिरका मान-चित्र।

चाहिए जितनी बड़ी हिन्दू जाति है। जब यहाँके विशाल घण्टे प्रातः-सायं यहाँकी भूमिमें गूँजेंगे तभी तो विद्यार्थियोंमें धर्मकी भावना जागरित होगी और हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उद्देश्य पूर्ण होगा। अभी मन्दिरके लिये पूरा रुपया नहीं मिला है, पर हमारा विश्वास है कि धार्मिक हिन्दू जाति इस धर्मके दानमें कञ्जूसी नहीं करेगी।

चलिए, सन्ध्या हो चली है। ये आगे ब्रोचा और बिड़ला छात्रावास हैं। बिड़ला परिवारने विश्व-विद्यालयको अबतक सबसे अधिक ग्यारह लाख रुपया दिया है। इधर बाईं ओर जो एक भवन दिखाई पड़ रहा है, शिवाजी भवन कहलाता है और इसमें व्यायाम विद्यालय है, प्रातः-सायं विद्यार्थी कसरत करते हैं।

इधर आगे क्रिकेट, हाकी और फुटबाल खेलनेके मैदान हैं। उसके आगे जालीसे घिरे हुए टेनिस खेलनेके मैदान बने हैं।

आगे बाईं ओर जो छात्रावास है इसमें आयुर्वैदिक और संस्कृत विद्यालयके छात्र रहते हैं। इसी भवनमें ऊपर सङ्गीत विद्यालय है जहाँ मुफ़्तमें सङ्गीत सिखाया जाता है।

छात्रावासोंके पीछे अध्यापकोंके निवासगृह हैं, डाकख़ाना है और बच्चोंका स्कूल है। वहाँ जाकर क्या कीजिएगा?

यह आगे दाईं ओर अतिथि-भवन है जिसमें वर्त्तमान प्रो-वाइस-चान्सलर रहते हैं। क्यों, रुकते क्यों हैं? इस विश्वविद्यालयके जन्मदाताको देखना चाहते हैं? चलिए, उनके यहाँ खुला दरबार है, हर कोई जा सकता है। बस रुकिए। यही मालवीयजीका बङ्गला है। देखिए-देखिए! वही मालवीयजी हैं। सिरपर सफ़ेद साफ़ा, गलेमें दुपट्टा, चन्दनका टीका माथेपर—यही मालवीयजी हैं। यह क्या—ये रुपये कैसे? अच्छा विश्वविद्यालयके लिये दे रहे हैं। तो मुझे क्यों देते हैं, मालवीयजीको ही दे दीजिए न? देखिए मुस्कुरा रहे हैं। जजमानको बड़ी जल्दी ताड़ जाते हैं। कहीं जानेको तैयार खड़े हैं। चलिए, जल्दी मिल लीजिए।

मिल चुके न? देखिए, कैसी मधुर बातें करते हैं मालवीयजी? बस यही तो बात है कि मालवीयजी

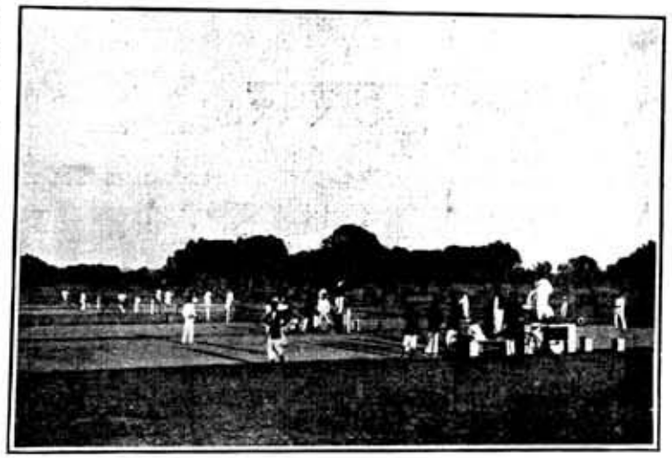

टेनिसका मैदान

जब बात करने लगते हैं तो बस तन्मय होकर करते हैं। देखिए मोटर खड़ी रह गई और सभा इन्तज़ार कर रही होगी पर मालवीयजीकी बात समाप्त नहीं हुई।

अच्छा तो अब तो प्रदक्षिणा भी हो चुकी और दक्षिणा भी दी जा चुकी, अब मुझे छुट्टी हो, प्रणाम।

न जाने कितने यात्री काशी आते हैं और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको देखकर उसके निर्मातासे जब उसकी तुलना करते हैं तो सहम जाते हैं। इसी शरीरने इतना बड़ा विश्वविद्यालय बनाया होगा? पर क्या आप समझते हो कि विश्वविद्यालय पूरा हो गया, अभी बहुत काम शेष है। शायद आधा ही काम हुआ होगा। अभी रुपएकी बहुत कमी है, देशके राजनीतिक आन्दोलनोंने हिन्दू विश्वविद्यालयको बड़ा झटका दिया पर हमारा विश्वास है कि ब्रह्माने मालवीयजीके भाग्यमें स्वतन्त्र भारतमें पूर्ण काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका दर्शन करना लिखकर भेजा है।

स्वदेशकी पुकारपर

भिक्षायुग

बोझीली गाड़ीमें बँधे हुए बैल तीन तरहके होते हैं। एक तो साँटेकी फटकार सहते जाते हैं, देह लहूलुहान हुई रहती है पर उन्हें यही सन्तोष होता है कि शामको सानी-भूसा मिल जायगा। ऐसे बैलसे मालिक खुश रहता है—बड़ा सीधा बैल है। दूसरा बैल गाड़ी खींचता है पर रोता है, ठहर जाता है, उसपर कोड़े पड़ते हैं, पर एक क़दम आगे नहीं बढ़ाता, बैठ जाता है। पैनी मारनेपर, पूँछ मरोड़नेपर भी टस-से-मस नहीं होता। मालिक मारते-मारते थक जाता है पर वह बैल अपनी टेकपर डटा रहता है। ऐसे बैलसे मालिक ज़्यादा परेशान रहता है। तीसरा बैल जब देखता है कि बोझ बढ़ रहा है और निर्दयी मालिक साँटे-पर-साँटा बरसा रहा है तो वह तैशमें आकर कूद-फाँद करता है, रस्सा तुड़ाता है, जुआ गिराकर एक ओर फुफकार कर खड़ा हो जाता है और अवसर पानेपर मालिकको सिंगियानेमें भी नहीं चूकता चाहे वह मार ही क्यों न डाला जाय। क्रमसे एक वेदान्ती है, दूसरा बौद्ध है, तीसरा कर्मयोगी है। एकका सिद्धान्त है कि संसारमें भोजन करना और लात खाना—ये ही दो काम हैं। दूसरा कहता है कि अगर कोई एक चपत लगावे तो दूसरा गाल भी उसकी ओर फेर देना कि कृपा करके इधर भी एक लगा दीजिए। तीसरा कहता है कि अगर कोई एक चाँटा लगावे तो तड़ातड़ उसको चार चाँटे लगा दो, तब उससे पूछो कि उसने क्यों मारा। पराधीन देशके राजनीतिक वायुमण्डलमें भी सदा इन्हीं तीन प्रकारके जीव रहा करते हैं। इनमेंसे कौन अच्छा और कौन बुरा है—यह हम क्या बतावें। यह तो आगेकी पीढ़ी ही बता सकेगी। इतिहास-कारको पक्षपातसे दूर ही रहना चाहिए और फिर एक अरबी भाषामें कहावत भी है कि अपनी ज़बानको लगाम दो कहीं यह तुम्हारा सिर न उतरवा ले। हमारी भूमिकाका अर्थ स्पष्ट ही है।

अब हमारी कथा आरम्भ होती है। किस प्रकार आर्य्योंके सुखी देशके द्वार उत्तर-पश्चिमकी आँधियोंने खोल दिए और किस प्रकार हमारे देशके सुनहले खेतोंने एकके बाद दूसरे लुटेरोंको लालच देकर बुलाया और किस प्रकार सुन्द-उपसुन्दकी तरह हम लोगोंने इस देशकी लक्ष्मीके लिये एक दूसरेकी हत्या की, यह कथा उन पन्नोंमें लिखी हुई है जो सड़ गए हैं, पुराने पड़ गए हैं, बस होलीकी देर है। मैजिक लालटेनकी तस्वीरोंकी तरह प्राचीन इतिहासने मनु और याज्ञवल्क्यके दृश्य दिखाए, बुद्ध और महावीरके संसारामोंका प्रदर्शन किया, चाणक्यके गुप्तचरोंके कारनामे पेश किए, अशोकके स्तूप और स्तम्भ सामने खड़े किए, गुप्त साम्राज्यका स्वर्ण-सिंहासन और उनके नवरत्नोंका परिचय कराया, हर्षके बल और विक्रमको प्रकट किया, महमूद ग़ज़नी और मुहम्मद ग़ोरीको हिन्दू मन्दिरों और राज्योंकी नींव खोदते दिखलाया,

फिर पद्मिनीकी भयङ्कर चिता, लँगड़े तैमूरकी लूटमार, पानीपतके मैदानमें बाबरका युद्ध, अकबरका विशाल साम्राज्य, महाराणा प्रतापका प्रताप, जहाँगीरकी ऐयाशी, शाहजहाँका ताज-महल, औरङ्गज़ेबकी ख़ूनी तलवार, छत्रपति शिवाजीकी वीरता, मुग़ल साम्राज्यका पतन, एक-एक करके सब दृश्य आँखोंके आगे ला रक्खे। फिर देखा कि पछुवाँ हवामें पाल उड़ाते हुए जहाज़ चले आ रहे हैं और मुग़लोंका विशाल वृक्ष जहाँसे उखड़ा था वहाँ एक विलायती पौधा लगा दिया गया जो हिन्दुस्थानी कारीगरोंके ख़ूनसे हम लोगोंकी कायरता और द्वेषके द्वारा सींचा जा रहा है।

पेड़ लहलहाने लगा। पर पेड़को ख़ूराक चाहिए थी। हिन्दुस्थानियोंमें ख़ून रह नहीं गया था। बेचारी अवधकी बेगमोंने अपने सतीत्वसे उसे बेबस होकर सींचा। कहना तो बहुत था पर इतना ही समझ लीजिए कि घड़ा भर चुका था। बस फूटनेकी देर थी। चरबीसे चढ़नेवाले कारतूसोंने घड़ेमें जो ठेस लगाई तो १० मई सन् १८५७ ई० को उसमेंसे ज्वालामुखी फूट पड़ा। हिन्दुस्थान जबड़े खोले खड़ा था, जो आया वह पिस गया। जैसे जौके साथ घुन भी पिस जाते हैं, वैसे ही पुरुषोंके साथ निरपराध स्त्रियाँ और बच्चे भी तलवार और बन्दूकोंके घाट उतार दिए गए। हिन्दुस्थान उस समय इङ्गलैण्डके लहूके लिये जीभ लपलपा रहा था। सब स्वाहा हो गया, चारों ओर लावा, कालिख और राख फैलाकर ज्वालामुखी शान्त हुआ और उसके शिखरपर रक्खा गया महारानी विक्टोरियाका सिंहासन।

क्या वह ग़दर था? तो हिन्दुस्थानी हिन्दुस्थानीको ही क्यों नहीं लूटता-मारता था। तो क्या यह धर्मकी रक्षाके लिये युद्ध था? तब कारतूस ही क्यों न नष्ट कर दिए गए। फिर क्या था? आप चाहें तो इसे स्वतन्त्रताका युद्ध कह सकते हैं या विदेशी जुएको कन्धेपरसे डालनेकी चेष्टा कह सकते हैं। इस ज्वालामुखीकी राख वैसे तो बहा दी गई और चारों ओर फिर शान्ति छा गई, पर अभी गर्मी बाक़ी थी। लोग स्वतन्त्र भारतका स्वप्न अभी देख रहे थे। बङ्गाल बेचारेपर सबसे अधिक मुसीबत आई और वह इतनी आई कि सीमा पार कर चुकी। शायद इसी लिये बङ्गालवाले पिस्तौलकी शरण लेनेमें नहीं हिचके। वहाँ बङ्किमचन्द्र चटर्जीके 'आनन्दमठ' ने बङ्गालको 'वन्दे मातरम्' सिखाना शुरू कर दिया था। उनकी भारत-माता बिल्कुल उनकी अधिष्ठात्र देवी कालीके जैसी ही थीं—'द्विसप्त कोटि भुजैर्धृत खर करवाले'। लोग सरकारसे चिढ़ चुके थे। कवि और लेखक सबका एक राग था, एक स्वर था। सभी तन्मय होकर स्वर मिला रहे थे 'वन्दे मातरम्'। सभी भारत-माताके शरीरके घावोंमेंसे पुकार-पुकारकर उसके बच्चोंको उसके अपमानोंकी याद दिला रहे थे। हृदय, वाणी और लेखनी तीनों भड़के हुए थे पर हाथ बँधे थे, तलवारें छिन चुकी थीं। जब शत्रु बलवान् होता है तो दो ही काम होते हैं—या तो उसे भरपेट गाली दो या उसकी प्रशंसा करके उसके आगे गिड़गिड़ाकर, अपने आत्म-सम्मानका ख़ून करके माफ़ी माँगो और अपना छुटकारा करा लो। पोरस और सिकन्दरका समय गया, जब बहादुर एक दूसरेकी क़द्र करना जानते थे। जवानोंमें जोश स्वाभाविक ही होता है। बङ्गालके विद्यार्थियोंने गुपचुप समितियाँ बनाईं, चोरी छिपे अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे करने शुरू किए। इनमेंसे कुछमें तो यहाँतक कड़ा नियम था कि वे अपने छातीसे ख़ून निकालकर प्रतिज्ञा करते थे। उनका उद्देश्य था 'स्वराज्य', बस।

इधर जवान लोग अपनी तरहसे युद्धकी तैयारी कर रहे थे, उधर कुछ बड़े लोग सभा-समाज खोलकर उसमें राजनीतिक मामलोंपर वाद-विवाद कर रहे थे। सन् १८७६ ई० में बङ्गालमें 'इण्डियन एसोसियेशन' बना जिसका उद्देश्य था "समान राजनीतिक स्वत्वों और आकाङ्क्षाओंके आधारपर भारतीय जनताको सङ्गठित करना"। कलकत्ता इसका केन्द्र रहा। इसी

प्रकार सन् १८८१ ई० में मद्रासमें 'मद्रास महाजन सभा' स्थापित हुई और वहाँका प्रान्तीय अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारतमें ३१ जनवरी सन् १८८५ ई० को महता, तैलङ्ग और तैयबजीको मण्डलीने 'बौम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन' बनाया। सभी प्रान्त एक राजनीतिक मञ्चकी तलाशमें थे। श्री एलेन ऑक्टेवियन ह्यूमने सिविल सर्विससे छुट्टी पाकर 'इण्डियन यूनियन' नामक संस्था बनाई। २३ मार्च सन् १८८५ ई० को उन्होंने यह सूचना दी कि इण्डियन नेशनल यूनियनका पहला अधिवेशन पूनामें आगामी २५ से ३१ दिसम्बरको होगा। ह्यूम साहबका विचार था कि उक्त सभा जहाँ हुआ करे उसके सभापति उस प्रान्तके गवर्नर हों। उन्होंने तत्कालीन वायसराय लौर्ड डफ़रिनसे सलाह ली। उन्हें राजनीतिक सभाका आयोजन तो बहुत पसन्द आया, पर उन्होंने यह सलाह दी कि ऐसी सभाका सभापति गवर्नर नहीं होना चाहिए क्योंकि शायद उसके सामने लोग अपने विचार प्रकट करनेमें सङ्कोच करें।

ह्यूम साहबको यह बात ठीक जँची और सब प्रान्तोंके राजनीतिज्ञोंने भी यह सलाह मान ली। इस परिषद्के दो प्रत्यक्ष उद्देश्य थे। (१) राष्ट्रकी प्रगतिके कार्य्यमें जी-जानसे लगे हुए लोगोंका एक दूसरेसे परिचित होना। (२) आगामी वर्षके लिये राजनीतिक कार्य्योंका निर्णय करना।

पर पूनाके भाग्यमें स्वतन्त्रताका प्रथम समरक्षेत्र बनना नहीं लिखा था। वहाँ हैज़ा फैल गया और वह परिषद्, जिसे कांग्रेस कहते हैं, बम्बईमें करनेकी सलाह हुई। उसके अनुसार २८ दिसम्बर सन् १८८५ ई० को बम्बईमें दिनके बारह बजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कौलेज्के भवनमें कांग्रेसका पहला अधिवेशन हुआ। ह्यूम साहबके गम्भीर स्वरसे कांग्रेसका श्रीगणेश हुआ। उन्होंने श्रीयुत उमेशचन्द्र बैनर्जीको सभापति पदके लिये प्रस्ताव किया। माननीय सुब्रह्मण्य ऐयर और माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्गने उसका समर्थन और अनुमोदन किया। ह्यूम साहब 'कांग्रेसके पिता' कहलाने लगे।

इसमें सन्देह नहीं कि सन् १८५७ ई० के ज्वालामुखीने भारतकी पृथ्वी उपजाऊ बना दी। दो, चार, पाँच बरसके अन्तरसे बड़े-बड़े महापुरुष पैदा हुए। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक, श्री गोपालकृष्ण गोखले, पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी, देशबन्धु चित्तरञ्जनदास, श्री अरविन्द घोष आदि सब सन् १८५७ ई० की राखसे पैदा हुए—हृदयमें देशप्रेमकी पवित्र ज्वाला लिये हुए। अलग-अलग प्रान्तोंमें पलकर भी वे कांग्रेसके मञ्चपर जा मिले।

२८ दिसम्बर सन् १८८६ ई० को कलकत्तेमें स्वर्गीय श्री दादाभाई नौरोजीके सभापतित्वमें कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन हुआ। सब प्रान्तोंके चार सौ चालीस प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। 'व्यवस्थापक सभाओंके सुधार' पर कई सज्जन बोल चुके। लोगोंने देखा कि इन व्याख्यानोंके बीच एक गोरा-सा चौबीस-पचीस बरसका युवक पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य-जीसे कानाफूसी कर रहा है। देखते-देखते वह सभापतिसे आज्ञा माँगकर बोलने खड़ा हुआ। ज़रा वह युवक क़दका छोटा था। ह्यूम साहबने हाथोंसे उठाकर उसे कुर्सीपर खड़ा कर दिया। सफ़ेद अङ्गा बदनपर, सफ़ेद साफ़ा सिरपर, सफ़ेद दुपट्टा गलेमें और सफ़ेद चन्दनका टीका माथेपर लगाए, बाएँ हाथमें बाईं ओरका दुपट्टा लेकर उसे कमरके पीछे करके उसने धीरे-धीरे मीठी, शुद्ध, स्पष्ट, ललित अंग्रेज़ीमें बोलना शुरू किया। फिर वेग बढ़ा, स्वर बढ़ा, पर मिठास बनी रही। एक-एक शब्द कानको छूता था और हृदयमें बैठ जाता था। शरदके शुभ्र चन्द्रके समान वह राजनीतिक संसारपर सुधा बरसाता हुआ आया। उस वक्तृतामें शेरकी दहाड़का प्रभाव तो पूरा था पर उसकी भयङ्करता और कठोरता नहीं थी।

सौन थके नहि बैन सुनेते, नैन थके नहि रूप निहारे।

बाइस बार तालियाँ गड़गड़ाईं। सारे राष्ट्रने एक स्वरसे उसी दिन उसे अपना लिया। इसके विषयमें ह्यूम साहबने कलकत्ता कांग्रेसकी रिपोर्टमें लिखा है कि—'जिस वक्तृताके लिये कांग्रेस-मण्डपमें कई बार तालियाँ बजीं और जिस वक्तृताको जनताने बड़े उत्साहसे सुना वह उच्च कुलीन ब्राह्मण पण्डित मदनमोहन माल-वीयजीकी वक्तृता थी, जिनके गौर वर्ण, मनोहर आकृतिने प्रत्येक व्यक्तिको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और अचानक सभापतिके बराबरवाली कुर्सीपर कूदकर ऐसा सुन्दर, ज़ोरदार और धाराप्रवाह व्याख्यान दिया कि सब दङ्ग रह गए।' उस व्याख्यानका एक वाक्य तो अमर हो गया 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर भी नहीं। अंग्रेज़ोंकी राजनीतिक बाइबिलका यह प्रथम आदेश है।'

यहीं मालवीयजीका राजा रामपालसिंह और पण्डित दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पतिसे परिचय हुआ। मालवीयजी स्वयं कहते हैं कि यह कांग्रेस उनकी सारी सफलताकी पहली सीढ़ी रही है और वे यह भी कहा करते हैं कि मैं उस कांग्रेसमें जैसा बोला वैसा फिर कभी न बोल सका।

सन् १८८८ ई० में मद्रासमें कांग्रेस हुई। मालवीयजी फिर उसी विषयपर उसी उत्साह और जोशसे बोले और उनकी इस वक्तृतापर राजा सर टी० माधवराव, दीवान बहादुर आर० रघुनाथराव और श्री अर्डले नौर्टन जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियोंने उनकी प्रशंसा की। ह्यूम साहबने उस सालकी कांग्रेसकी रिपोर्टकी प्रस्तावनामें लिखा है कि—"तब पण्डित मदनमोहन मालवीय खड़े हुए जो इस विषयके सबसे युवा और उत्साही कार्य्यकर्त्ता थे और उनके व्याख्यानमेंसे ही हम बहुत अधिक उल्लेख करनेको बाध्य हुए हैं, क्योंकि यद्यपि अन्तमें आकर वह अधिक जोशीला हो गया था पर उसमें ऐसी सच्ची बातें हैं जिनपर सावधानीसे विचार करना ही चाहिए।" कांग्रेसके प्रभातमें अरुण बनकर मालवीयजी आए और धीरे-धीरे वहाँके प्रतापी सूर्य्य बन गए। यह समय कांग्रेसका भिक्षा-युग था। दबी ज़बानसे महारानी विक्टोरियाकी घोषणाकी दुहाई दे-देकर ये लोग अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंके लिये पल्ला फैलाते थे और जो कुछ रूखा-सूखा खिड़कीमेंसे फेंक दिया जाता था उसीमें मस्त रहते थे। उस समय कुछ लोग तो सच्चे दिलसे भारतकी भलाईके लिये वहाँ आते थे, कुछ अपनी विद्वत्ता झाड़ने आते थे और कुछ शौक़िया तमाशा देखने जाते थे। पहले कांग्रेसमें मालवीयजी एक दर्शक प्रतिनिधि बनकर गए थे, पर पहली ही कांग्रेमें इन्होंने अपना लक्ष्य ढूँढ़ लिया, स्कूलके बाहर एक बहुत बड़े संसारके लिये ये निकल पड़े। अध्यापक मालवीयजी अब राजनीतिज्ञ मालवीयजी बन गए। पर एक बात थी कि उस समयके लोग कांग्रेसमें बड़ी तैयारी करके बोलते थे। यह नहीं कि जो मुँहमें आया कह दिया। बहुत सोच-विचारकर, बड़ी गम्भीरतासे, बड़े ढङ्गसे बातें कहीं जाती थीं। उन सब व्याख्यानोंके नीचे एक ही सिद्धान्त काम कर रहा था—'साँप मरे पर लाठी न टूटे।' वैसे व्याख्यान अब सुननेमें ही नहीं आते।

मालवीयजीकी भी जवानी थी, उत्साह छलका पड़ता था, देशमें ऐसे किसी आदमीकी बड़ी ज़रूरत थी जो कांग्रेसको अपनी समझे और मन लगाकर इसके लिये काम करे। मालवीयजी नौकरी तो छोड़ ही चुके थे। कांग्रेसपर इन्होंने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया और इसीलिये आजतक उससे नाता जोड़े हुए हैं। सन् १८८७ ई० की मद्रास कांग्रेसमें सब प्रान्तोंसे प्रतिनिधि आनेकी तो आशा थी, पर युक्तप्रान्तसे कोई आशा नहीं थी। मालवीयजीको जब यह गन्ध मिली तो वे तत्काल काममें जुट गए। यद्यपि उस समय उनकी जेबें ख़ाली ही थीं, पर सब सङ्कट सहकर भी वे प्रान्त भरमें घूमे। भला कौन इतनी दूर काले कोस जाने लगा। पर मालवीयजी डटे रहे और उन्हींका प्रयत्न था कि उस साल मद्रास जैसी दूर जगह भी पैंतालीस प्रतिनिधि पहुँच ही गए। ह्यूम साहब इनसे इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें उत्तर-पश्चिमी

प्रान्त (युक्तप्रान्त) एसोसिएशनका तथा स्थायी कांग्रेस कमिटीका मन्त्री बना दिया। इस पदपर ये कई बरसतक बने रहे।

मद्रासके बाद प्रयागकी बारी आई। असलमें ह्यूम साहब ही कांग्रेसको अगले वर्ष प्रयागमें ले जानेको उत्सुक थे और उन्होंने मालवीयजीको सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति समझा, जो कांग्रेसको प्रयागमें निमन्त्रित करे और अधिवेशन सफल बनावे। स्वागतकारिणी-समिति बनी। कांग्रेस सरकारकी आँखोंमें खटकती थी। कांग्रेसके लिये जगह मिलनेमें भी दिक्कत हुई। स्वागत-समितिके मन्त्री मालवीयजी थे और रायबहादुर लाला रामचरणदास और बाबू चारुचन्द मित्र भी हाथ बँटा रहे थे। पण्डित विश्वम्भरनाथजी और पण्डित अयोध्यानाथजी शामिल हो गए। पण्डित अयोध्यानाथजीका आना था कि सब काम ज़ोरोंसे होने लगा और २६ दिसम्बर सन् १८८८ ई० को श्री जौर्ज यूलके सभापतित्वमें ऐसा शानदार अधिवेशन हुआ कि सब लोग आजतक याद करते हैं। उसका एक कारण यह है कि मालवीयजीका कोई काम छोटा या भोंड़ा नहीं होता। उनका जो काम होता है वह विशाल और शानदार होता है।

कांग्रेसके जन्मदाताओंके साथ मालवीयजी

बाईं ओरसे श्री राजा रामपालसिंह, श्री कप्तान वेनन, श्री ए० ओ० ह्यूम, श्री चारुचन्द्र मित्र और श्री पण्डित मदनमोहन मालवीयजी। सन् १८८८ ई० में आजसे पचास बरस पहले।

कांग्रेसकी इस सम्मिलित शक्तिको देखकर सरकारके हाथ-पाँव फूलने लगे। युक्तप्रान्तके गवर्नर और ह्यूम साहबके बीच बड़ी लिखा-पढ़ी हुई। लौर्ड डफ़रिन यद्यपि बाहरसे कांग्रेसकी बुराई करते थे, पर उन्होंने नवम्बर सन् १८८८ ई० में जाते समय एक गुप्त आदेश रख छोड़ा कि कांग्रेसकी माँगोंपर ध्यान देना चाहिए अर्थात् व्यवस्थापिका सभाओंका फिरसे निर्माण हो। लौर्ड क्रौसके इण्डिया कौन्सिलस ऐक्टने कुछ सुधार दिए। बस नेता लोग राजनीतिक सङ्गठन छोड़कर नई कौन्सिलोंमें स्थान पानेमें जुट गए। बेचारी देशभक्ति वोटरोंके धक्कोंमें पिस गई। फल यह हुआ कि सरकारके मनमें जो हौआ बैठा हुआ था, वह दूर हो गया और कांग्रेसमें हर साल कोरे प्रस्ताव पास होते रहे।

कांग्रेसका कोई भी अधिवेशन ऐसा नहीं हुआ जिसमें मालवीयजीकी मधुर वाणी न सुनाई दी हो। कोई भी ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव नहीं हुआ जिसपर मालवीयजीने अपने विचार न प्रकट किए हों और यह खूबी रही है कि जनमतके विरोधमें बोलनेपर भी लोग उन्हें चुप होकर सुनते थे मानो कोई देवदूत कोई दैवी सन्देश लेकर आ पहुँचा हो। यह उनकी अलौकिक वाणी और उनकी आकर्षक मूर्त्तिका ही प्रभाव था, और यह प्रभाव उनका बुढ़ापा भी न छीन सका। प्रयागके सन् १८८८ ई० के अधिवेशनके बाद बम्बई, कलकत्ता और नागपुरमें कांग्रेसके अधिवेशन हुए। फिर सन् १८९२ ई० में प्रयागमें ही बस करना तै हुआ। पर उन्हीं दिनों पं० अयोध्यानाथजीकी दुःखद मृत्युने सबको निराश कर दिया, यहाँतक कि कुछ लोगोंने प्रस्ताव किया कि संयुक्त प्रधान मन्त्री श्री उमेशचन्द्र बैनर्जीको सूचना दे दी जाय कि कांग्रेस प्रयागमें न हो सकेगी। किन्तु मालवीयजी प्रयागकी यह बदनामी कैसे सह सकते थे। वे फिर अपनी सारी शक्तियाँ लेकर जुट गए और फिर सन् १८९२ ई० में श्री उमेशचन्द्र बैनर्जीके सभापतित्वमें ही कांग्रेसकी आठवीं बैठक भी सकुशल हो गई।

इसके बाद लाहौर, मदरास, पूना, कलकत्ता, अमरावती, उखनऊ, अहमदाबाद और बम्बईमें कांग्रेसकी बैठकें हुईं। प्रस्ताव पास होते रहे पर उनकी वही गति हुई जो रद्दी काग़ज़की होती है। सरकार कानमें तेल डाले पड़ी रही। नेताओंके ज़ोरदार गर्जन, मेज़ोंपर पटके हुए हाथोंकी धमक और सुन्दर व्याख्यानोंपर बजी हुई तालियोंकी गड़गड़ाहट कुछ भी सरकारको न सुनाई दी। लोग ऊब उठे। यह सोचा गया कि अपने पैरोंपर खड़ा हुआ जाय। यह तो सभी जानते हैं कि जब अंग्रेज़की जेब कटती है तब उसे होश आता है। यह राय दी गई कि बृटिश मालका बहिष्कार किया जाय। कांग्रेसके पुराने अखाड़िए इस शस्त्रका प्रयोग करनेमें ज़रा सकुचाते थे। पर लौर्ड कर्ज़नने भारतमें पधारकर बङ्गालपर तलवार चलाकर दो टुकड़े कर डाले। माननीय गोपालकृष्ण गोखलेके सभापतित्वमें काशीमें कांग्रेस बैठी और बङ्गभङ्गके विरोधमें बृटिश मालका बहिष्कार करना स्वीकृत हो गया, यद्यपि कांग्रेसने उसे अपने विस्तृत कार्य्यक्रममें लेना स्वीकार नहीं किया। इसी कांग्रेसकी एक घटना है। उसके साथ ही सोशल कानफ्रेन्सका भी अधिवेशन हुआ था। कानफ्रेन्सके लिये सब प्रबन्ध हो गया था। बम्बई हाईकोर्टके जज सर नारायण चन्दावरकर सोशल कानफ्रेन्सके प्रधान मन्त्री थे। उनके ठहरानेका भार स्वर्गवासी राजा माधवलालने अपने ऊपर लिया था। जिस दिन प्रातःकाल सवेरे चार बजे उनको काशी पहुँचना था उसके एक दिन पहले शामको तारद्वारा मालूम हुआ कि श्री चन्दावरकर बड़े सवेरे पहुँचेंगे। कांग्रेस राजघाटके क़िलेपर हुई थी। वहीं राजा माधवलालका खेमा था। पण्डित रामनारायण मिश्र रातको उनके यहाँ पहुँचे। उनसे भेंट नहीं हुई। उस घबराहटमें ये राजा माधवलालके लोहराबीरवाले बगीचेमें गए। वहाँ भी वे नहीं मिले। वहाँ कांग्रेसके मनोनीत सभापति श्री गोखलेजी ठहरे हुए थे। वे उनसे मिले

और प्रार्थना की कि वे सर नारायणको अपने यहाँ ठहरा लें। उन्होंने कहा कि सर नारायणके लिये पूरा मकान चाहिए। वे 'रानडे महोदय' की तरह नहीं हैं कि किसीके साथ थोड़ी जगहमें भी निर्वाह कर लें। बिना कुछ प्रबन्ध किए ही ईश्वरपर भरोसा कर वे सबेरे तीन बजे काशी स्टेशनपर पहुँचे। वे अत्यन्त व्याकुल थे। रेल आ गई, पर संयोगसे सर नारायण न आए क्योंकि वे मोग़लसरायमें रह गए थे और उन्होंने अपने नौकरोंसे कहला भेजा था कि वे दूसरी रेलसे, जो तीन-चार घण्टे बाद आनेवाली थी, आवेंगे। मिश्रजी पाँच बजे फिर माधवलालजीके ख़ेमेंमें गए। दिसम्बरके जाड़ेका सबेरा था। मालूम हुआ कि वे अभी सो रहे हैं। पीछेकी तरफ एक ख़ेमेंमें मालवीयजी दिखलाई दिए। वे शौचादिसे उसी समय निवृत्त हुए थे। उन्हें देखते पूछ बैठे कि "इतने सबेरे कहाँ आए?" उन्होंने सारी कथा कह दी। सुनकर मालवीयजी हँसकर बोले "सर नारायणको इसी ख़ेमेंमें ले आओ।" यह कहते ही वह खड़े हो गए और उन्होंने नौकरसे कहा कि असबाब सब सामने पेड़के नीचे ले चलो। मिश्रजीने उनसे प्रार्थना की कि वे ऐसा न करें; कहीं-न-कहीं बन्दोबस्त हो ही जायगा। परन्तु उन्होंने न माना। स्वयं भी असबाब बाहर उठाकर रखना शुरू कर दिया और उनसे कहा, जाओ स्टेशनसे उनको ले आओ। रेलका समय निकट था। सर नारायण थोड़े ही देरमें आ गए। वे उसी ख़ेमेंमें ठहर गए। दूरके दो पेड़ोंके नीचे पर्दा लगाकर श्री मालवीयजीने अपना प्रबन्ध कर लिया। दिन चढ़नेपर बहुतसे लोगोंने श्री मालवीयजी-को उस पेड़के नीचे देखा। मालवीयजीकी ऐसी ही बातोंने उन्हें राष्ट्रकी पताका लेकर आगे चलनेका यश दिया है।

अगले वर्ष कलकत्तेमें कांग्रेस होनेवाली थी। क्षुब्ध बङ्गालने लोकमान्य तिलकका नाम सभापतिके लिये पेश किया। 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' पत्रने सबसे पहले बावैला मचाया और हिन्दुस्थानी नेताओंको दो भागोंमें बाँट दिया—'गरम दल और नरम दल'। तिलकजी गरम दलवालोंमें थे। सरकारके पिट्ठू लोगोंके कान खड़े हुए और उन्होंने कुछ गोलमाल करके श्री दादाभाई नौरोजीको राज़ी कर लिया। ज्यों-त्यों करके श्री दादाभाई नौरोजी सभापति तो हुए पर उन्होंने गरम दलवालोंके उठाए हुए राष्ट्रीय झण्डेको झुकाना ठीक नहीं समझा और उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि कांग्रेसका ध्येय ऐसा स्वतन्त्र शासन है जैसा उपनिवेशों तथा ग्रेट बृटेन और आयरलैण्डमें है—अर्थात् एक शब्दमें 'स्वराज'।

अगले वर्ष डा० रासबिहारी घोषके सभापतित्वमें सूरतमें कांग्रेस हुई और गरम तथा नरम दलवालोंका द्वेष, जो धीरे-धीरे सुलग रहा था, भड़क उठा। गाली-गलौज, हल्ला-गुल्ला हुआ। किसीने सर फ़ीरोजशाह मेहतापर जूता चला दिया जो सुरेन्द्रनाथ बैनर्जीको छूता हुआ निकल गया और जिसे उन्होंने 'मेरी देशसेवाका इनाम' कहकर अपने घर टाँग रक्खा है। कुर्सियाँ उठाकर मारी गईं। पुलीस आई और उसने मण्डप ख़ाली करनेकी घोषणा की। बड़ी भगदड़ मची। पाँच मिनटमें सारा मण्डप ख़ाली हो गया। केवल एक गौर, धवल वस्त्रधारी व्यक्ति एक खम्भेसे लगकर खड़ा हुआ चुप-चाप रो रहा था। उसकी आँखोंसे आसुओंकी धारा बह रही थी। वह मालवीयजी ही थे। दो एक युवक हाथ पकड़कर किसी तरह उन्हें बाहर लाए। मालवीयजीको इस दुर्घटनासे बड़ी पीड़ा हुई, बड़ा क्लेश हुआ और वे कहा करते हैं कि सूरत कांग्रेसने मेरी तन्दुरुस्ती ले ली। मालवीयजीको ऐसा गहरा आन्तरिक दुःख हुआ कि उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। शायद देश भरमें इस घटनाका इतना अधिक दुःख किसीको न हुआ होगा।

कांग्रेसका रूप बदल गया, भिक्षा-युगसे कांग्रेसने विद्रोह-युगमें पदार्पण कर दिया।

विद्रोह युग

यों तो लौर्ड कर्ज़नने जिस दिन बङ्गालके दो टुकड़े किए थे उसी दिनसे हिन्दुस्थानका राजनीतिक आकाश काला पड़ने लगा था। घटाएँ उठने लगी थीं। बिजली कड़कने लगी थी। लौर्ड कर्ज़नके अपराधके कारण न जाने कितने अंग्रेज़ नर-नारियोंपर अचानक बिजलियाँ गिरीं। सूरत कांग्रेसमें नरम और गरम दलवालोंमें जो झगड़ा हुआ उससे कांग्रेसकी हवा बदल गई। सारा देश ही दो दलोंमें बँट गया। पर शीघ्र ही कांग्रेसके बड़े बूढ़े लोगोंने मिलकर कांग्रेसकी नियमावलि बनाई और 'डमीनियम स्टेटस' (उपनिवेश स्वातन्त्र्य) को अपना ध्येय बना लिया और यह भी निश्चय हुआ कि यह ध्येय वैध प्रयत्नोंसे ही प्राप्त किया जायगा। मालवीयजी गरम दलमें तो न मिल सके पर नरमदलमें भी न रह सके। कूट राजनीतिज्ञकी भाँति वे विषकी जगह गुड़ खिलाकर ही अपना काम निकालना चाहते थे। एक बात और भी हुई कि इस बारके प्रस्ताव कोरे प्रस्ताव न रह गए। बङ्गालके प्रसिद्ध नेता विपिनचन्द्रपाल घूम-घूमकर राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय-शिक्षाका प्रचार कर रहे थे। सब जगह राष्ट्रीय विद्यालय जन्म ले रहे थे। साथ ही स्वदेशी और बहिष्कारका आन्दोलन भी ज़ोरोंपर था। जान पड़ता था देशमें जोश है, जान है। पचास बरसके बाद देश फिर आँखें मलकर, अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। हाथके कपड़ेका उद्योग फिर शुरू हुआ। जुलाहोंके करघे फिर चेतने लगे। इधर मालवीयजीका स्वदेशी प्रचारकी पताका लिये पुरानी दस्तकारीको जगाते हुए, उसकी पीठ ठोंकते घूम रहे थे। उस समय मालवीयजी एक अद्भुत शक्ति लिए हुए थे। सरकारी भवनोंमेंसे एक ओर उनकी गूँज सरकारको चेतावनी दे रही थी, दूसरी ओर कांग्रेसके मञ्चसे सारे देशको कर्त्तव्य-मार्ग सुझा रही थी। दोनों हाथ अपना काम कर रहे थे पूरी शक्तिके साथ।

पर इधर जैसे-जैसे लोग उभड़ रहे थे, सिर उठा रहे थे, त्यों-त्यों सरकार उनको दबानेका प्रयत्न कर रही थी। ये सब आन्दोलन सरकारकी आँखोंमें खटकते थे। स्वदेशी आन्दोलनने बृटिश व्यापारको भी तो ठोकर लगाई थी। इन्हीं दिनों बङ्गालमें नौ नेताओंको देश-निकाला हो गया। इधर पञ्जाबमें 'चिनाब नहरमें कर वृद्धि' किए जानेपर झगड़ा उठा। अप्रैलमें लाला लाजपतराय और सरदार अजित सिंहको देशनिकाला हो गया। सरकारने ख़ुद ही पलीतेमें आग लगाई। ३० अप्रैल सन् १९०८ ई० को मुज़फ्फ़र-पुरमें दो अंग्रेज़ स्त्रियाँ बमसे मारी गईं। अठारह वर्षका युवक खुदीराम बोस बम फेंकनेके अपराधमें पकड़ा गया। उसे फाँसी हुई। स्वामी विवेकानन्दके भाई श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त 'युगान्तर' में खुल्लमखुल्ला हिंसावादका प्रचार कर रहे थे। १३ जुलाई सन् १९०८ ई० को लोकमान्य तिलक भी पकड़ लिए गए और पाँच दिनोंकी सुनवाईमें उन्हें छः सालके देश-निकालेकी सज़ा हो गई। आन्ध्रके श्री हरि सर्वोत्तमराव भी नौ महीनेके लिये लद गए।

भारतमें तो इक्के-दुक्के खून हो ही रहे थे उधर सन् १९०७ में लन्दनकी एक सभामें मदनलाल धिंगड़ाने सर कर्ज़न वाइलीको गोली मार दी। एक ओर हिन्दुस्थान हथेलीपर जान रखकर 'करटकेनैव करटकम्' का पाठ पढ़ रहा था, दूसरी ओर देशके पुराने अनुभवी नेता वैध विधिसे 'डमीनियन स्टेटसके' लिये कमर कसे तैयार खड़े थे। दोनोंका लक्ष्य एक ही था। पर एक तो जङ्गलके बीचसे होकर शेर, भेड़िए

और बाघको मारकर अपनी जान जोखिममें डालकर छोटे रास्तेसे जङ्गल पार करना चाहते थे, दूसरे लोग साफ़ रास्तेसे चक्कर लगाकर वहाँ पहुँचना चाहते थे। पर चक्रव्यूहमें सहसा घुसकर चाहे अभिमन्यु मारा भले ही गया हो पर इससे धर्मराजकी आँखें खुल गईं। इन नौजवानोंके रक्तसे भारतका राष्ट्रीय आन्दोलन चमक उठा। सन् १९०८ ई० में लखनऊके प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलनके मालवीयजी अध्यक्ष बनाए गए। २८ दिसम्बर सन् १९०८ ई० को मद्रासमें कांग्रेसकी एक बैठक होनेके बाद २७ दिसम्बर सन् १९०९ ई० को लाहौरमें कांग्रेसका चौबीसवाँ अधिवेशन हुआ। चुने गए थे सर फ़ीरोज़शाह मेहता पर कांग्रेस होनेके छः दिन पहले ही उन्होंने इनकार कर दिया। अचानक सबकी दृष्टि प्रयागपर पड़ी और मालवीयजी ही राष्ट्रपति बनाए गए। मालवीयजीने अध्यक्षपदसे जो भाषण दिया वह लिखा हुआ नहीं था बिलकुल जबानी था। बड़ा जोशीला व्याख्यान हुआ। मालवीयजी परम वैष्णव ब्राह्मणका संस्कार लेकर हत्याका समर्थन नहीं कर सकते थे। उनके हृदयमें हिंसाका अभाव था। वे योद्धा तो थे पर ऐसे योद्धा थे जो तलवार न चलावे बल्कि उलटे हेमलिनके बाँसुरी बजानेवालेके समान सब लोग—उसके शत्रु भी—उसके पीछे पीछे चलने लगें। इसी लिये तिलकजीके इतने मित्र होते हुए भी वे पूरी तरहसे तिलकजीका साथ न दे सके। उन्होंने शुरूसे ही भारतकी ठीक नब्ज़ पहचानी थी। वे समझ गए थे कि ऐसे दुर्बल रोगीको तेज़ दवा अवश्य हानि पहुँचावेगी। हम समझते हैं कि जब-जब भारतको तेज़ दवा दिए जानेका प्रस्ताव हुआ तब-तब मालवीयजीने वैद्योंको रोका, जल्दीसे अच्छा होनेकी इच्छा करनेवाला रोगी भी मालवीयजीपर बड़ा झुझलाया पर उसमें तेज़ गोली पचानेकी शक्ति नहीं थी। सबको आख़िर मालवीयजीके नुस्ख़ेकी शरण लेनी पड़ी :—

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय॥

उन्होंने अपने भाषणमें महारानी विक्टोरियाकी घोषणाकी दुहाई भी दी पर साथ ही सरकारकी नीतिका भी ज़ोरदार खण्डन किया। यह व्याख्यान मालवीयजीके स्वभावका प्रतिबिम्ब ही समझना चाहिए। वह शत्रुसे लोहा लेते समय, नाभिसे नीचे चोट लगानेकी नीयत तो रखते ही नहीं साथ ही बन्दूककी नलीमें गोलीकी जगह फूल रखकर मारते हैं, जिससे शरीरमें तो घाव नहीं होता पर हृदयमें हो जाता है। अगर भारतका शासन एक ही व्यक्तिके हाथमें होता तो शायद मालवीयजी कभीका उसे जीत चुकते। पर जहाँ हृदय ही न हो वहाँ निशाना लगाया ही कहाँ जाय। अपने अंग्रेज़ीके भाषणको उन्होंने गीता, भागवत, महाभारत और मनुस्मृति आदिके श्लोकोंसे अलंकृत किया था, जिनको अख़बारोंमें पढ़कर उनके परम गुरु महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य बहुत प्रसन्न होते थे और कहते थे—'क्यों न हो—क्यों न हो, मालवीय व्यासका बेटा है न! वह शास्त्रीय असर कहाँ जा सकता है।' सरकार अपनी बङ्गभङ्गकी नीतिकी निःसारता समझ चुकी थी पर वह एकदम उसे रद्द करके अपनी नाक नहीं कटाना चाहती थी। लौर्ड मिण्टोके जानेपर लौर्ड हार्डिञ्ज आए और लौर्ड मिडिल्टनकी जगह लौर्ड क्रू भारत-मन्त्री बने। सम्राट् पञ्चम जार्जके राज्याभिषेकके अवसरपर बङ्गाल फिर जोड़ दिया गया और फिर हिन्दुस्थान राजभक्त बन गया जैसी इसकी सदियों पुरानी आदत है। पर इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। सन् १९१२ में लौर्ड हार्डिञ्ज जब जलूसके साथ हाथीपर जा रहे थे, उनपर किसीने बम फेंक दिया। बाँकीपुर कांग्रेसमें इसपर बड़ा रोष प्रकट किया गया पर इसीके बाद सरकारने हिन्दुस्थानको नागपाशमें बाँधना शुरू कर दिया। सन् १९१० ई०में ही प्रेस-ऐक्ट क़ानून बन गया। सन् १९१३ ई०में उसके ख़िलाफ़ बड़े ज़ोरोंसे कोलाहल मचा और कांग्रेसके मञ्चसे न जाने कितनी बार उसका विरोध किया गया।

सन् १९१४ ई०में गदेपर आरामसे लेटे हुए योरोपको जर्मनीकी सङ्गीनोंने चौंकाकर उठा दिया। जर्मनीके गर्जनसे एक बार सारा संसार दहल उठा। हिन्दुस्थानवाले अपना रोना-धोना भूलकर बृटिश-साम्राज्यके क़िलेकी रक्षामें जी-जानसे जुट गए। भारतके असंख्य अनमोल लालोंने अपनी स्त्रियोंका सिन्दूर उतारकर अँग्रेज़ और फ़्रान्सीसी स्त्रियोंका सुहाग सँवारा। अंग्रेज भले ही हमें कायर कहें, असभ्य कहें और अयोग्य कहें पर योरोपके समरक्षेत्रमें जब विजयश्री दौड़ी हुई क़ैसर विलियमकी ओर चली जा रही थी उस समय भारतीयोंनेही अपने वीर शरीरोंकी पालकीपर उसे सम्मानके साथ लन्दन पहुँचाया था। वीर हिन्दुस्थानियोंको उस अमर सहायताका बदला कोई क्या देगा।

इन्हीं दिनों सन् १९१४ ई०में ही मदरास कांग्रेस हुई और उसमें यह प्रस्ताव हुआ कि जिन देशोंसे हिन्दुस्थानी लोग निकाले जाते हों उनका माल यहाँ न मँगाया जाय। श्रीमती एनी बेसेण्टने इन्हीं दिनों लौर्ड पेण्टलैण्डके साथ होमरूल आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने मदनपल्लीकी सारी थियोसोफ़िकल शिक्षण-संस्थाओंका सम्बन्ध सरकारसे तोड़ दिया। श्री बी. पी. वाडिया और श्री सी. पी. रामस्वामी ऐयरने होमरूल लीगका ज़ोरोंसे सङ्गठन किया। 'न्यू इण्डिया' पत्र इस होमरूल आन्दोलनका 'लाउड स्पीकर' बना। सरकारने फिर अपना डण्डा उठाया और १६ जून सन् १९१७ ई०को श्रीमती एनी बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया महोदय उटकमण्डमें नज़रबन्द कर लिए गए। मालवीयजीने भी होमरूल आन्दोलनको लेकर दौरे किए और व्याख्यान दिए। उस समय मालवीयजीके होमरूलके व्याख्यानोंको सुनकर एक शायर साहबने फ़रमाया था—

कहते हैं मालवीजी हम होमरूल लेंगे।
दीवाने हो गए हैं गूलरसे फूल लेंगे॥

उसीका मुँहतोड़ जवाब कविवर मैथिलीशरण गुप्तजीने दिया—

जब होमरूल होगा बरबैङ्क जन्म लेंगे।
हाँ-हाँ जनाब तब तो गूलर भी फूल देंगे॥

श्रीमती एनी बेसेण्टके क़ैद हो जानेपर भी मालवीयजीके होमरूल आन्दोलनपर सरकारकी नज़र न गई। मालवीयजीको देश अपना समझता था और सरकार अपना हितैषी समझती थी।

श्रीमती बेसेण्ट जब नज़रबन्द हुईं तो उनके आन्दोलनने और ज़ोर पकड़ा। श्री मुहम्मद अली जिन्ना भी उसमें शामिल हो गए। सरकारी हुक्म और ख़ुफ़िया पुलीसकी आँखोंमें धूल झोंककर भी वे अपने 'न्यू इण्डिया' और 'कौमन वील' नामक पत्रोंमें बराबर लेख लिखती रहीं। जितने दिन ये नज़रबन्द रहीं उतने दिन आन्दोलन और भी ज़ोरोंसे चला जा रहा था, पर सरकार उनको छोड़नेसे पहले अपनी नाक टटोलती जा रही थी। श्री मौण्टेग्यूने अपनी डायरीमें एक कहानी लिखकर उसका एक परिणाम निकाला था। उन्होंने लिखा था :—"शिवने पार्वतीजीके बावन टुकड़े किए, किन्तु फिर देखा तो मालूम हुआ कि एक नहीं बावन पार्वतियाँ मौजूद हो गई हैं। ठीक यही दशा भारत-सरकारकी हुई, जब उसने श्रीमती बेसेण्टको नज़रबन्द किया।"

इधर भारतमें होमरूलका तूफ़ान मचा हुआ था, उधर लन्दनमें एक शाही युद्धपरिषद्की बैठक हुई जिसमें भारतकी ओरसे महाराज बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसाद सिंह शामिल हुए और इनकी बड़ी प्रशंसा हुई। इधर अप्रैल सन् १९१७ ई० को कांग्रेसकी महासमितिकी बैठक हुई कि एक शिष्ट समिति विलायत भेजी जाय और वहीं कांग्रेसका अधिवेशन हो। इस शिष्ट मण्डलमें मालवीयजीका नाम भी पेश हुआ।

इसीके पहले माननीय अम्बिकाचरण मजूमदारकी अध्यक्षतामें लखनऊमें कांग्रेस हुई। यह कांग्रेस भारतमें राजनीतिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी समझी जाती है। २२, २३, २४ अप्रैल सन् १९१६ ई० को प्रयागमें पण्डित मोतीलाल नेहरूके निवास-स्थानपर

कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सदस्योंकी सम्मिलित बैठक की गई। बड़ी गर्मागर्मी बहसें हुई पर हिन्दू-मुस्लिम एकता-सम्बन्धी फ़ैसला हो गया। लखनऊकी कांग्रेसको देखकर यह जान पड़ने लगा था कि भारतके दिन फिर गए। देखा गया कि सन् १९०७ ई० के बाद कांग्रेसके मञ्चपर लोकमान्य तिलक और श्री खापर्डे, रासबिहारी घोष और सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी एक ही साथ बैठे हुए हैं। फिर मेल हो गया। इस कांग्रेसमें सर जेम्स मेस्टन् भी अधिकारी वर्ग और अपनी धर्मपत्नीके साथ शामिल हुए थे।

इधर कुछ प्रान्त सत्याग्रहपर तुले हुए थे पर डा० एनी बेसेण्ट उसके लिये तैयार नहीं थीं, क्योंकि मौण्टेग्यू साहबके भारत-मन्त्री बननेकी आशा हो रही थी और वे भारत-मन्त्री बन भी गए। अब तो बड़ी आशा हुई और उन्होंने २० अगस्त सन् १९१७ ई० को उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन-भार देनेकी घोषणा कर दी। १६ सितम्बरको डा० एनी बेसेण्ट भी रिहा हो गई थीं। और २६ दिसम्बर सन् १९१७ ई० को उन्हींकी अध्यक्षतामें कलकत्तेमें कांग्रेसकी बैठक हुई। इसके बाद बम्बईमें विशेष अधिवेशन हुआ और उसके बाद फिर दिल्लीमें मालवीयजीकी अध्यक्षतामें कांग्रेस हुई। उनकी वक्तृता बड़ी ज़ोरदार हुई। उसका विषय वही था—'मौण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड योजना।' मालवीयजीने मौण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड सुधारोंपर एक सुघड़, गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण लेख भी लिखा था और उसके गुणों तथा अवगुणोंपर भी काफ़ी प्रकाश डाला था।

यद्यपि बहुत दिनोंसे लोग 'किसान-किसान' चिल्ला रहे थे और उन्हींका भला करनेका दावा भी करते थे पर कांग्रेसके पण्डालमें उनके लिये कोई जगह न थी। कांग्रेसमें रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े नज़र आते थे, बड़े-बड़े लोगोंकी मजलिस थी, फटे-पुराने कपड़ेवाले बेचारे ग़रीब गँवार कहलानेवाले किसानका वहाँ प्रवेश नहीं था। कांग्रेसमें टिकट भी बड़ा गहरा लगता था। जिसे दोनों जून भरपेट भोजन न मिलता हो वह टिकटके लिये पैसे कहाँसे लावे। मालवीयजीने पहली बार कांग्रेसका द्वार इन बेचारे दरिद्र किसानोंके लिये खोल दिया और दो सौ किसान बिना टिकट कांग्रेसके पण्डालमें प्रवेश किए गए। पहली ही बार मालूम हुआ कि कांग्रेसमें किसानोंका भी स्थान है।

दिल्ली कांग्रेससे भारतको कुछ शान्ति नहीं मिली थी क्योंकि उसके बाद ही ६ फ़रवरी सन् १९१९ को विलियम विन्सेण्टने रौलट बिलका दर्शन कराया। मालवीयजीने इस अवसरपर जो बड़ी व्यवस्थापिका सभामें इस बिलपर भाषण दिया था वह उनके व्याख्यानोंमें प्रमुख समझा जाता है। निरन्तर साढ़े चार घण्टे तक उन्होंने व्याख्यान दिया, बहुत कहा सुना, सब पहलू समझाए पर पहला बिल मार्चके तीसरे सप्ताहमें पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया। उधर गाँधीजीने घोषणा की कि यदि रौलट कमीशनकी बातें मानी गईं तो सत्याग्रह शुरू हो जायगा। गान्धीजीका दौरा हुआ। लोगोंने जी खोलकर उनका स्वागत किया। गांधीजी मैदानमें उतर पड़े। ३० मार्च सन् १९१९ का दिन हड़तालके लिये रक्खा गया पर बदल कर ६ अप्रैल कर दिया गया। पर दिल्लीमें ३० मार्चको ही जलूस निकला और गोली भी चली। ६ अप्रैलको हिन्दुस्तानभरमें प्रदर्शन हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर इस आन्दोलनमें लगे हुए थे।

इसी बार पञ्जाबमें जो दुर्घटनाएँ हुईं उन्होंने मानो फ़ूसमें आग लगा दी। लौर्ड कर्ज़न भी जो काम नहीं कर सके थे वह पञ्जाबके निरङ्कुश शासक माइकेल ओडायरने पूरी कर दी। यहींसे कांग्रेसका युद्ध युग प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि कांग्रेसने सरकारका जो सामना किया है उसे युद्ध नहीं कहना चाहिए किन्तु वह संसारके इतिहासमें एक नई तरहका युद्ध था जिसमें योद्धालोग बिना हथियार लिए जाते हैं और बन्दूकोंकी गोलियोंका फाग खेलकर या तो खेत रहते हैं या वीरोंकी तरह घायल होकर आते हैं और मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकालते।

युद्ध-युग

कल्पना तो कीजिए कि एक स्थानपर हज़ारों आदमी इकट्ठे हों, जिनमें छः महीनेके गोदीके बालकोंसे लेकर अस्सी बरस तकके बुड्ढे हों, फिर उनको एक बाड़ेमें बन्द करके उनपर गोली चलाई जाय और बम बरसाए जायँ, वे लोग जब अपने प्राण बचा-बचाकर इधर-उधर दौड़ रहे हों उस समय उन्हें ताक-ताककर गोली मार दी जाय, और थोड़ी ही देरमें जिस जगह चलते, फिरते, हँसते, बोलते ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ सृष्टि—मनुष्यके समूह—मुर्दोंके ढेर बन जायँ तो भला आप बताइए इसे आप किस नामसे पुकारेंगे। और फिर सोचिए कि नगरके बड़े धनी-मानी पुरुषोंको चींटीकी तरह रेंगकर अपने मकानमें जानेको मिले, खुले आम सड़कोंपर नङ्गा करके उन्हें बेंतें लगाई जायँ, छोटे-छोटे बच्चोंको धूपमें मीलों दौड़ाया जाय तो बताइए आप इसे क्या समझेंगे? आपने रावण और कंसकी कथाएँ पुराणोंमें पढ़ी होंगी। व्यासोंके मुखसे ऐसी-ऐसी बातें सुनकर आपके हृदय न जाने कितनी बार काँप उठे होंगे। सचमुच मनुष्यका हृदय तो ऐसी बातोंकी कल्पना भी नहीं कर सकता। पर बात सच है। जिनपर वे मुसीबतें आ चुकी हैं, जिन्होंने आँखोंसे इन घटनाओंको देखा है वे अभी जीवित हैं। कभी आप अमृतसर चले जायँ तो कितने ही बूढ़े आँखोंमें आँसू भरकर उन दिनोंकी कहानी सुनावेंगे। यह भी नहीं तो आप चुपचाप जलियानवाले बाग़में पहुँच जाइए। दीवारोंपर जो गोलियोंके छेद बने हुए हैं वे दिन-रात मुँह खोले हुए अपना इतिहास सुनाया करते हैं।

११ नवम्बर सन् १९१८ ई० को जर्मनीने सफ़ेद झण्डा फहराया। महायुद्ध रुक गया। सन्धि हो गई। उसीके बाद ही मालवीयजीकी अध्यक्षतामें दिल्ली कांग्रेस हुई थी। दमनकारी क़ानूनोंको उठाने और राजनीतिज्ञ क़ैदियोंको छोड़नेके प्रस्ताव भी पास किए गए थे। हिन्दुस्थान बड़ी आशा लगाए बैठा था। वह क्या जानता था कि अदृष्ट उसकी ओर हँसकर कह रहा था—

वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तब आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गाँवई गाँव गुलाब॥

पर हिन्दुस्थानका क्या दोष था। उस समयके प्रधान मन्त्री लौयड जौर्जने बड़ी तारीफ़ की थी और 'हिन्दुस्थानका ख़याल रखने' का वचन दिया था। गुलामका काम है ख़ून देकर अपने मालिककी सेवा करना। मालिकके ख़ुश होनेका अर्थ यह है कि गुलाम गुलामी करनेके लिये अत्यन्त योग्य है। गुलाम अगर मालिकसे अपनी सेवाओंका इनाम चाहे तो उसकी मूर्खता है, सिड़ीपन है। मालिक उसे ज़िन्दा रहने देता है यही क्या कुछ कम इनाम है? बेचारा भोला-भाला हिन्दुस्थान!

उसे इनाम मिल गया। ६ फ़रवरी सन् १९१९ ई० को विलियम विनसेण्टने बड़ी कौन्सिलमें रौलेट बिलोंको पेश किया। ये दो बिल थे। एकके अनुसार क्रान्तिकारियोंके मुक़दमें तीन जजोंकी अदालतमें पेश होकर जल्दी फ़ैसला हो जायँ, जिसकी अपील ही न हो सके। राज्यके विरुद्ध काम करनेका जिनपर सन्देह हो उन्हें पकड़ लिया जाय, रोक रक्खा जाय, ज़मानत ली जाय, इत्यादि। इसके लिये कहा जाता है कि यह ऐसा क़ानून था कि जिसमें "न अपील, न वकील, न दलील।" दूसरे क़ानूनके द्वारा किसी राजद्रोही सामग्रीका प्रकाशन या वितरण करना ऐसा अपराध क़रार दिया जाता था जिसमें सज़ा हो जाती, इत्यादि। पहले कह चुके हैं कि मालवीयजीने इन

बिलोंपर साढ़े चार घण्टे लगातार व्याख्यान दिया पर बिलका पहला भाग पास हो गया। दूसरा भाग सरकारने वापस ले लिया।

बिल पास होते ही सत्याग्रहकी घोषणा हो गई। ६ अप्रैलको देश भरमें हड़ताल मनाई गई। पञ्जाबके गवर्नर सर माइकेल ओडायर अपने सैनिक बलपर कांग्रेसको पञ्जाबमें नहीं घुसने देने चाहते थे। इतिहासके पन्ने चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि तलवारके बलपर सत्यको नहीं जीता जा सकता था, पर माइकेल ओडायरका कोई दोष नहीं था। राजमद किसको पागल नहीं बनाता। १० अप्रैल सन् १९१९ ई० को प्रातःकाल ही अमृतसरके ज़िला-मजिस्ट्रेटने कांग्रेसके नेता डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपालको बँगलेपर बुलाकर उन्हें गिरफ़्तार करके वहाँसे चुपचाप कहीं भेज दिया। यह समाचार सारे शहर भरमें फैल गया, लोग ठट्ट-के-ठट्ट मजिस्ट्रेटके बँगलेकी ओर चले पर फ़ौजी सिपाहियोंने उन्हें रोक लिया, गोली चली, दो एक आदमी मरे और बहुतसे घायल हो गए। चोट खाकर शेर और भी भयङ्कर हो जाता है। यही दशा उस भीड़की भी हुई। भीड़ने रास्तेमें पाँच अंग्रेज़को मारा, कई सरकारी इमारतोंको जला दिया। १२ अप्रैलको कसूरमें, १४ को गुजरानवालामें, तथा लाहौर और कलकत्तेमें भी उपद्रव हो गए। इधर इन मामलोंको सुनकर गान्धीजी सरकारकी आज्ञा तोड़कर पञ्जाब आ रहे थे। वे गिरफ़्तार कर बम्बई भेज दिए गए। उनकी गिरफ़्तारीसे अहमदाबादमें भी कई उपद्रव हुए, और वीरमगाँव और नडियादमें भी उपद्रव हो गया। गान्धीजीने अपनी भूल स्वीकार कर ली। जो हिन्दुस्थानी अभी थोड़े दिन पहले अग्निवर्षाके सामने खड़े होकर बन्दूकें दाग रहे थे उन्हें यह प्रेमके युद्धकी बात कुछ समझमें ही नहीं आई। अशिक्षित सेना लेकर युद्ध करनेकी भूल गान्धीजीने जल्दी ही समझ ली और अपनी सेना लौटा ली।

पर पञ्जाबके अधिकारियोंकी आँखोंसे खून बरस रहा था, वे बदला लेनेपर उतारू थे। उन्होंने फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया। यद्यपि सरकारने फ़ौजी क़ानून १० अप्रैलसे ही शुरू कर दिया था किन्तु उसकी घोषणा की १३ अप्रैलको। उस दिन हिन्दुओंका सम्वत्सर दिन था। जलियाँवाले बाग़में सभा हुई। इस बाग़के चारों ओर मकान हैं, एक ओर सँकरा दरवाज़ा है—इतना सँकरा कि एक गाड़ी भी उसमें होकर नहीं जा सकती। बाग़में बीस हज़ार पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे थे। अचानक जनरल डायरने पचास गोरे और सौ हिन्दुस्थानी सिपाहियोंके साथ प्रवेश किया। उसने तितर-बितर होनेकी आज्ञा दी पर बाहर निकलनेका मार्ग नहीं था। जनरल डायरने गोली चलानेकी आज्ञा दे दी। सोलह सौ गोलियाँ चलाई गईं। फूलसे कोमल बालक, बेचारी अबला नारियाँ और निःशस्त्र पुरुष मुर्दा बनकर गिरते चले जा रहे थे। उनकी चिल्लाहट, उनकी पुकार, बन्दूकोंने शान्त कर दी। जलियाँवाग़ मसान बन गया, जहाँ सरकारी बयानके अनुसार चार सौ मरे तथा एक और दो हज़ारके बीच घायल हुए। और ये घायल प्राणी रात भर खुले बाग़में तड़पते रहे, क्योंकि कोई उन्हें पानी पिलानेवाला नहीं रह गया था। नलोंका पानी बन्द कर दिया गया, बिजलीका तार काट दिया गया। लोगोंको पेटके बल रेंगाया गया, खुलेआम बेंत लगवाए गए। अन्धाधुन्ध सज़ाएँ दी गईं।

सितम्बर सन् १९१९ ई० में वायसरायने इन काण्डोंकी जाँचके लिये हण्टर कमिटी नियुक्त की, साथ ही उस काण्डमें जिन अफ़सरोंने अत्याचार किए थे उन्हें क्षमा दिलानेके लिये १८ सितम्बरको इण्डेम्निटी बिल आया। मालवीयजीने इसका बड़ा विरोध किया। पाँच घण्टे लगातार बोले। उसे टलवानेकी बड़ी कोशिश की पर सब व्यर्थ हुआ। वह मालवीयजीका व्याख्यान बड़ा भव्य हुआ और भारतीय व्यवस्थापिका सभाके इतिहासमें बड़ा महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। जिस निर्भयता और साहसके साथ मालवीयजीने उस बिलका विरोध किया

है और जैसे-जैसे अकाट्य प्रमाण दिए उसका सरकारने कुछ जवाब भी न दिया। परन्तु वे शब्द, वे सब तर्क सभा-भवनमें गूँजते रहे और भारतके आकाश-मण्डलमें गूँजते रहे पर सरकारने उनका मोल न समझा। क़ानून पास हो गया।

मालवीयजी और पण्डित मोतीलाल नेहरूजी एक-दम पञ्जाब दौड़े गए और वहाँ जाँच करनी शुरू की। महात्मा गान्धी स्वामी श्रद्धानन्द आदि भी शामिल थे। मालवीयजीके आनेसे लोगोंको बड़ा ढाढ़स हुआ। मालवीयजीने सेवा-समितिके द्वारा सभी पीड़ितोंकी मदद दी। जिनके सम्बन्धी मर गए थे उनके पालन-पोषणका भी प्रबन्ध किया। बड़ी खोजके साथ जाँच की गई।

मालवीयजीने प्रधानमन्त्री, भारत-मन्त्री और लैार्ड सिंहको तार दिया कि फ़ौजी क़ानूनके अनुसार जो सज़ाएँ दी गई हैं वे जाँच समाप्त होने तक स्थगित रक्खी जायँ। ये लोग जब जाँच कर रहे

मालवीयजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी पञ्जाब हत्याकाण्डकी जाँचमें।

थे उसके बाद ही सरकारी जाँचकमेटी भी बैठी। दोनों कमेटियाँ एक साथ काम करने लगीं, पर थोड़े ही दिनोंमें दोनों अलग-अलग हो गईं।

इधर दोनों कमेटियाँ जाँच कर ही रही थीं कि पण्डित मोतीलाल नेहरूके सभापतित्वमें अमृतसरमें कांग्रेस हुई। उससे दो-तीन दिन पहले ही २४ दिसम्बर सन् १९१९ ई० को शाही फ़रमान निकला, सुधार क़ानूनको सम्राट्की सम्मति मिली और पञ्जाब-काण्डके सम्बन्धमें जिनको सज़ाएँ मिली थीं वे छोड़ दिए गए। कांग्रेस पण्डालमें उन लोगोंके आनेसे लोग उछल पड़े। इधर सुधारोंमें कुछ तत्व नहीं था, जनरल डायरने जो हण्टर कमेटीके सामने बयान दिए थे उनसे भी लोग भड़के हुए थे। फिर भी मालवीयजी और गान्धीजीने कहा कि सरकारने जो कुछ दिया है उसे कांग्रेसको स्वीकार कर लेना चाहिए चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो। इसी बीच प्रधान मन्त्रीने मुसलमानोंको तुर्की तथा अन्य धार्मिक स्थानोंकी रक्षाके बारेमें जो वचन दिए थे उनमें पोल दिखाई पड़ी। ख़िलाफ़तका झण्डा खड़ा हो गया। गान्धीजी अब मैदानमें आ कूदे और उन्होंने समझ लिया कि ये गरजनेवाले बादल बरसेंगे नहीं।

अचानक ३१ जुलाईकी भयङ्कर रात आई—बड़ी डरावनी, बड़ी विकराल—और भारतके राजमुकुटके सबसे अधिक प्रकाशमान हीरे—लोकमान्य तिलकको निगल गई। लोकमान्य तिलककी मृत्यु प्रत्येक भारतीयने अपने सगेकी मृत्यु समझी। सारे देशमें ऐसा जान पड़ा मानो प्राण ही न रहे हैं, जैसे किसी अनाथका सहारा न रहा हो या किसीके बुढ़ापेकी लकड़ी छिन गई हो। सारे राष्ट्रने अपने आँसुओंसे उस महापुरुषका श्राद्ध किया। यों तो बहुतसे महापुरुष संसारसे विदा हो गए पर लोकमान्य तिलककी मृत्युसे जैसा शोक देशमें फैला वैसा शायद कभी देखनेमें नहीं आया। उनकी चिताकी अग्नि बुझने भी न पाई थी कि महात्मा

बिलोंपर साढ़े चार घण्टे लगातार व्याख्यान दिया पर बिलका पहला भाग पास हो गया। दूसरा भाग सरकारने वापस ले लिया।

बिल पास होते ही सत्याग्रहकी घोषणा हो गई। ६ अप्रैलको देश भरमें हड़ताल मनाई गई। पञ्जाबके गवर्नर सर माइकेल ओडायर अपने सैनिक बलपर कांग्रेसको पञ्जाबमें नहीं घुसने देने चाहते थे। इतिहासके पन्ने चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि तलवारके बलपर सत्यको नहीं जीता जा सकता था, पर माइकेल ओडायरका कोई दोष नहीं था। राजमद किसको पागल नहीं बनाता। १० अप्रैल सन् १९१९ ई० को प्रातःकाल ही अमृतसरके ज़िला-मजिस्ट्रेटने कांग्रेसके नेता डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपालको बँगलेपर बुलाकर उन्हें गिरफ़्तार करके वहाँसे चुपचाप कहीं भेज दिया। यह समाचार सारे शहर भरमें फैल गया, लोग ठट्ट-के-ठट्ट मजिस्ट्रेटके बँगलेकी ओर चले पर फ़ौजी सिपाहियोंने उन्हें रोक लिया, गोली चली, दो एक आदमी मरे और बहुतसे घायल हो गए। चोट खाकर शेर और भी भयङ्कर हो जाता है। यही दशा उस भीड़की भी हुई। भीड़ने रास्तेमें पाँच अंग्रेज़को मारा, कई सरकारी इमारतोंको जला दिया। १२ अप्रैलको कसूरमें, १४ को गुजरानवालामें, तथा लाहौर और कलकत्तेमें भी उपद्रव हो गए। इधर इन मामलोंको सुनकर गान्धीजी सरकारकी आज्ञा तोड़कर पञ्जाब आ रहे थे। वे गिरफ़्तार कर बम्बई भेज दिए गए। उनकी गिरफ़्तारीसे अहमदाबादमें भी कई उपद्रव हुए, और वीरमगाँव और नडियादमें भी उपद्रव हो गया। गान्धीजीने अपनी भूल स्वीकार कर ली। जो हिन्दुस्थानी अभी थोड़े दिन पहले अग्निवर्षाके सामने खड़े होकर बन्दूकें दाग रहे थे उन्हें यह प्रेमके युद्धकी बात कुछ समझमें ही नहीं आई। अशिक्षित सेना लेकर युद्ध करनेकी भूल गान्धीजीने जल्दी ही समझ ली और अपनी सेना लौटा ली।

पर पञ्जाबके अधिकारियोंकी आँखोंसे खून बरस रहा था, वे बदला लेनेपर उतारू थे। उन्होंने फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया। यद्यपि सरकारने फ़ौजी क़ानून १० अप्रैलसे ही शुरू कर दिया था किन्तु उसकी घोषणा की १३ अप्रैलको। उस दिन हिन्दुओंका सम्वत्सर दिन था। जलियाँवाले बाग़में सभा हुई। इस बाग़के चारों ओर मकान हैं, एक ओर सँकरा दरवाज़ा है—इतना सँकरा कि एक गाड़ी भी उसमें होकर नहीं जा सकती। बाग़में बीस हज़ार पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे थे। अचानक जनरल डायरने पचास गोरे और सौ हिन्दुस्थानी सिपाहियोंके साथ प्रवेश किया। उसने तितर-बितर होनेकी आज्ञा दी पर बाहर निकलनेका मार्ग नहीं था। जनरल डायरने गोली चलानेकी आज्ञा दे दी। सोलह सौ गोलियाँ चलाई गईं। फूलसे कोमल बालक, बेचारी अबला नारियाँ और निःशस्त्र पुरुष मुर्दा बनकर गिरते चले जा रहे थे। उनकी चिल्लाहट, उनकी पुकार, बन्दूकोंने शान्त कर दी। जलियाँवाग़ मसान बन गया, जहाँ सरकारी बयानके अनुसार चार सौ मरे तथा एक और दो हज़ारके बीच घायल हुए। और ये घायल प्राणी रात भर खुले बाग़में तड़पते रहे, क्योंकि कोई उन्हें पानी पिलानेवाला नहीं रह गया था। नलोंका पानी बन्द कर दिया गया, बिजलीका तार काट दिया गया। लोगोंको पेटके बल रेंगाया गया, खुलेआम बेंत लगवाए गए। अन्धाधुन्ध सज़ाएँ दी गईं।

सितम्बर सन् १९१९ ई० में वायसरायने इन काण्डोंकी जाँचके लिये हण्टर कमिटी नियुक्त की, साथ ही उस काण्डमें जिन अफ़सरोंने अत्याचार किए थे उन्हें क्षमा दिलानेके लिये १८ सितम्बरको इण्डेम्निटी बिल आया। मालवीयजीने इसका बड़ा विरोध किया। पाँच घण्टे लगातार बोले। उसे टलवानेकी बड़ी कोशिश की पर सब व्यर्थ हुआ। वह मालवीयजीका व्याख्यान बड़ा भव्य हुआ और भारतीय व्यवस्थापिका सभाके इतिहासमें बड़ा महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। जिस निर्भयता और साहसके साथ मालवीयजीने उस बिलका विरोध किया

है और जैसे-जैसे अकाट्य प्रमाण दिए उसका सरकारने कुछ जवाब भी न दिया। परन्तु वे शब्द, वे सब तर्क सभा-भवनमें गूँजते रहे और भारतके आकाश-मण्डलमें गूँजते रहे पर सरकारने उनका मोल न समझा। क़ानून पास हो गया।

मालवीयजी और पण्डित मोतीलाल नेहरूजी एक-दम पञ्जाब दौड़े गए और वहाँ जाँच करनी शुरू की। महात्मा गान्धी स्वामी श्रद्धानन्द आदि भी शामिल थे। मालवीयजीके आनेसे लोगोंको बड़ा ढाढ़स हुआ। मालवीयजीने सेवा-समितिके द्वारा सभी पीड़ितोंको मदद दी। जिनके सम्बन्धी मर गए थे उनके पालन-पोषणका भी प्रबन्ध किया। बड़ी खोजके साथ जाँच की गई।

मालवीयजीने प्रधानमन्त्री, भारत-मन्त्री और लैार्ड सिंहको तार दिया कि फ़ौजी क़ानूनके अनुसार जो सज़ाएँ दी गई हैं वे जाँच सप्ताह होने तक स्थगित रक्खी जायँ। ये लोग जब जाँच कर रहे

मालवीयजी और स्वामी श्रद्धानन्दजी पञ्जाब हत्याकाण्डकी जाँचमें।

थे उसके बाद ही सरकारी जाँचकमेटी भी बैठी। दोनों कमेटियाँ एक साथ काम करने लगीं, पर थोड़े ही दिनोंमें दोनों अलग-अलग हो गईं।

इधर दोनों कमेटियाँ जाँच कर ही रही थीं कि पण्डित मोतीलाल नेहरूके सभापतित्वमें अमृतसरमें कांग्रेस हुई। उससे दो-तीन दिन पहले ही २४ दिसम्बर सन् १९१९ ई० को शाही फ़रमान निकला, सुधार क़ानूनको सम्राट्की सम्मति मिली और पञ्जाब-काण्डके सम्बन्धमें जिनको सज़ाएँ मिली थीं वे छोड़ दिए गए। कांग्रेस पण्डालमें उन लोगोंके आनेसे लोग उछल पड़े। इधर सुधारोंमें कुछ तत्व नहीं था, जनरल डायरने जो हण्टर कमेटीके सामने बयान दिए थे उनसे भी लोग भड़के हुए थे। फिर भी मालवीयजी और गान्धीजीने कहा कि सरकारने जो कुछ दिया है उसे कांग्रेसको स्वीकार कर लेना चाहिए चाहे वह कितना भी कम क्यों न हो। इसी बीच प्रधान मन्त्रीने मुसलमानोंको तुर्की तथा अन्य धार्मिक स्थानोंकी रक्षाके बारेमें जो वचन दिए थे उनमें पोल दिखाई पड़ी। ख़िलाफ़तका झण्डा खड़ा हो गया। गान्धीजी अब मैदानमें आ कूदे और उन्होंने समझ लिया कि ये गरजनेवाले बादल बरसेंगे नहीं।

अचानक ३१ जुलाईकी भयङ्कर रात आई—बड़ी डरावनी, बड़ी विकराल—और भारतके राजमुकुटके सबसे अधिक प्रकाशमान हीरे—लोकमान्य तिलकको निगल गई। लोकमान्य तिलककी मृत्यु प्रत्येक भारतीयने अपने सगेकी मृत्यु समझी। सारे देशमें ऐसा जान पड़ा मानो प्राण ही न रहे हैं, जैसे किसी अनाथका सहारा न रहा हो या किसीके बुढ़ापेकी लकड़ी छिन गई हो। सारे राष्ट्रने अपने आँसुओंसे उस महापुरुषका श्राद्ध किया। यों तो बहुतसे महापुरुष संसारसे विदा हो गए पर लोकमान्य तिलककी मृत्युसे जैसा शोक देशमें फैला वैसा शायद कभी देखनेमें नहीं आया। उनकी चिताकी अग्नि बुझने भी न पाई थी कि महात्मा

मालवीयजी महाराज राष्ट्रीय महासभा प्रयाग पण्डाल हुदाकियाडकी जाँचके समय। बीचमें उनपर × चिन्ह लगा है।

मालवीयजी प्रयाग पण्डाल हुदाकियाडकी जाँचके समय।

गान्धीने अगले दिन ही पहली अगस्त सन् १९२७ ई० को सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा कर दी। असहयोग शुरू हो गया। पर गान्धीजीको शायद यह ध्यान न था कि फ्रान्सके युद्धक्षेत्रसे लौटे हुए जर्मनीकी अग्निवर्षामें पराक्रम दिखानेवाले वीर भला डण्डोंसे कैसे पिट सकेंगे। गान्धीजीका शान्तियुद्ध एक नई बात थी। लोगोंने कभी ऐसा युद्ध देखा भी नहीं था जिसमें लोग हाथ जोड़कर शत्रुके सामने खड़े हो जायँ, वे डण्डे बरसावें और ये उनका हाथ मलें कि उन्हें कष्ट तो नहीं होता, वे गोलियाँ चलावें और ये देह लहू-लुहान होनेपर भी उसे फागकी पिचकारियाँ समझें। महायुद्धसे भी बड़ा वह युद्ध था। सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा हुई और युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक ओर एक लङ्गोटा पहने, झण्डा लिये हुए एक मुट्ठी भर हड्डियोंवाला महात्मा था, उधर दूसरी ओर वृटिश साम्राज्य अपनी सेना, पुलीस और अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ी थी। फिर एक बार वशिष्ठ और विश्वामित्रका युद्ध देखनेमें आया। देखते-देखते सरकार दमन करने लगी। गोलियाँ चलीं, लाठियाँ चलीं, डण्डे चले। जेल भरने लगे। लोगोंकी जायदादें ज़ब्त हुईं। स्त्रियाँ, पुरुष और बालक 'महात्मा गान्धीकी जय' पर प्राण न्यौछावर करनेको निकल पड़े। गान्धीजी देवता बन गए। लड़कोंने स्कूल छोड़े, वकीलोंने वकालत छोड़ी, कितने लोगोंने सरकारी नौकरीको लात मारी। अजीब दिन थे वे भी। उस समय सभी यह सोच रहे थे कि स्वराज्य बस आ ही रहा है।

असहयोग आन्दोलनको नियमित और उचित समझते हुए भी मालवीयजी उसे समयोचित नहीं मानते थे। वे तबतक भी यही समझते रहे कि रोगी कमज़ोर है, इतनी तेज़ दवा वह हज़म न कर सकेगा। इलाहाबादमें देशकी तत्कालीन दशापर भाषण देते हुए मालवीयजीने कहा था :—

"सरकारी स्कूल और कौलेजोंका बहिष्कार करना ठीक नहीं है, यह बड़ा ग़लत रास्ता है कि हम स्कूलोंसे अपने बच्चोंको उठा लें। स्कूलमें बच्चोंको भेजनेसे सरकारको कोई मदद नहीं मिलती। उससे तो लोगोंका ही लाभ होता है। बच्चे शिक्षाके लिये तड़प रहे हैं। जब देशी या राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित हो जायँ तभी उनको वहाँसे उठाना चाहिए। स्कूलोंके बहिष्कारसे उच्च कर्मचारियोंपर भी कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि वे बच्चोंकी शिक्षाकी कब कोई परवाह करते हैं।"

इसी समय किसीने उनसे पूछा कि आप क्यों नहीं गान्धीजीका साथ देते? इसके उत्तरमें उन्होंने जवाब दिया कि गान्धीजी मनुष्य ही तो हैं। वह भी भूल कर ही सकते हैं। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि अभी गान्धीजी देशको ग़लत रास्ता बतला रहे हैं। मैं गान्धीजीकी आज्ञा माननेकी बजाय अपनी आत्माके कहनेका पालन करूँगा।

राष्ट्रीय महासभाकी २७ जुलाई सन् १९२१ ई० की बैठकमें, जो बम्बईमें हुई थी, उसमें सत्याग्रह और बायकाटपर वाद-विवाद हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास हो गया कि प्रिन्स औफ़ वेल्सका बायकाट किया जाय। मालवीयजीने उसका विरोध करते समय कहा कि प्रिन्स औफ़ वेल्सका भारत-आगमन केवल एक पुरानी प्रथाका पालन मात्र है। उनका स्वागत करके हम सरकारका साथ नहीं देना चाहते। फिर हम यह सोचते हैं कि प्रिन्सके आगमनसे भारतका बहुत कुछ हित होनेकी आशा है।

एक ओर जब सारा देश क्षुब्ध था तब राजकुमार प्रिन्स औफ़ वेल्सने भारतमें पैर रक्खे। जनता आपेसे बाहर हो गई थी, जहाँ-जहाँ राजकुमार गए वहाँ-वहाँ काले झण्डोंने उनका स्वागत किया। वास्तवमें राजकुमारसे तो किसीकी शत्रुता न थी पर वे वृटिश सरकारके सम्राट्के पुत्र थे। लोगोंको भड़कानेके लिये क्या इतना कम था? पर मालवीयजीने यह समझा कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह अतिथि होकर आवे तो उसको आसन-पानी देना ही चाहिए। जिस समय पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धुदास और मौलाना आज़ाद पिञ्जड़ोंमें बन्द थे उस समय मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयमें राजकुमारका स्वागत कर रहे थे और उन्हें उपाधि दे रहे थे। मालवीयजीके इस व्यवहारसे लोग बड़े नाराज़ हुए, बड़ी गालियाँ दीं, पर मालवीयजीके कानोंतक पहुँचकर वे वापस लौट गईं, हृदय तक न पहुँच सकीं। जिस हृदयमें भारतकी ममता चुप मारकर बैठी थी उसी हृदयमें उन्होंने प्रिन्स औफ़ वेल्सके मानको भी ले जाकर बैठा दिया। यही महापुरुषकी महत्ता थी।

इन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय भी डोल उठा। विद्यार्थियोंने युनिवर्सिटी छोड़ दी। गान्धीजी और मालवीयजीका साथ-साथ व्याख्यान हुआ। राजा-महाराजा लोग गान्धीजीका व्याख्यान सुनकर उठ खड़े हुए। पर मालवीयजी अचल समाधि लगाए बैठे थे। दूसरा होता तो पागल हो उठता। उस समय जान पड़ता था कि हिन्दू युनिवर्सिटी अब गई, अब गई। पर मालवीयजीने अपने अनुपम धीरज और कुशलतासे उसे बचा रक्खा। उन दिनों एक तस्वीर बाज़ारमें बिकती थी जिसमें हिन्दू विश्वविद्यालयको एक शिवमूर्त्ति बनाया था जिसे मालवीयजी मज़बूतीसे सँभाले हुए हैं और श्रीमती बेसेण्ट उनके ऊपर फूल छोड़ रही हैं। बस इसीसे समझ लीजिए कि अपने सिद्धान्तकी रक्षा करके लोगोंकी दृष्टिमें मालवीयजी कहाँ पहुँच चुके थे। जब श्रीमती बेसेण्टने रौलट बिलका समर्थन किया था तो लोगोंने उनकी सारी सेवाओं और उनके त्यागके बदलेमें उन्हें "पूतना" की उपाधि दे दी थी, पर मालवीयजीको लोग न जाने क्यों कोई ऐसी उपाधि न दे पाए। दुनिया उसीका आदर करती है जो उसके मनके अनुसार चले। लोग समझने लगे कि 'मालवीयजी सरकारके पिट्ठू हैं, जेलसे डरते हैं, कट्टर ब्राह्मण हैं, जेलमें रहेंगे कैसे?'

लौर्ड रीडिङ्ग मालवीयजीको बहुत मानते थे। मालवीयजीने उनको सलाह दी कि गान्धीजीसे मिलकर सब मामला तै कर लें नहीं तो व्यर्थमें बखेड़ा मचेगा। देशबन्धु दाससे जेलमें गान्धीजीकी बातचीत हुई। मालवीयजीने इधर गान्धीजीको तैयार किया उधर लौर्ड रीडिङ्गको। दिसम्बर सन् १९२१ ई० में गान्धीजीकी लौर्ड रीडिङ्गसे बातचीत हुई और बहुतसी बातें तै हो गई थीं। पर सरकारकी नीति नहीं बदली। गान्धीजीने वायसरायको लिखा कि यदि सरकारकी नीति एक सप्ताहमें न बदली तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा। इसी बीच ४ फ़रवरी सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भीड़ने पुलीस थानेमें आग लगा दी जिसमें पुलीसके सिपाही जलकर भस्म हो गए। मालवीयजी बम्बई जा रहे थे। ट्रेनमें यह समाचार पढ़ा और काँप गए। जान पड़ा कि जैसे उन्हें बिजलीका तार छू गया हो। बारदौलीमें कांग्रेसकी कार्य्यसमितिकी बैठक हुई। मालवीयजीने बड़े करुण शब्दोंमें चौरीचौराकी घटनाका ज़िक्र करके गान्धीजीको समझाया। बारदौलीका युद्ध समाप्त कर दिया गया और असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वहीं बारदौलीमें खोदकर गाड़ दिया। लोगोंका यही ख़याल बना रहा कि 'बड़े भाई' के कहनेमें आकर ही गान्धीजीने असहयोगको स्थगित किया। सारे देशने गान्धीजीपर कीचड़ उछाली। मालवीयजी भी उससे न बच सके। जब फ़ौज लड़ रही हो और विजय पानेके मौक़ेपर उन्हें रोक दिया जाय, उस समय जो क्रोध और असन्तोष फ़ौजी सिपाहियोंमें होता है वही हुआ। लोगोंने कहा कि महात्माजीने आन्दोलन स्थगित करके बड़ी भारी ग़लती की है पर गान्धीजी यह बात समझ गए थे कि अशिक्षित और अनियमित सेना लेकर लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। मालवीयजीका अनुमान ठीक था—देश अहिंसाके युद्धके लिये अभी तैयार नहीं था।

इसीके बाद गान्धीजी पकड़े गए और उन्हें पाँच वर्षकी सज़ा मिली। बिना सेनानायकके जो दशा

गान्धीने अगले दिन ही पहली अगस्त सन् १९२७ ई० को सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा कर दी। असहयोग शुरू हो गया। पर गान्धीजीको शायद यह ध्यान न था कि फ्रान्सके युद्धक्षेत्रसे लौटे हुए जर्मनीकी अग्निवर्षामें पराक्रम दिखानेवाले वीर भला डण्डोंसे कैसे पिट सकेंगे। गान्धीजीका शान्तियुद्ध एक नई बात थी। लोगोंने कभी ऐसा युद्ध देखा भी नहीं था जिसमें लोग हाथ जोड़कर शत्रुके सामने खड़े हो जायँ, वे डण्डे बरसावें और ये उनका हाथ मलें कि उन्हें कष्ट तो नहीं होता, वे गोलियाँ चलावें और ये देह लहू-लुहान होनेपर भी उसे फागकी पिचकारियाँ समझें। महायुद्धसे भी बड़ा वह युद्ध था। सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा हुई और युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक ओर एक लङ्गोटा पहने, झण्डा लिये हुए एक मुट्ठी भर हड्डियोंवाला महात्मा था, उधर दूसरी ओर बृटिश साम्राज्य अपनी सेना, पुलीस और अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ी थी। फिर एक बार वशिष्ठ और विश्वामित्रका युद्ध देखनेमें आया। देखते-देखते सरकार दमन करने लगी। गोलियाँ चलीं, लाठियाँ चलीं, डण्डे चले। जेल भरने लगे। लोगोंकी जायदादें ज़ब्त हुईं। स्त्रियाँ, पुरुष और बालक 'महात्मा गान्धीकी जय' पर प्राण न्यौछावर करनेको निकल पड़े। गान्धीजी देवता बन गए। लड़कोंने स्कूल छोड़े, वकीलोंने वकालत छोड़ी, कितने लोगोंने सरकारी नौकरीको लात मारी। अजीब दिन थे वे भी। उस समय सभी यह सोच रहे थे कि स्वराज्य बस आ ही रहा है।

असहयोग आन्दोलनको नियमित और उचित समझते हुए भी मालवीयजी उसे समयोचित नहीं मानते थे। वे तबतक भी यही समझते रहे कि रोगी कमज़ोर है, इतनी तेज़ दवा वह हज़म न कर सकेगा। इलाहाबादमें देशकी तत्कालीन दशापर भाषण देते हुए मालवीयजीने कहा था :—

"सरकारी स्कूल और कौलेजोंका बहिष्कार करना ठीक नहीं है, यह बड़ा ग़लत रास्ता है कि हम स्कूलोंसे अपने बच्चोंको उठा लें। स्कूलमें बच्चोंको भेजनेसे सरकारको कोई मदद नहीं मिलती। उससे तो लोगोंका ही लाभ होता है। बच्चे शिक्षाके लिये तड़प रहे हैं। जब देशी या राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित हो जायँ तभी उनको वहाँसे उठाना चाहिए। स्कूलोंके बहिष्कारसे उच्च कर्मचारियोंपर भी कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि वे बच्चोंकी शिक्षाकी कब कोई परवाह करते हैं।"

इसी समय किसीने उनसे पूछा कि आप क्यों नहीं गान्धीजीका साथ देते? इसके उत्तरमें उन्होंने जवाब दिया कि गान्धीजी मनुष्य ही तो हैं। वह भी भूल कर ही सकते हैं। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि अभी गान्धीजी देशको ग़लत रास्ता बतला रहे हैं। मैं गान्धीजीकी आज्ञा माननेकी बजाय अपनी आत्माके कहनेका पालन करूँगा।

राष्ट्रीय महासभाकी २७ जुलाई सन् १९२१ ई० की बैठकमें, जो बम्बईमें हुई थी, उसमें सत्याग्रह और बायकाटपर वाद-विवाद हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास हो गया कि प्रिन्स ऑफ़ वेल्सका बायकाट किया जाय। मालवीयजीने उसका विरोध करते समय कहा कि प्रिन्स ऑफ़ वेल्सका भारत-आगमन केवल एक पुरानी प्रथाका पालन मात्र है। उनका स्वागत करके हम सरकारका साथ नहीं देना चाहते। फिर हम यह सोचते हैं कि प्रिन्सके आगमनसे भारतका बहुत कुछ हित होनेकी आशा है।

एक ओर जब सारा देश क्षुब्ध था तब राजकुमार प्रिन्स ऑफ़ वेल्सने भारतमें पैर रक्खे। जनता आपेसे बाहर हो गई थी, जहाँ-जहाँ राजकुमार गए वहाँ-वहाँ काले झण्डोंने उनका स्वागत किया। वास्तवमें राजकुमारसे तो किसीकी शत्रुता न थी पर वे बृटिश सरकारके सम्राट्के पुत्र थे। लोगोंको भड़कानेके लिये क्या इतना कम था? पर मालवीयजीने यह समझा कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह अतिथि होकर आवे तो उसको आसन-पानी देना ही चाहिए। जिस समय पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धुदास और मौलाना आज़ाद पिञ्जड़ोंमें बन्द थे उस समय मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयमें राजकुमारका स्वागत कर रहे थे और उन्हें उपाधि दे रहे थे। मालवीयजीके इस व्यवहारसे लोग बड़े नाराज़ हुए, बड़ी गालियाँ दीं, पर मालवीयजीके कानोंतक पहुँचकर वे वापस लौट गईं, हृदय तक न पहुँच सकीं। जिस हृदयमें भारतकी ममता चुप मारकर बैठी थी उसी हृदयमें उन्होंने प्रिन्स ऑफ़ वेल्सके मानको भी ले जाकर बैठा दिया। यही महापुरुषकी महत्ता थी।

इन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय भी डोल उठा। विद्यार्थियोंने युनिवर्सिटी छोड़ दी। गान्धीजी और मालवीयजीका साथ-साथ व्याख्यान हुआ। राजा-महाराजा लोग गान्धीजीका व्याख्यान सुनकर उठ खड़े हुए। पर मालवीयजी अचल समाधि लगाए बैठे थे। दूसरा होता तो पागल हो उठता। उस समय जान पड़ता था कि हिन्दू युनिवर्सिटी अब गई, अब गई। पर मालवीयजीने अपने अनुपम धीरज और कुशलतासे उसे बचा रक्खा। उन दिनों एक तस्वीर बाज़ारमें बिकती थी जिसमें हिन्दू विश्वविद्यालयको एक शिवमूर्त्ति बनाया था जिसे मालवीयजी मज़बूतीसे सँभाले हुए हैं और श्रीमती बेसेण्ट उनके ऊपर फूल छोड़ रही हैं। बस इसीसे समझ लीजिए कि अपने सिद्धान्तकी रक्षा करके लोगोंकी दृष्टिमें मालवीयजी कहाँ पहुँच चुके थे। जब श्रीमती बेसेण्टने रौलट बिलका समर्थन किया था तो लोगोंने उनकी सारी सेवाओं और उनके त्यागके बदलेमें उन्हें "पूतना" की उपाधि दे दी थी, पर मालवीयजीको लोग न जाने क्यों कोई ऐसी उपाधि न दे पाए। दुनिया उसीका आदर करती है जो उसके मनके अनुसार चले। लोग समझने लगे कि 'मालवीयजी सरकारके पिट्ठू हैं, जेलसे डरते हैं, कट्टर ब्राह्मण हैं, जेलमें रहेंगे कैसे?'

लौर्ड रीडिङ्ग मालवीयजीको बहुत मानते थे। मालवीयजीने उनको सलाह दी कि गान्धीजीसे मिलकर सब मामला तै कर लें नहीं तो व्यर्थमें बखेड़ा मचेगा। देशबन्धु दाससे जेलमें गान्धीजीकी बातचीत हुई। मालवीयजीने इधर गान्धीजीको तैयार किया उधर लौर्ड रीडिङ्गको। दिसम्बर सन् १९२१ ई० में गान्धीजीकी लौर्ड रीडिङ्गसे बातचीत हुई और बहुतसी बातें तै हो गई थीं। पर सरकारकी नीति नहीं बदली। गान्धीजीने वायसरायको लिखा कि यदि सरकारकी नीति एक सप्ताहमें न बदली तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा। इसी बीच ४ फ़रवरी सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भीड़ने पुलीस थानेमें आग लगा दी जिसमें पुलीसके सिपाही जलकर भस्म हो गए। मालवीयजी बम्बई जा रहे थे। ट्रेनमें यह समाचार पढ़ा और काँप गए। जान पड़ा कि जैसे उन्हें बिजलीका तार छू गया हो। बारदौलीमें कांग्रेसकी कार्य्यसमितिकी बैठक हुई। मालवीयजीने बड़े करुण शब्दोंमें चौरीचौराकी घटनाका ज़िक्र करके गान्धीजीको समझाया। बारदौलीका युद्ध समाप्त कर दिया गया और असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वहीं बारदौलीमें खोदकर गाड़ दिया। लोगोंका यही ख़याल बना रहा कि 'बड़े भाई' के कहनेमें आकर ही गान्धीजीने असहयोगको स्थगित किया। सारे देशने गान्धीजीपर कीचड़ उछाली। मालवीयजी भी उससे न बच सके। जब फ़ौज लड़ रही हो और विजय पानेके मौक़ेपर उन्हें रोक दिया जाय, उस समय जो क्रोध और असन्तोष फ़ौजी सिपाहियोंमें होता है वही हुआ। लोगोंने कहा कि महात्माजीने आन्दोलन स्थगित करके बड़ी भारी ग़लती की है पर गान्धीजी यह बात समझ गए थे कि अशिक्षित और अनियमित सेना लेकर लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। मालवीयजीका अनुमान ठीक था—देश अहिंसाके युद्धके लिये अभी तैयार नहीं था।

इसीके बाद गान्धीजी पकड़े गए और उन्हें पाँच वर्षकी सज़ा मिली। बिना सेनानायकके जो दशा

गान्धीने अगले दिन ही पहली अगस्त सन् १९२७ ई० को सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा कर दी। असहयोग शुरू हो गया। पर गान्धीजीको शायद यह ध्यान न था कि फ्रान्सके युद्धक्षेत्रसे लौटे हुए जर्मनीकी अग्निवर्षामें पराक्रम दिखानेवाले वीर भला डण्डोंसे कैसे पिट सकेंगे। गान्धीजीका शान्तियुद्ध एक नई बात थी। लोगोंने कभी ऐसा युद्ध देखा भी नहीं था जिसमें लोग हाथ जोड़कर शत्रुके सामने खड़े हो जायँ, वे डण्डे बरसावें और ये उनका हाथ मलें कि उन्हें कष्ट तो नहीं होता, वे गोलियाँ चलावें और ये देह लहू-लुहान होनेपर भी उसे फागकी पिचकारियाँ समझें। महायुद्धसे भी बड़ा वह युद्ध था। सरकारसे सम्बन्ध तोड़नेकी घोषणा हुई और युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक ओर एक लङ्गोटा पहने, झण्डा लिये हुए एक मुट्ठी भर हड्डियोंवाला महात्मा था, उधर दूसरी ओर बृटिश साम्राज्य अपनी सेना, पुलीस और अस्त्र-शस्त्र लिये खड़ी थी। फिर एक बार वशिष्ठ और विश्वामित्रका युद्ध देखनेमें आया। देखते-देखते सरकार दमन करने लगी। गोलियाँ चलीं, लाठियाँ चलीं, डण्डे चले। जेल भरने लगे। लोगोंकी जायदादें ज़ब्त हुईं। स्त्रियाँ, पुरुष और बालक 'महात्मा गान्धीकी जय' पर प्राण न्यौछावर करनेको निकल पड़े। गान्धीजी देवता बन गए। लड़कोंने स्कूल छोड़े, वकीलोंने वकालत छोड़ी, कितने लोगोंने सरकारी नौकरीको लात मारी। अजीब दिन थे वे भी। उस समय सभी यह सोच रहे थे कि स्वराज्य बस आ ही रहा है।

असहयोग आन्दोलनको नियमित और उचित समझते हुए भी मालवीयजी उसे समयोचित नहीं मानते थे। वे तबतक भी यही समझते रहे कि रोगी कमज़ोर है, इतनी तेज़ दवा वह हज़म न कर सकेगा। इलाहाबादमें देशकी तत्कालीन दशापर भाषण देते हुए मालवीयजीने कहा था :—

"सरकारी स्कूल और कौलेजोंका बहिष्कार करना ठीक नहीं है, यह बड़ा ग़लत रास्ता है कि हम स्कूलोंसे अपने बच्चोंको उठा लें। स्कूलमें बच्चोंको भेजनेसे सरकारको कोई मदद नहीं मिलती। उससे तो लोगोंका ही लाभ होता है। बच्चे शिक्षाके लिये तड़प रहे हैं। जब देशी या राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित हो जायँ तभी उनको वहाँसे उठाना चाहिए। स्कूलोंके बहिष्कारसे उच्च कर्मचारियोंपर भी कोई असर नहीं पड़ेगा क्योंकि वे बच्चोंकी शिक्षाकी कब कोई परवाह करते हैं।"

इसी समय किसीने उनसे पूछा कि आप क्यों नहीं गान्धीजीका साथ देते? इसके उत्तरमें उन्होंने जवाब दिया कि गान्धीजी मनुष्य ही तो हैं। वह भी भूल कर ही सकते हैं। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि अभी गान्धीजी देशको ग़लत रास्ता बतला रहे हैं। मैं गान्धीजीकी आज्ञा माननेकी बजाय अपनी आत्माके कहनेका पालन करूँगा।

राष्ट्रीय महासभाकी २७ जुलाई सन् १९२१ ई० की बैठकमें, जो बम्बईमें हुई थी, उसमें सत्याग्रह और बायकाटपर वाद-विवाद हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास हो गया कि प्रिन्स ऑफ़ वेल्सका बायकाट किया जाय। मालवीयजीने उसका विरोध करते समय कहा कि प्रिन्स ऑफ़ वेल्सका भारत-आगमन केवल एक पुरानी प्रथाका पालन मात्र है। उनका स्वागत करके हम सरकारका साथ नहीं देना चाहते। फिर हम यह सोचते हैं कि प्रिन्सके आगमनसे भारतका बहुत कुछ हित होनेकी आशा है।

एक ओर जब सारा देश क्षुब्ध था तब राजकुमार प्रिन्स ऑफ़ वेल्सने भारतमें पैर रक्खे। जनता आपेसे बाहर हो गई थी, जहाँ-जहाँ राजकुमार गए वहाँ-वहाँ काले झण्डोंने उनका स्वागत किया। वास्तवमें राजकुमारसे तो किसीकी शत्रुता न थी पर वे बृटिश सरकारके सम्राट्के पुत्र थे। लोगोंको भड़कानेके लिये क्या इतना कम था? पर मालवीयजीने यह समझा कि चाहे शत्रु ही क्यों न हो, यदि वह अतिथि होकर आवे तो उसको आसन-पानी देना ही चाहिए। जिस समय पण्डित मोतीलाल नेहरू, देशबन्धुदास और मौलाना आज़ाद पिञ्जड़ोंमें बन्द थे उस समय मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालयमें राजकुमारका स्वागत कर रहे थे और उन्हें उपाधि दे रहे थे। मालवीयजीके इस व्यवहारसे लोग बड़े नाराज़ हुए, बड़ी गालियाँ दीं, पर मालवीयजीके कानोंतक पहुँचकर वे वापस लौट गईं, हृदय तक न पहुँच सकीं। जिस हृदयमें भारतकी ममता चुप मारकर बैठी थी उसी हृदयमें उन्होंने प्रिन्स ऑफ़ वेल्सके मानको भी ले जाकर बैठा दिया। यही महापुरुषकी महत्ता थी।

इन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय भी डोल उठा। विद्यार्थियोंने युनिवर्सिटी छोड़ दी। गान्धीजी और मालवीयजीका साथ-साथ व्याख्यान हुआ। राजा-महाराजा लोग गान्धीजीका व्याख्यान सुनकर उठ खड़े हुए। पर मालवीयजी अचल समाधि लगाए बैठे थे। दूसरा होता तो पागल हो उठता। उस समय जान पड़ता था कि हिन्दू युनिवर्सिटी अब गई, अब गई। पर मालवीयजीने अपने अनुपम धीरज और कुशलतासे उसे बचा रक्खा। उन दिनों एक तस्वीर बाज़ारमें बिकती थी जिसमें हिन्दू विश्वविद्यालयको एक शिवमूर्त्ति बनाया था जिसे मालवीयजी मज़बूतीसे सँभाले हुए हैं और श्रीमती बेसेण्ट उनके ऊपर फूल छोड़ रही हैं। बस इसीसे समझ लीजिए कि अपने सिद्धान्तकी रक्षा करके लोगोंकी दृष्टिमें मालवीयजी कहाँ पहुँच चुके थे। जब श्रीमती बेसेण्टने रौलट बिलका समर्थन किया था तो लोगोंने उनकी सारी सेवाओं और उनके त्यागके बदलेमें उन्हें "पूतना" की उपाधि दे दी थी, पर मालवीयजीको लोग न जाने क्यों कोई ऐसी उपाधि न दे पाए। दुनिया उसीका आदर करती है जो उसके मनके अनुसार चले। लोग समझने लगे कि 'मालवीयजी सरकारके पिट्ठू हैं, जेलसे डरते हैं, कट्टर ब्राह्मण हैं, जेलमें रहेंगे कैसे?'

लौर्ड रीडिङ्ग मालवीयजीको बहुत मानते थे। मालवीयजीने उनको सलाह दी कि गान्धीजीसे मिलकर सब मामला तै कर लें नहीं तो व्यर्थमें बखेड़ा मचेगा। देशबन्धु दाससे जेलमें गान्धीजीकी बातचीत हुई। मालवीयजीने इधर गान्धीजीको तैयार किया उधर लौर्ड रीडिङ्गको। दिसम्बर सन् १९२१ ई० में गान्धीजीकी लौर्ड रीडिङ्गसे बातचीत हुई और बहुतसी बातें तै हो गई थीं। पर सरकारकी नीति नहीं बदली। गान्धीजीने वायसरायको लिखा कि यदि सरकारकी नीति एक सप्ताहमें न बदली तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा। इसी बीच ४ फ़रवरी सन् १९२२ ई० को गोरखपुर ज़िलेमें चौरीचौरामें एक भीड़ने पुलीस थानेमें आग लगा दी जिसमें पुलीसके सिपाही जलकर भस्म हो गए। मालवीयजी बम्बई जा रहे थे। ट्रेनमें यह समाचार पढ़ा और काँप गए। जान पड़ा कि जैसे उन्हें बिजलीका तार छू गया हो। बारदौलीमें कांग्रेसकी कार्य्यसमितिकी बैठक हुई। मालवीयजीने बड़े करुण शब्दोंमें चौरीचौराकी घटनाका ज़िक्र करके गान्धीजीको समझाया। बारदौलीका युद्ध समाप्त कर दिया गया और असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन वहीं बारदौलीमें खोदकर गाड़ दिया। लोगोंका यही ख़याल बना रहा कि 'बड़े भाई' के कहनेमें आकर ही गान्धीजीने असहयोगको स्थगित किया। सारे देशने गान्धीजीपर कीचड़ उछाली। मालवीयजी भी उससे न बच सके। जब फ़ौज लड़ रही हो और विजय पानेके मौक़ेपर उन्हें रोक दिया जाय, उस समय जो क्रोध और असन्तोष फ़ौजी सिपाहियोंमें होता है वही हुआ। लोगोंने कहा कि महात्माजीने आन्दोलन स्थगित करके बड़ी भारी ग़लती की है पर गान्धीजी यह बात समझ गए थे कि अशिक्षित और अनियमित सेना लेकर लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। मालवीयजीका अनुमान ठीक था—देश अहिंसाके युद्धके लिये अभी तैयार नहीं था।

इसीके बाद गान्धीजी पकड़े गए और उन्हें पाँच वर्षकी सज़ा मिली। बिना सेनानायकके जो दशा

फ़ौजकी होती है वही दशा महात्मा गान्धी और अन्य नेताओंके पकड़े जानेपर देशकी हुई। मालवीयजी यद्यपि असहयोग आन्दोलनको असमयकी बात समझते थे किन्तु वे सरकारकी दमननीतिको सहन कर सके, उस समय देशने फिर मालवीयजीकी ओर देखा। सब काम छोड़कर मालवीयजी व्याकुल फ़ौजको ढाढ़स बँधानेके लिये निकल पड़े। सरकार इस बातपर तुली हुई थी कि हिन्दुस्थानकी इस जीती-जागती संस्थाको ऐसा कुचल दिया जाय कि वह फिर सिर ही न उठा सके। पर मालवीयजी उन लोगोंमें नहीं हैं जो अपने मतका विरोध होनेपर राष्ट्रकी हत्या होते देख सकें। रात-दिन एक करके साठ बरसकी अवस्था और दुर्बल शरीर लेकर वे हिम्मत हारी हुई जनताको चुमकारते, पुचकारते, हिम्मत बँधाते, पेशावरसे डिब्रूगढ़ (आसाम) तक घूमे। स्वराज्य और स्वदेशीका उपदेश दिया और हिन्दू-मुस्लिम एकताका मर्म समझाया। उनकी इस यात्रामें सरकारने कई बार उनपर दफ़ा एक सौ चौवालीस लगाई लेकिन मालवीयजीने एक बार भी उसका पालन नहीं किया। सरकारने भी न जाने क्यों उन्हें बन्दी न किया। चाहे ऊपरसे सरकार भले ही कहती हो कि उनके व्याख्यानसे उपद्रव होगा, अशान्ति होगी, लेकिन मनमें वह सदा यही समझती रही थी कि मालवीयजीके व्याख्यानसे कभी अशान्ति नहीं हो सकती। न जाने कितनी बार मालवीयजीके उँगली उठाने मात्रपर सभाओंमें सन्नाटा छा गया, उनके खड़े होते ही झगड़ा समाप्त हो गया और उनकी मनोहर वाणीके सुनते ही कितने ही टूटे हुए दिल मिल गए, फिर भला उनसे यह आशङ्का ही क्यों की गई? गोरखपुरमें चौरी-चौरामें जब आप मद्यपान-विरोधके विषयमें व्याख्यान दे रहे थे उसी समय उन्हें सरकारी आज्ञा मिली कि वे वहाँ भाषण न दें। पर उन्होंने न माना और वहाँ मद्यपानसे दूर रहने और विदेशी वस्त्र न ख़रीदनेका उपदेश देकर आप भटपूर गए। वहाँ भी आपका व्याख्यान हुआ। आपके गोरखपुर लौटते ही आपको फिर आज्ञाएँ मिली, जिनमें आपको पूरे गोरखपुर ज़िलेमें व्याख्यान देनेके लिये मनाही की गई। किन्तु फिर भी आपने बरहज, देवरिया, रामपुर, कासिया, पड़रौना, गोरखपुर और ख़लीलाबाद—इतने स्थानोंमें व्याख्यान दिए ही। जिन सज्जनोंको मालवीयजीसे जाति-वैमनस्य फैलानेकी आशङ्का हुई थी वे यदि इनमेंसे एक भी व्याख्यान सुन पाते तो उन्हें अपनी मूर्खताके लिये पछताना ही पड़ता। गोरखपुर पहुँचकर, वहाँ लोगोंको रक्षा-दलोंकी स्थापना करनेका उपदेश देते हुए चौरीचौरा गए। वहाँ आप लोगोंकी करुण कथाएँ सुन ही रहे थे इतनेमें आपको नोटिस दी गई। किन्तु वे फिर भी घटनास्थल मन्देरा बजार पहुँच ही गए। इसी प्रकार गौहाटीमें और पञ्जाबके कई स्थानोंमें आपपर दफ़ा एक सौ चौवालीस लगाई गई, पर आपने निडर होकर उन आज्ञाओंका उल्लङ्घन किया और अपना काम करते रहे।

सन् १९२२ ई० की फ़रवरीमें जब गान्धीजी पकड़ लिए गए तब स्वराज्य पार्टी बन चुकी थी और सन् १९२३ ई० में कांग्रेसने चुनावकी लड़ाई लड़नी शुरू कर दी। अगले वर्ष सन् १९२४ ई० में गान्धीजी छूट गए। कोहाटमें हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा हुआ। एक साथ रहनेवाले, एक वायु, एक जल, और एक अन्नसे पलनेवाले हिन्दू-मुसलमान किसके इशारेपर एक दूसरेकी जानके गाहक बन गए, इसे कौन समझावे। पर हुआ यही। मालवीयजी अपनी सहायता लेकर वहाँ पहुँचे और मुसलमानोंके बीचमें बैठकर उन्होंने जो निडर होकर उन्हें ऊँच-नीच समझाया उसे वहाँके लोग अबतक याद करते हैं। इसीपर गान्धीजीका इक्कीस दिनका उपवास हुआ। बेचारे हिन्दू-मुसलमानोंको क्या? कठपुतलियोंकी तरह दूसरेकी डोरीपर वे नाच रहे थे। इसी समय बङ्गालका भयङ्कर काला क़ानून चल निकला।

अगले वर्ष भारतके दो महापुरुष—बङ्गालके दो प्रतापी सिंह श्री चित्तरञ्जनदास और सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी चल बसे। गोखले और लोकमान्य तिलककी

यादगार फिर हरी हो गई। हिन्दुस्थान बेचारा फिर जी भरकर रोया।

सन् १९२६ ई० में कलकत्तेमें दङ्गा हुआ। मालवीयजीको वहाँ जानेकी आज्ञा न मिली पर मालवीयजीने पहलेकी तरह इसकी परवाह नहीं की। हिन्दू युनिवर्सिटीसे जब आप जा रहे थे तो बहुतसे लोग उनसे मिलने गए और कुछ लोगोंने उनके स्वास्थ्य और उनके बुढ़ापेका ध्यान करके कहा कि 'महाराज यदि न जाते तो अच्छा था, सरकार आपको बीचमें ही पकड़ लेगी।' उस समय मालवीयजीने सिर उठाकर बड़े तेजके साथ कहा 'देखें सरकार कैसे रोकती है? और फिर पकड़े तो डर क्या है'। यह कहकर उन्होंने एक श्लोक कहा—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यु
र्भयमिति युक्तमितः प्रयातु दूरं
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिह मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम्

अड़सठ वर्षके वृद्धके मुँहपर एक युवक सैनिकका जोश था। वे कलकत्ते गए, वहाँ व्याख्यान दिया और सरकार चुप मारकर बैठ रही। क्या मालवीयजी सरकारसे डरते हैं?

सन् १९२६ ई० में स्वराज्य पार्टीवालोंका मन कौन्सिलोंसे भर गया। सरकारने उनकी एक न सुनी। सरकारकी इस मनमानीको रोकनेका कोई उपाय भी तो न था। ये लोग व्यवस्थापिका सभासे बाहर निकल आए। इसीके बाद साइमन कमीशनका आगमन हुआ जिसमें एक भी भारतीय नहीं रक्खा गया था। इससे बड़ा हिन्दुस्थानका और क्या अपमान हो सकता था? देश भरने हड़ताल मनाई, जहाँ-जहाँ कमीशन घूमा वहाँ-वहाँ काले झण्डे दिखाए गए। ३१ अक्टूबर सन् १९२८ ई० की बात है। यह कमीशन लाहौर पहुँचा। मालवीयजी और लाला लाजपतराय स्टेशनपर बड़ी भीड़के साथ पहुँचे। सात बरस पहले जिसने प्रिन्स ऑफ़ वेल्सका अपनी बदनामी सहकर स्वागत किया था वह साइमन कमीशनके बहिष्कारके लिये जी-जानसे जुट गया। कितना भारी परिवर्त्तन हुआ होगा? वहाँ पुलीस और गोरे सिपाही मौजूद थे। डण्डे चले। लाला लाजपतरायको भी कई डण्डे लगे और वही चोट १७ नवम्बरको उनके प्राण ले गई। जवानोंका जोश मत पूछिए। लाला लाजपतरायकी मृत्युसे पञ्जाब गरज उठा और उस क्रुद्ध सिंहके पहले शिकार लाहौरके पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्ट सैण्डर्स साहब हुए।

इसी साल दिल्लीमें सर्वदल सम्मेलन हुआ। मईमें फिर बम्बईमें सम्मेलनकी बैठक हुई और पण्डित मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें एक कमिटी बैठी। लखनऊमें जब सर्वदल सम्मेलनकी बैठक हुई तो कुछ हेरफेरके साथ पण्डित मोतीलालजीकी डमीनियन स्टेटसकी सिफ़ारिश स्वीकार कर ली गई। कलकत्तेमें सन् १९२८ ई० में जब कांग्रेस हुई तो पूर्ण स्वतन्त्रता और डमीनियन स्टेटसके झगड़ेको लेकर बड़ा वाद-विवाद चला पर नेहरू-रिपोर्ट ही मञ्जूर हो गई और यह घोषणा कर दी कि यदि सरकार इसे नहीं मानेगी तो सत्याग्रह शुरू हो जायगा।

सन् १९२९ ई० की २४ अप्रैलको भरी असेम्बलीमें बम्ब गिरा। भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त पकड़ लिए गए। एक बार सारे देशने इन दोनों वीरोंके साहसकी प्रशंसा की, घर-घर उनके चित्र टँग गए और इन दोनोंका नाम अमर हो गया। इधर मालवीयजीने लौर्ड इर्विनसे मिलकर एक गोलमेज़ परिषद् करानेकी बातचीत छेड़ी। लौर्ड इर्विनको भी यह बात जँची और लिखा-पढ़ी शुरू हो गई। ३१ अक्टूबरको लौर्ड इर्विनने गोलमेज़ परिषद्की घोषणा की। इस गोलमेज़ परिषद् करानेका श्रेय एकमात्र मालवीयजीको ही है। सन् १९२९ ई० को पण्डित जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें कांग्रेस हुई और रही-सही कसर भी पूरी हो गई। पूर्ण स्वतन्त्रता ही भारतका ध्येय घोषित किया गया। कांग्रेसके सदस्योंने व्यवस्थापिका सभाओंसे इस्तीफ़ा दे दिया और २६ जनवरीको

स्वतन्त्रता दिवस मनानेकी घोषणा की गई। १२ मार्चको गान्धीजीका सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। फिर सरकारका दमन, फिर वही चक्र, जेल, ज़ब्ती, डण्डे और गोलियाँ। सरकारकी इम्पीरियल प्रेफ़रेन्स पौलिसी (शाही पक्षपात नीति) के कारण २ अप्रैलको मालवीयजी और सात अन्य राष्ट्रीय नेता भी व्यवस्थापिका सभाको नमस्कार करके चले आए। पेशावरमें गोलियाँ चलीं, वाइस आदमी मारे गए। मालवीयजी व्याकुल होकर पञ्जाबकी ओर दौड़ पड़े। उनका यह पञ्जाबका दौरा अलौकिक ही था। लोग मालवीयजीको देखनेके लिये पागल थे। स्टेशन-स्टेशनपर उनकी गाड़ी रोकी जाती थी। लोग विना उनके दर्शन किए, उनका व्याख्यान सुने, उन्हें आगे नहीं बढ़ने देने चाहते थे। एक स्थानपर तो लोग रेलके अञ्जनके सामने लेट गए, बैठ गए और मालवीयजीको विना

लोग अञ्जनके सामने पटरीपर बैठ गए हैं।

व्याख्यान दिए आगे नहीं बढ़ने दिया। वह भी क्या दृश्य था?

मालवीयजीके सबसे छोटे पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीय एम्० ए०, एल् एल्० बी० इन दिनों उनके साथ थे। पञ्जाबने सचमुच जिस उत्साह, भक्ति, श्रद्धा और तन्मयतासे अपने पुराने रक्षक और नेताका स्वागत किया था, वह पञ्जाबके ही योग्य था।

मालवीयजीको आज्ञा मिली कि पेशावरमें नहीं प्रवेश कर सकते, किन्तु वे न माने। सरकारने उनको पकड़ा तो नहीं पर रास्तेमें ही उनको दूसरी गाड़ीमें बैठाकर वापस कर दिया। २५ अप्रैलको श्री विट्ठलभाई पटेल भी अपनी कुर्सी ख़ाली करके चले आए। काले क़ानून जारी हो गए। गान्धीजी नमक क़ानून ६ अप्रैलको तोड़ चुके थे। सारा देश नमक बनानेमें लगा हुआ था। २ मईको गान्धीजी पकड़े गए, १५ मईको शोलापुरमें और १६ अगस्तको पेशावरमें मार्शल लौ जारी हुआ। युवकोंका जोश फिर उमड़ा। पिस्तौलें दगने लगीं। बेचारे कई अंग्रेज़ उनके निशाने बन गए।

पहली अगस्त सन् १९३० ई० की बात है। लोकमान्य तिलककी पुण्यतिथि मनाई जानेवाली थी। धोबी तालावतक जलूस पहुँचा ही था कि झड़ी लग गई, पर जलूसका एक आदमी भी इधर-उधर न हुआ। ज्यों-ज्यों जलूस आगे बढ़ता था, त्यों-त्यों लोग बढ़ते चले जा रहे थे। लोग छाते रखते हुए भी उन्हें नहीं लगा रहे थे। आगे-आगे महिलाएँ थीं और श्रीमती हंसा मेहता जलूसकी नेता थीं। हार्नबी रोडकी चौमुहानीपर क्रुकशैङ्क रोडपर पुलीसके हथियारबन्द दस्तेने जलूस रोक दिया। बहुत देर बैठे हो गई। पुलीसने सरकारकी आज्ञा सुनाई, पर मालवीयजी बोले कि हम ऐसी अन्यायपूर्ण आज्ञा नहीं मानेंगे और उन्होंने लोगोंसे कहा कि बैठ जाओ। लोग बैठ गए। थोड़े डण्डे चले, पर लोग टस-से-मस न हुए। इसी समय मालवीयजीकी पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्टसे एक झड़प हो पड़ी।

पुलीस सु०—जलूस आगे नहीं जा सकता।

मालवीयजी—अच्छा, हम यहीं खड़े रहेंगे।

सन् १९३० ई० में मालवीयजीकी पञ्जाब-यात्राके कुछ दृश्य।

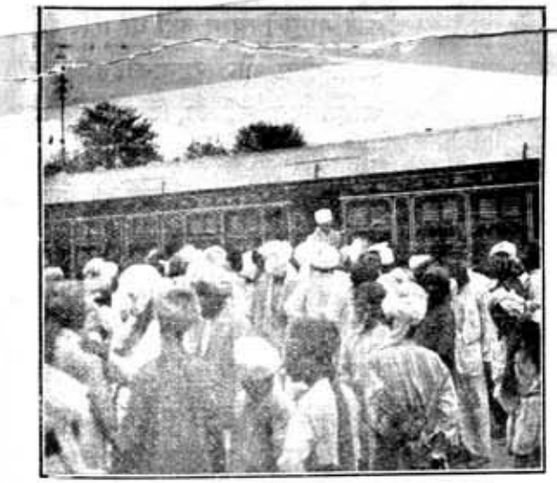

पुलीस सु०—कबतक?

मालवीयजी—अपने जीवनके अन्तिम दिनतक। तुम्हींको अपने देश वापिस जाना होगा।

पुलीस सु०—जब मैं पचासका होऊँगा तब यहाँसे जाऊँगा।

मालवीयजी—पीछे शत्रु बनकर जानेकी अपेक्षा इस समय मित्र होकर जाना ज़्यादा अच्छा है।

पुलीस सु०—आप लोग स्त्रियोंको जुलूसके आगे रखकर कोई बहादुरी नहीं दिखलाते।

मालवीयजी—कायरता तो तुम्हारी है, जो यदि यह ग़ैर-क़ानूनी जुलूस हो तो क्यों नहीं गिरफ़्तार करते। और क्या वे दिन भूल गए जब इङ्गलैण्डमें महिला आन्दोलन चला था, और तुम पुरुषोंने स्त्रियोंपर अत्याचार किए और फिर अन्तमें स्त्रियोंने तुम लोगोंकी बुरी गत बनाई थी।

पुलीस सु०—(झेंपकर) मैं तो भारत-सरकारकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ।

मालवीयजी, सरदार पटेल, श्रीजयरामदास

दौलतराम, डा० हर्डीकर, श्री शेरवानी इत्यादि कार्य-कारिणीके सदस्य और बम्बई कांग्रेस कमिटीके सदस्य कुल मिलाकर चालीस आदमी पकड़ लिए गए। ये लोग बैरीमें भरकर वाडकला जेल पहुँचाए गए। फिर भीड़पर पुलीसने बेतरह डण्डे चलाए। पण्डित गोविन्द मालवीय तब भी कभी-कभी उस

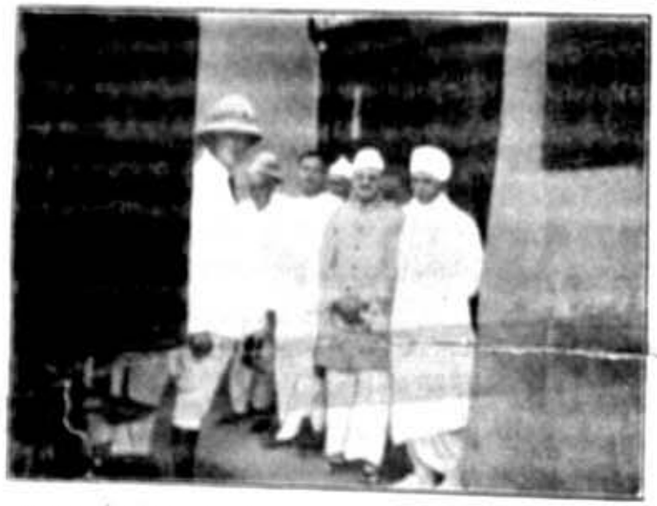

वाडकला जेलके फाटकपर सब नेताओंके साथ मालवीयजी पहुँचाए गए।

डण्डेकी चोटको याद करके अपना सिर टटोल लिया करते हैं। शनिवार २ अगस्तको दोपहर साढ़े ग्यारह बजे चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेटके यहाँ मुकदमा हुआ। मालवीयजीपर एक सौ रुपया जुर्माना हुआ, जुर्माना न देनेपर पन्द्रह दिनकी सादी कैद।

इधर मालवीयजीकी गिरफ्तारीकी खबर देश भरमें पहुँच चुकी थी। हिन्दू यूनिवर्सिटीमें जब यह समाचार आया तो विद्यार्थी एकदम आपेसे बाहर हो गए और एक सौ बीस विद्यार्थियोंका एक दल बम्बईमें सत्याग्रह करनेके लिये निकल पड़ा। ये लोग जिस दिन बम्बई पहुँचे उसी दिन शामको [illegible] छोड़ दिए गए। मालूम हुआ कि [illegible] जुर्माना दे दिया। मालवीयजीकी [illegible] काशीकी सार्वजनिक सभाने मालवीयजीको [illegible] दी थी और बाबू भगवानदासने कहा भी था कि "मालवीयजीका पकड़ा जाना राष्ट्रीय यज्ञकी पूर्णाहुति समझनी चाहिए।"

मालवीयजीको इस बातका दुःख बना ही रहा कि किसीने उनका जुर्माना दे दिया। इसीके बाद २७ अगस्त सन् १९३० ई० को दिल्लीमें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक डाक्टर अन्सारीके घर हुई। सब कार्रवाई करके लोग बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक पुलीस आई। कांग्रेस कार्य-समिति गैर कानूनी तो घोषित कर ही दी गई थी। ये लोग पकड़ लिए गए और सबको छः-छः महीनेकी सज़ा हो गई। ये लोग दिल्ली जेलमें पहुँचाए गए।

मालवीयजीके लिये जेलमें जाना कोई मामूली त्याग नहीं था। जिसका खाना-पीना और रहना-सहना उसकी आदत बन गई हो, जिनका छोड़ना उनके लिये प्राणत्यागके समान महत्त्व रखता हो, उसका बन्दी हो जाना कोई साधारण त्याग नहीं समझना चाहिए। मालवीयजीने जो आजतक तपस्या की थी यह तपस्या इस महा क्लेशसे और भी अधिक प्रदीप्त हो उठी। इतने दिन बाद लोगोंने वास्तवमें मालवीयजीको पहचाना। उन्हें ऐसे बन्दी जीवनकी आदत नहीं थी। कोयल जब खुली रहती है और गाती रहती है तो उसे कुछ अनोखा ही सुख मिलता है, पिंजड़ेमें दाना-पानी मिलनेपर भी उसकी वह मस्ती नहीं रहती। मालवीयजीका बोलना बन्द हो गया। यह उनके लिये बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। लकवाका मुँह तो बन्द कीजिए फिर देखिए उसकी क्या हालत होती है। जो मालवीयजी दस बरस पहले वाइसरायकी स्पेशल ट्रेनपर चढ़कर प्रयागसे दिल्ली आए थे वही मालवीयजी सरकारके बन्दी बनकर स्पेशल ट्रेनमें दिल्लीसे नैनी जेल पहुँचाए गए। दिनोंका फेर था। यहाँ उन्हें बहुतसे साथी भी मिल गए। यहाँ

दिल्ली जेलमें मालवीयजी।

पण्डित जवाहरलाल और आर० एस्० पण्डित भी थे। मालवीयजीने श्री पण्डितसे जर्मन भाषा पढ़नी शुरू कर दी। यहाँ उनके मनकी एक बात उन्हें मिल गई कि वे शामको सब क़ैदियोंको भागवत और महाभारतका उपदेश देने लगे। पर थोड़े दिनों बाद ही वे बीमार पड़ गए। वहाँसे सरकारी अस्पतालमें भेजे गए जहाँसे आप सहसा छोड़ दिए गए।

बुधवारके प्रातःकाल मालवीयजी योरोपियन सिविल अस्पताल इलाहाबादसे छूटकर मोटरमें सवार हो रहे हैं। कितने दुर्बल हो गए हैं।

जेलसे छूटनेके बाद इलाहाबादसे बनारस जाते समय इतने दुर्बल थे कि ज़रा भी पैदल नहीं चल सकते थे।

अगले साल सन् १९३१ ई० की २३ मार्चको भगतसिंह और उसके दो साथियोंको फाँसी हुई। उनको बचानेके लिये सारे देशने हस्ताक्षर करके वायसरायके पास पत्र भेजे, पर वायसरायने एक न सुनी। उन दो-तीन जवानोंसे ही सरकार इतना डरती थी कि उनका जीवन बचाकर अपनी उदारताका परिचय देनेमें भी उसे भय लगता था। २९ मार्चको करांचीमें कांग्रेस हुई। भगतसिंहके बारेमें मालवीयजीने जो व्याख्यान दिया, वह बस पढ़ने ही लायक़ है। कोई भी सहृदय बिना रोए नहीं रह सकता।

गोलमेज़ परिषद्

इसी बीच लन्दनमें पहली गोलमेज़ परिषद् हो चुकी थी। २५ दिसम्बर सन् १९३१ ई० को कांग्रेसके बड़े नेता छूट गए। सप्रू-जयकरके उद्योगसे और मालवीयजीके सहयोगसे गान्धी-इर्विन समझौता हुआ। लोग बड़े निराश हुए। पर करांची कांग्रेसमें उसका समर्थन हो गया और कांग्रेसने गान्धीजीको ही गोलमेज़के लिये अपना प्रतिनिधि चुना। मालवीयजीको भी गोलमेज़का निमन्त्रण मिला था और वे तैयार हो गए। उनका तैयार होना एक ऐतिहासिक घटना ही समझनी चाहिए। एक ओर जन्म-जन्मान्तरके संस्कार उन्हें अपनी ओर खींचते जा रहे थे, दूसरी ओर खड़ी हुई थी पैंतीस करोड़ भारतवासियोंकी माँ, जिसके तनपर वस्त्र नहीं थे, शरीरपर मांस नहीं था, और जो चुपचाप आँसू बहा रही थी। इस द्वन्द्वने मालवीयजीको कितना परेशान किया होगा यह वे ही लोग समझ सकते हैं जो मालवीयजीको जानते हैं। पर माँके आँसुओंमें पुरानी रूढ़ियाँ बह गईं। 'राजपूताना' जहाज़की सीटी बजी और मालवीयजी अपने उसी ब्राह्मण-वेशमें सवार हो गए। मालवीयजी समझ रहे थे कि शेर घास खाने

लगेगा, साँप डसना छोड़ देगा, लोमड़ी अपनी चालाकी छोड़ देगी। सतयुगकी बात भला कलियुगमें कैसे हो सकती थी। जिसने जीवन भर समुद्रयात्राको पाप समझा हो और जिसका धार्मिक हृदय समुद्रयात्राकी कल्पना ही न कर सकता हो उसने अपने देशके लिये यह यात्रा स्वीकार करके अपनी सबसे प्यारी वस्तु धर्मको भी देशके लिये अर्पण कर दी। यह उनका सबसे बड़ा त्याग था। मालवीयजीके लिये विलायत जाना दधीचि और शिविके त्यागसे कम महत्त्व न रखता था। ७० वर्षकी अवस्था और दुर्बल देह लेकर बड़ी आशासे मालवीयजी गान्धीजीको साथ लेकर रेतीसे तेल निकालनेके लिये लन्दन जानेको तैयार हो गए।

२९ अगस्त सन् १९३१ ई० को महात्मा गान्धीके साथ मालवीयजी विलायतके लिये रवाना हो गए।

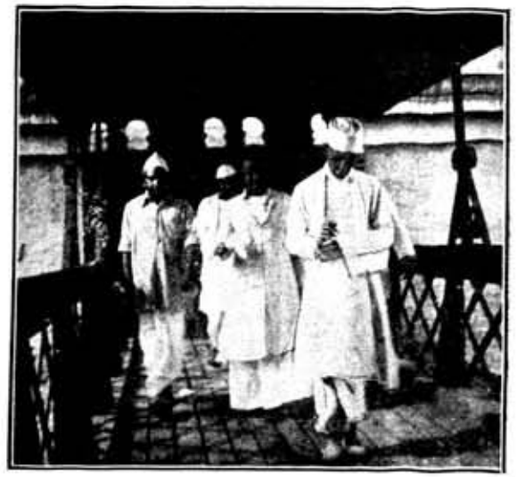

इङ्गलैण्ड जाते समय इलाहाबाद स्टेशनके पुलपर मालवीयजी चलते-चलते भी एक लेख ठीक कर रहे हैं।

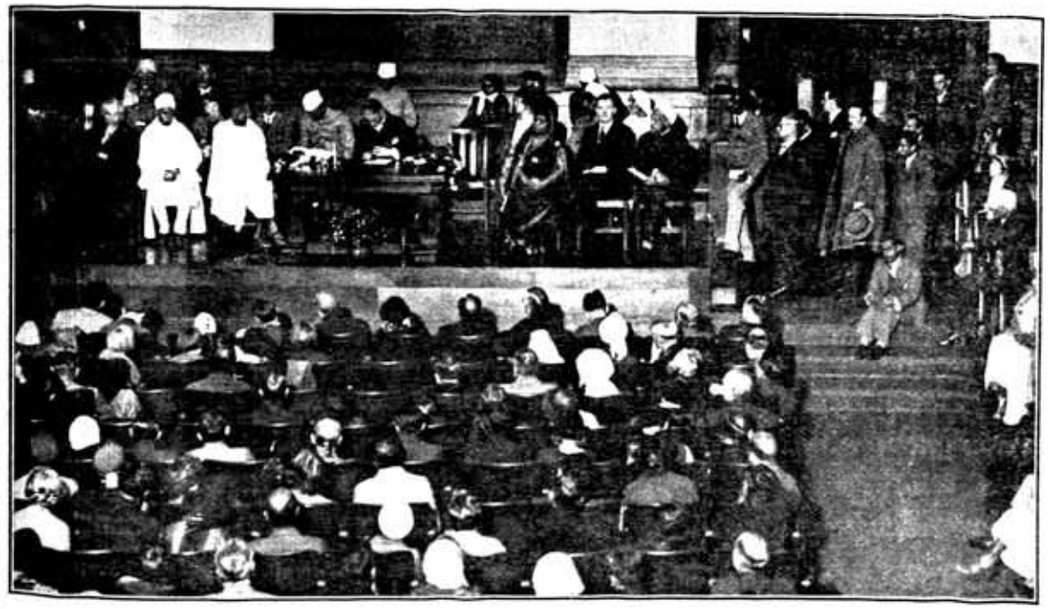

महात्माजी और मालवीयजी १२ सितम्बर सन् १९३१ ई० को लन्दन पहुँचे। तत्काल ये लोग वहाँ यूस्टन रोडपरके 'फ़ेरडूस मीटिङ्ग हाउस' में पहुँचाए गए जहाँ इनका शानदार स्वागत हुआ। यहाँ अंग्रेज़ और भारतीय सब मौजूद थे।

सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें १४ सितम्बर सन् १९३१ ई० की भारतीय गोलमेज़ परिषद्की सङ्घ-निर्माण-समितिमें। बीचमें लौर्ड सैङ्के, उनके बाँई ओर महात्माजी और मालवीयजी बैठे हैं।

मालवीयजी अपने रसोइया, अपनी सामग्री और अपने पुत्र पण्डित गोविन्द मालवीयको साथ लेकर गए थे।

इङ्गलैण्डमें इण्डियन एसोसिएशनने इन लोगोंका बड़ा स्वागत किया। लन्दन पहुँचकर इन्होंने हर बातमें गान्धीजीका साथ दिया। वहाँ सेनाकी व्यवस्था और संरक्षणके विषयमें जो आपने व्याख्यान दिए थे वे बड़े महत्त्वके हैं। पर जो आशा लेकर वे गए थे वह पूरी हुई इसमें सन्देह है।

गोलमेज़ परिषद्के अतिरिक्त उन्होंने लन्दनके वैज्ञानिकोंको बुलाकर एक सभामें हिन्दू धर्मकी महत्ता और ईश्वरके अस्तित्वपर व्याख्यान दिया, जिसपर सभी वैज्ञानिकोंने कहा कि यदि वास्तवमें हिन्दू धर्म यही है तो वह वास्तवमें भव्य है। मालवीयजी इस यात्रामें योरोपमें भी घूमे, बहुतसे विश्वविद्यालय देखे और फ्रान्समें पाली और संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सिल्वन लेवीसे भी मिले।

१४ जनवरी सन् १९३२ ई० को मालवीयजी लौट आए। उस समय भारतमें पुलीसका राज्य था। सब नेता बन्द किए जा चुके थे। सरकारका दावा था कि कांग्रेस कुचली जा चुकी है।

मालवीयजीने सरकारकी नीतिकी कड़ी आलोचना की और एक तारद्वारा यहाँके अत्याचारोंका विवरण देकर विलायत भी भेजा, पर सरकारकी कृपासे वह तार भारतकी सीमा न पार कर सका। इसीके

३० नवम्बर, सन् १९३१ ई० को सेण्ट जेम्स पैलेस लन्दनमें थर्ड सेशनके प्रारम्भ होनेके समय मालवीयजी और गान्धीजी।

बाद दिल्लीमें कांग्रेस होनेवाली थी। सरकारने कांग्रेसकी मनाही कर दी थी। मालवीयजी अध्यक्ष चुने गए। काशीमें उन्हें निषेधाज्ञा मिली, पर उन्होंने इन गीदड़-भभकियोंकी चिन्ता न की और निडर होकर चल दिए। दनकौर स्टेशनपर ही उतरकर ये मोटरसे दिल्लीकी ओर चले, पर यमुना पुलपर पकड़ लिए गए। फिर भी सेठ अमृतलाल रणछोड़लालकी अध्यक्षतामें पुलीस थानेके पास घण्टा-घरपर दिल्लीमें कांग्रेस हुई। सरकार मुँहकी खाकर रह गई। मालवीयजी तीन-चार दिन बाद गाड़ीमें बैठाकर इलाहाबाद पहुँचा दिए गए।

इसीके अगले साल फिर कलकत्तेमें कांग्रेस हुई। फिर मालवीयजी अध्यक्ष चुने गए। इस बार फिर

स्व० डा० सिल्वन लेवी और मालवीयजी एक पुस्तक देख रहे हैं। पेरिसमें।

मालवीयजी और गान्धीजीने इस लिङ्कटनकी दुग्धशालाका निरीक्षण किया और संसारकी सर्वश्रेष्ठ बकरियोंको देखा। गान्धीजी और मालवीयजीके बीचमें मिसस्लेड (मीरा बहन) दिखाई दे रही है।

जेलमें तपस्वी मालवीयजी सन्ध्या कर रहे हैं।

वे आसनसोल स्टेशनपर पकड़े गए और सात-आठ दिनतक वहाँ रक्खे जानेके बाद फिर छोड़ दिए गए।

साम्प्रदायिक निर्णयके फ़ैसलेपर गान्धीजीको यह देखकर बड़ा असन्तोष हुआ कि सरकारने दलित वर्गको हिन्दुओंसे अलग कर दिया है। उन्होंने सितम्बर सन् १९३२ ई० में यरवदा जेलमें आमरण अनशन करनेका प्रण किया। मालवीयजीने फिर दौड़-धूप शुरू की। पता नहीं कहाँसे वे इतनी शक्ति बटोरकर लाए। पूनामें सभा हुई, सब नेतागण इकट्ठा हुए और फ़ैसला हो गया। इस फ़ैसलेका सारा श्रेय मालवीयजीको ही है।

लन्दनमें मालवीयजी और उनके पुत्र गोविन्दजी।

'राजपूताना' जहाज़पर मालवीयजी पढ़ रहे हैं।

जेलमें मालवीयजी सन्ध्या कर रहे हैं।

जेलमें अपनी बैरकके सामने।

जेलमें मालवीयजी अपना स्वाध्याय कर रहे हैं ।

पूनामें बहुत तनाव हुई । गान्धीजीका उपवास चल रह था । समय खोनेके लिये बिलकुल नहीं था । अब एकसे बातचीत, फिर दूसरेसे । मालवीयजी थक गए थे, पर उनकी हिम्मत बनी रही ।

इसमें ही वे बहुत दुर्बल हो गए थे किन्तु उधर हिन्दू मुस्लिम एकताका प्रश्न आ पहुँचा । फ़ौरन् पञ्जाब दौड़े गए । वहाँसे बङ्गाल और फिर युक्तप्रान्त । इलाहाबादमें एकता सम्मेलन हुआ । सोलह-सोलह, बीस-बीस घण्टे परिश्रम किया और उससे छुट्टी मिलते ही केरलमें हरिजनोंकी समस्या सुलझाई । जान पड़ा कि जैसे सर्वशक्तिमान् परमेश्वरने अपनी सम्पूर्ण शक्ति ही उन्हें दे दी है ।

इसी बीच १५ जनवरी सन् १९३४ ई० को बिहारमें भूकम्प हुआ । सब कुछ भूलकर मालवीयजी निहारके आँसू पोंछनेमें लग गए । स्वयं भी वहाँ

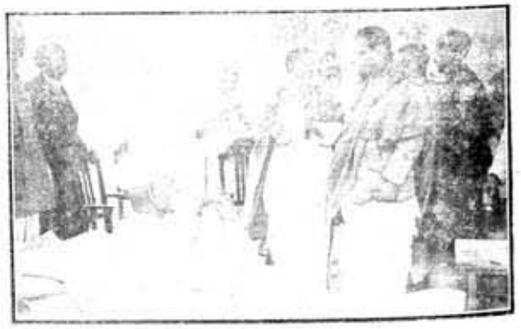

नेशनलिस्ट पार्टीकी सभा काशीमें ।

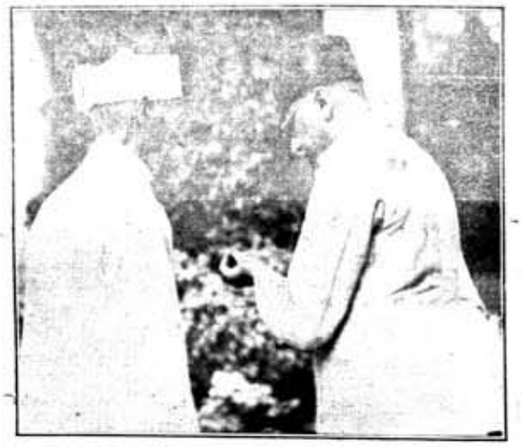

पूनामें पर्णकुटीपर मौलाना अबुलकलाम आज़ादके साथ मालवीयजी गहरा परामर्श कर रहे हैं ।

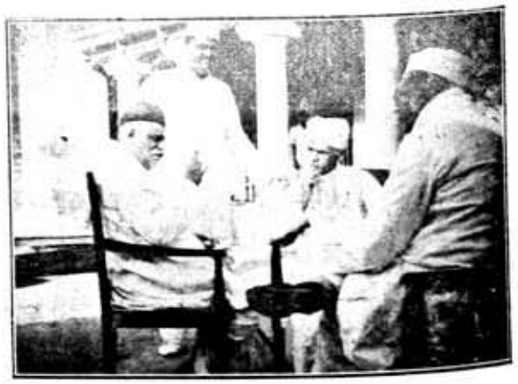

अणेजी और मालवीयजी काशीमें ।

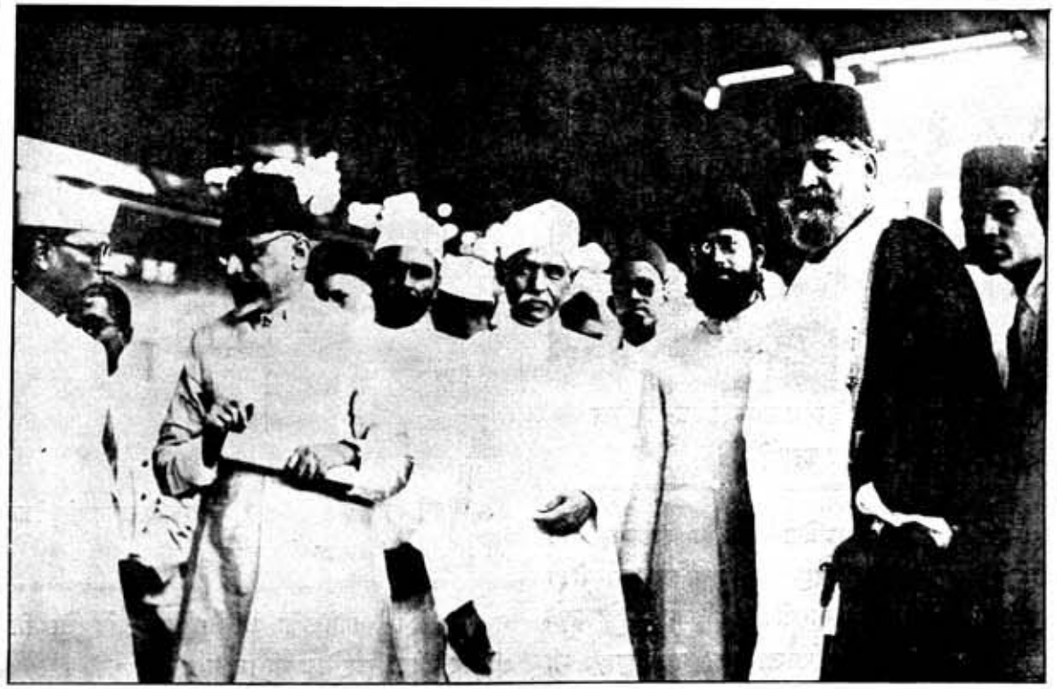

सर्वश्री आसफ़ अली, अबुल कलाम आज़ाद, पण्डित मदनमोहन मालवीयजी, मौलाना शौक़त अली आदि नेताओंका पूना जाते हुए बम्बई स्टेशनपर स्वागत ।

गए और लोगोंसे बहुतसा रुपया भी एकत्र करके भेजा ।

१८, १९ मई सन् १९३४ ई० को पटनामें कांग्रेसकी महा समिति बैठी । मालवीयजी तथा डाक्टर अन्सारीको पार्लमेण्टरी बोर्ड बनानेका भार दिया गया । पर साम्प्रदायिक बँटवारेके विषयमें कांग्रेसकी उदासीन नीतिके कारण मालवीयजी और अणे अलग हो गए और १८ तथा १९ अगस्त सन् १९३४ ई० को कलकत्तेमें मालवीयजीकी अध्यक्षतामें कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी बनी । कांग्रेसमें रहकर भी मालवीयजी कांग्रेससे सहमत न हो सके और उन्हें लाचार होकर चुनावमें कांग्रेससे लड़ना पड़ा । यद्यपि कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टीको चुनावमें सफलता न मिली पर मालवीयजी अपनी बातपर डटे रहे ।

श्री विधानचन्द्ररायसे बम्बईमें मालवीयजी गम्भीर बातें कर रहे हैं ।

सरदार शार्दूलसिहके साथ साम्प्रदायिक निर्णयपर बातचीत कर रहे हैं।

कांग्रेसमें मालवीयजी गान्धीजीको कांग्रेस न छोड़नेका अनुरोध कर रहे हैं।

इधर गान्धीजीने कांग्रेससे अलग होनेकी बात चलाई। सब लोगोंने बहुत समझाया पर गान्धीजी अपनी बातपर डटे रहे। गान्धीजीने हरिजन-आन्दोलनके लिये अपनेको अगल रक्खा था, पर कुछ भी क्यों न हो गान्धीजीका अलग होना राष्ट्रको अच्छा न लगा, पर गान्धीजी अलग हो ही गए। किन्तु लोग उनको जितना अलग समझते थे वे उतने अलग न हो सके। कांग्रेसको उनको आशीर्वाद तो मिला ही पर उनका सहयोग भी मिला।

२८ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को बम्बईमें कांग्रेसने अपने पचासवें वर्षमें पदार्पण किया। और जिस स्थानपर पचास वर्ष पहले कांग्रेस हुई थी वहीं उसके स्मारकमें उसकी स्मृति-शिला रक्खी गई जिसका उद्घाटन राष्ट्रके सबसे प्राचीन सेवक महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके हाथों ही हुआ।

इसके बाद फिर देश चुप मारकर बैठ गया। नेता लोग व्यवस्थापिका सभाओंके चक्करमें पड़ गए। २८ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को फ़ैजपुरमें—बिलकुल देहातमें—कांग्रेस हुई और वे मालवीयजी जो पचास बरस पहले कांग्रेसके जन्मदाताओंके साथ दिखाई दिए थे वे फिर कांग्रेसके पुत्रोंके साथ दिखाई दिए। वेष और तेजमें बिलकुल वैसे ही। केवल बुढ़ापा उनके सफ़ेद बालोंमेंसे झाँक रहा था। फ़ैजपुर कांग्रेसमें जो उनका जोशीला व्याख्यान हुआ वह वैसा ही था जैसा पचास बरस पहले, पर उसका भाव बहुत कुछ बदला हुआ था। मालूम पड़ता था कि जो कांग्रेस पचास बरस पहले अपने

बम्बई कांग्रेसके मञ्चपर बा० राजेन्द्रप्रसाद, डा० अन्सारी, गान्धीजी और मालवीयजी।

बम्बईके तेजपाल संस्कृत विद्यालयमें २८ दिसम्बर सन् १९३५ ई० को कांग्रेस स्वर्ण जयन्तीके अवसरपर उसकी स्मृति शिलाका उद्घाटन मालवीयजी कर रहे हैं।

बचपनमें दूसरोंसे माँगकर पानी पीना चाहती थी वह अपने हाथसे अपने पैरोंपर खड़ी होकर अपने घड़ेसे उँड़ेलकर पानी पीनेको तैयार है। बेबसी दूर हो गई है। बाहरसे स्वतन्त्रता भले ही न हो पर भीतरसे मन बिलकुल स्वतन्त्र हो गया है। अब भट्टीमें कूदनेसे डर नहीं लगता।

पचास बरस—पूरे पचास बरस हो गए। जिस वीर योद्धाने अपनी जवानीमें देशकी रक्षाके लिये पेटी कसी थी, वह आज भी उसी तरहसे बल्कि उससे भी दुगुने जोशसे खड़ा है, ख़म ठोंककर खड़ा है, मुँहपर ज़रा भी तो कमज़ोरी नहीं दिखाई पड़ती। न जाने कितने पुराने साथी खेत रहे, कितने मैदान छोड़कर भाग गए, कितनोंको बुढ़ापेने बेबस कर दिया। अगर कोई एक बहादुर ऐसा है, जो शुरूसे आख़ीरतक पितृ-भक्त पुत्रके समान सारे राष्ट्रकी प्रसन्नता और अप्रसन्नतामें अपना सुख और अपना घर त्यागकर निरन्तर मन, वचन और कर्मसे राष्ट्रकी सेवा कर रहा हो, जिसके प्रत्येक कार्य्यमें भारतका कल्याण छिपा हो, जो प्रत्येक प्रार्थना भारतकी हित-कामनाके लिये करता हो, जिसके उपदेशोंमें देश-सेवाका राग भरा हो—वह मालवीयजी हैं। लोगोंको महापुरुषोंकी तुलना करनेमें आनन्द आता है। पर वे अतुलनीय होते हैं। ग्रहोंके समान अपनी-अपनी महत्ता लिए हुए वे ज्योतिष्पिण्ड अपनी कक्षामें घूमते रहते हैं। वही उनका महत्त्व होता है। यों अलग-

अलग कोई किसीकी भले ही पूजा करे, किन्तु जब अवसर पड़ता है तो नव ग्रहोंकी पूजा एक साथ की जाती है। महात्मा गान्धी और मालवीयजी ये दोनों विभूतियाँ एक साथ भारतके कल्याण करनेके लिये आईं। दोनोंकी शक्तियोंने मिलकर जो काम किया, उसको इतने थोड़े पन्नोंमें कोई कहाँतक वर्णन कर सकेगा। भारतके इन पिछले पचहत्तर वर्षोंका इतिहास और फिर मालवीयजीके राजनीतिक जीवनका इतिहास यदि लिखा जाय तो कई हज़ार पन्ने भर जायँगे। हमने तो झाँकी भर दी है। सूर्य्यकी धूप और गरमीसे ही उसके प्रचण्ड तेजका अनुमान किया जा सकता है। उसको पूरा देखनेका प्रयत्न कीजिएगा तो आँखें चुँधिया जायँगी, आप पूरी तरहसे देख भी न पावेंगे।

कांग्रेसकी तीसरी पीढ़ीके साथ

२८ दिसम्बर सन् १९३६ ई० को फ़ैजपुर कांग्रेसमें मालवीयजी—पहले चित्रसे तुलना तो कीजिए।

सरकारी दुर्गमें

जब आमके पेड़में बौर आता है तब उसकी महक बग़ीचेके सब कोनोंमें तो फैलती है पर उसका परिमल हवाके साथ बग़ीचेके बाहर भी फैलता है। सारा वायुमण्डल एक अजीब मतवाली गन्धसे महक उठता है। यही बात मनुष्यके साथ भी होती है। गुणी मनुष्य चाहे अपनेको कितना भी एकान्तमें रक्खे, छिपाकर रहे, पर उसके गुण उसके लिये गाहक पैदा करने ही लगते हैं। चित्रको देखकर चित्रकारके दर्शन करनेकी लालसा होती है, कविता पढ़कर कविसे मिलने और उसके दर्शन करनेको जी छटपटाता है, किसीका मधुर गीत सुनकर उसको एक बार देखनेको मन ललचाता है। संसारमें सभी गुणोंके पारखी नहीं होते पर जो होते हैं वे गुणीको सात पर्दोंमेंसे खोज निकालते हैं और फिर उसको उसके योग्य सम्मान देनेमें अपना गौरव समझते हैं।

'हिन्दुस्थान' के सम्पादकने बड़ा नाम कमाया था। इससे पहले लोग कांग्रेस मञ्चपर उसके व्याख्यानोंपर तालियाँ गड़गड़ा चुके थे। न जाने कितने नौजवान मालवीय बननेकी आकाङ्क्षा कर चुके थे। जब बाहरवाले क़द्र करना शुरू करते हैं तभी घरवाले भी क़द्र करते हैं। मालवीयजीके मित्रोंने और उनके हितचिन्तकोंने उन्हें म्युनिसिपैलिटीके सदस्य बनकर नगरकी सेवा करनेकी सलाह दी। मालवीयजी खड़े तो हो गए, पर चुनावके हथकण्डोंसे वे परिचित न थे। वे समझते थे कि जिसने वचन दिया है वह अवश्य वोट देगा, पर बात ऐसी नहीं थी। चुनावमें लोग कहते कुछ हैं, करते कुछ। चुनावके समय लोग चाणक्य बन जाते हैं। म्युनिसिपैलिटीका चुनाव हुआ, पर मालवीयजी न जीत सके। उस समय लोग उनका मूल्य नहीं समझ सके थे, फिर चुनावमें योग्यताका तो प्रश्न होता ही नहीं—यह हिन्दुस्थानमें ही नहीं, दुनिया भरमें यही बात है—वहाँ तो दलका ध्यान रक्खा जाता है, दोस्ती निबाही जाती है, अहसान चुकाया जाता है। जो दलसे दूर हो और जिसके आत्म-सम्मानने किसीसे अहसान लेनेकी हिम्मत ही न की हो वह क्या करे? मालवीयजी हार गए। पर उनकी सेवाओंने लोगोंके हृदय बदल दिए, धारणाएँ बदल दीं। फिर दूसरी बार वे प्रयाग म्युनिसिपल बोर्डमें चुने गए। वे लद्धड़ सदस्योंमेंसे नहीं थे जो वोट माँगते समय बड़े लम्बे-चौड़े वादे करते हैं और चुन जानेपर आरामसे लेटते हैं, उधर आँख उठाकर भी नहीं देखते। मालवीयजीने शहरकी सफ़ाई और उसका सौन्दर्य बढ़ानेके लिये जो प्रयत्न किया उससे लोग बड़े प्रसन्न हुए और फिर वे सर्वसम्मतिसे सीनियर वाइस चेयरमैन भी बना दिए गए। उनके ज़मानेमें पुराने प्रयागकी कायापलट हो गई। खँडहरों, पुराने गन्दे महल्लों और वीहड़ स्थानोंमेंसे भव्य भवन, चौड़ी खुली सड़कें और दूकानें निकल आईं, सुन्दर मुहल्ले बसने लगे। इलाहाबादका लूकरगञ्ज नामका मुहल्ला मालवीयजीके ही प्रयत्नका फल है।

इसीके बाद प्रयागमें बड़े ज़ोरोंसे ताऊन फैला। लोग घर छोड़कर अपनी-अपनी जान लेकर भागने लगे। पड़ोसी पड़ोसीको भूल गया। बड़े लोगोंने

बँगलोंकी शरण ली। छोटे लोग शहरसे बाहर चले गए। बूढ़े-बूढ़े लोग, जिन्हें भगवानसे मिलनेकी जल्दी थी या जिन्हें घरवालोंने फ़ालतू समझ रक्खा था, वे बेचारे रह गए थे। ऐसे समयमें अपनी प्राणोंकी ममता छोड़कर मालवीयजी प्रयागकी गलियोंमें घर-घर घूमकर बीमारोंका पता लगाते, उनकी दवा दारू करते, ढाढ़स बँधाते, मकानको दवासे धुलवाते, बीमारको अस्पताल भिजवाते और जो अपने घरको अपनी जानसे बढ़कर प्यार करते थे उन्हें शहरके बाहर रहनेकी सलाह देते थे। सरकारी अफ़सर रौबसे काम लेते थे। लोग इस महामारीसे इतने घबरा गए थे कि सरकारी अफ़सर और डाक्टर लोग उन्हें कालके समान जान पड़ते थे। मालवीयजीने शहरके बाहर म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे हेल्थ-कैम्प लगवा दिया था कि शहर छोड़कर लोग वहाँ रहें। ऐसा जान पड़ा मानों भगवान स्वयं उस विपत्तिसे उनकी रक्षा करने आ रहे हैं। उनका दिव्य स्वरूप, उनकी दिव्य वाणी और उनका दिव्य त्याग—सबने मिलकर मालवीयजीको देवता बना दिया।

सरकारको भी इस सुमनकी गन्ध पहुँची। उन दिनों संयुक्तप्रान्तीय व्यवस्थापक सभामें बारह सदस्य होते थे जिन्हें सरकार चुनती थी। ये सब सदस्य सरकारकी आँख देखकर चलते थे। 'अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक' की भाँति अपने अन्नदाताके इशारेपर दिनको तारे दिखानेमें भी सङ्कोच न करते थे। प्रजा जाय चूल्हेमें, हज़ूर खुश रहने चाहिएँ। उस समयतक राजनीतिक आत्म-सम्मान पूरी तरहसे उदय नहीं हुआ था। जो भिक्षा दे उसीको आशीर्वाद मिलता था। कौन्सिलकी नियुक्तिके दिन थे। काशीके प्रसिद्ध नेता श्री रामकाली चौधरीने मालवीयजीसे कहा—"कौन्सिलमें तुम ही जाओ, तुम ही रास्ता दिखाओ।" पर उस समय पण्डित विश्वम्भरनाथजी युक्तप्रान्तके बहुत बड़े नेताओंमें थे। मालवीयजी भी उनको बहुत मानते थे। जबतक वे जीवित रहे तबतक मालवीयजीने व्यवस्थापक सभामें पैर रखनेका नाम भी न लिया। सन् १९०३ ई० में पण्डित विश्वम्भरनाथजीकी मृत्युसे कौन्सिलमें जो स्थान ख़ाली हुआ, उसमें मालवीयजीको ही सरकारने नियुक्त किया।

मालवीयजीने सरकारको 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहनेवाली प्रथा ही उलट दी। उन्होंने कभी जनताके हितकी हत्या करके सरकारका पक्ष नहीं किया। सरकार जिसे बकरी समझे हुए थी वह बाघ निकला। सरकारको मालवीयजीकी नियुक्तिपर अफ़सोस तो ज़रूर हुआ होगा।

सन् १९०३ ई० में सरकारने 'बुन्देलखण्डमें ज़मीनकी बेदख़ली' के क़ानूनका मसौदा पेश किया। मालवीयजीने कहा कि यह प्रस्ताव राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध है और १९ जनवरी सन् १९०३ ई० को इस क़ानूनका घोर विरोध किया। पर क़ानून पास हो गया। अकेला चना भाड़को भला कैसे फोड़ सकता था! इस क़ानूनसे बुन्देलखण्डको जो हानि हुई है उसे बुन्देलखण्डवाले भली भाँति जानते हैं।

इसके अतिरिक्त सन् १९०४, १९०६ और १९०७ ई० में मालवीयजीने सालाना कच्चे चिट्ठेके अवसरपर बड़े मार्केके व्याख्यान दिए और शिक्षापर अधिक रुपया व्यय करने, पुलीसका सुप्रबन्ध करने, सरकारी नौकरीमें भारतवासियोंको उच्च स्थान मिलने, कलक्टरीकी परीक्षा भारतमें होने, प्रजाके स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुधार करने आदि विषयोंपर बड़ा ज़ोर दिया और इनमेंसे बहुतसी बातें सरकारने मानी भी। उस समयके सदस्योंमें केवल मालवीयजी ही ऐसे थे जो शत्रुके दुर्गमें उससे मोर्चा ले रहे थे, वे ही एक ऐसे महापुरुष थे जो वहाँ प्रजाहितकी साधना कर रहे थे।

सन् १९०८ ई० में संयुक्तप्रान्तकी सरकारने पुलीसका ख़र्च बढ़ा दिया। मालवीयजीने बड़े कड़े शब्दोंमें इसका विरोध किया और चेतावनी दी कि ऐसा करनेसे लोग सरकारकी नीयतमें सन्देह करने लगेंगे।

सन् १९०९ ई० में भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभामें सुधार हुआ। प्रान्तीय व्यवस्थापक सभासे दो प्रतिनिधि चुनकर भारतीय व्यवस्थापक सभामें भेजनेका नियम बना। पहली ही बार इन दो सदस्योंमेंसे एक मालवीयजी चुने गए, और फिर बराबर वे उक्त सभाके सदस्य रहे। इस सभामें मालवीयजीका सबसे पहला गम्भीर और ज़ोरदार व्याख्यान 'प्रेस ऐक्ट' पर हुआ था। मालवीयजी और माननीय श्री बसु ही ऐसे दो व्यक्ति थे जिन्होंने उसका विरोध किया। मालवीयजीने कहा था कि "यदि प्रान्तीय सरकारकी इच्छापर ही प्रेस छोड़ दिए जायँगे तो उन्होंने आजतक जिस स्वतन्त्रतासे सरकारकी नीतिकी आलोचना की है वह न हो सकेगी।" पर यह क़ानून भी पास हो गया, और प्रान्तीय सरकारोंने इस विषयमें जिस स्वेच्छाचारितासे काम किया है उससे मालवीयजीकी भविष्यवाणी सत्य ही होगई।

सन् १९१० ई० में माननीय जेन्किन्स महोदयने जब विद्रोह-सभा-क़ानून पेश किया उस समय मालवीयजीने और गोखलेजीने बड़ी स्वतन्त्रता और निर्भयतासे उस क़ानूनका विरोध किया और मालवीयजीने यह भी कहा कि 'इस क़ानूनके प्रयोगमें जो ज़्यादतियाँ की जायँगी उनसे सम्भव है कि लोग और भी भड़क उठें और जिस रोगकी यह दवा होने जा रही है वह रोग दुगुना बढ़ जाय।'

इसीके बाद गोखले महोदयने अपना प्रारम्भिक शिक्षा-विधान पेश किया। मालवीयजी तो प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी थे ही। शिक्षाके प्रसार और प्रचारके लिये तो उन्होंने अबतक काम ही किया था। मालवीयजीने बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें इसका समर्थन किया और देशकी अशिक्षाका विस्तारसे वर्णन करके शिक्षा-प्रचारके लाभ बताए।

पर शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उनका व्याख्यान हुआ था शर्त्तबन्द कुली-प्रथापर। सन् १९१० ई० में गोखलेजीने इस विषयपर विफल प्रयास किया था। पर लौर्ड हार्डिञ्जके समयमें मालवीयजीने इसपर आवाज़ उठाई। श्री सी० एफ़० एण्ड्रूज़ प्रवासी भारतीयोंकी दुर्दशा देखकर लौटे थे। मालवीयजीने ऐसे करुण शब्दोंमें बेचारे प्रवासियोंकी दुर्दशाका वर्णन किया कि सरकारका कड़ा हृदय भी पिघल उठा और लौर्ड हार्डिञ्जने यह घोषणा की कि उन्होंने और भारत-सचिवने इस प्रथाको सदाके लिये बन्द कर देनेका निश्चय कर लिया है। इसके बाद हिन्दू-युनिवर्सिटी-बिल आया और उनके लिये उन्होंने जो अपील की वह अद्वितीय थी।

सन् १९१६ ई० में जहाँगीराबाद एमेण्डमेण्ट बिलपर जो उन्होंने व्यवस्थापक सभाके भीतर और बाहर व्याख्यान दिए थे, वे भी बेजोड़ थे।

लड़ाईके बाद सरकारकी नीयत ख़राब हो गई। सन् १९१८ ई० में चिन्सेण्ट महोदयने रौलेट् बिल ला रक्खा। इसपर सारा देश व्याकुल हो उठा। मालवीयजीने इसपर जो व्याख्यान दिया वह व्यवस्थापक सभामें अद्वितीय समझा जाता है। साढ़े चार घण्टेतक पैरोंपर खड़े होकर बिना पानी पिए लगातार अपनी ओजपूर्ण वाणीद्वारा उन्होंने रौलेट् क़ानूनके दोष दिखलाए और उसकी निःसारता प्रकट की। मालवीयजीकी तर्कशक्ति, उनका विस्तृत क़ानूनका ज्ञान, उनकी विशाल बुद्धि और सबसे बढ़कर उनकी नीतिज्ञताका पूर्ण परिचय उस व्याख्यानसे मिलता है। यह विधान भी पास हो गया। मालवीयजी लौर्ड चेम्सफोर्डके प्राइवेट सेक्रेटरीसे मिले और कहा कि छः महीनेतक इसे काममें न लावें। इसपर श्री शङ्करन नायरने कहा कि इसे तो उन्होंने पहले ही मार डाला है। मालवीयजीने इसके विरोधमें इस्तीफ़ा दे दिया पर फिर ये चुने गए। पञ्जाबका हत्याकाण्ड हुआ और सरकारने 'क्षमा विधान' पेश किया कि जिन अफ़सरोंने शान्तिकी रक्षाके लिये पञ्जाबमें कुछ अनुचित काम किए हैं वे क्षमा कर दिए जायँ। इसका भी मालवीयजीने विरोध

किया और इस बार पाँच घण्टेतक लगातार बोलते रहे। ये दोनों व्याख्यान उनके पढ़ने ही योग्य हैं।

उसके बाद लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें नमक कर, विनिमय अनुपात, सोनेकी दर, रूई कर आदिपर आपके व्याख्यान हुए। वे सन् १९३० ई० तक वहाँ रहे और इस बीच सभी विधानोंपर आपने छोटे-बड़े व्याख्यान दिए। सन् १९२६ ई० में जब कांग्रेसने स्वराज्य पार्टी बनाई थी, उस समय मालवीयजी और लाला लाजपतरायने मिलकर नेशनलिस्ट पार्टी बनाई और कांग्रेसके साथ चुनाव-युद्ध लड़ा। एक ओर पण्डित मोतीलालजीका दौरा हो रहा था, दूसरी ओर मालवीयजीका। प्रयागके दोनों नेता अपना-अपना मत लेकर दौरा कर रहे थे। मेरठमें जब मालवीयजी पहुँचे तो उन्हें एक अभिनन्दन पत्र-दिया गया और एक कविता पढ़ी गई थी, जिसमें मालवीयजीका सम्मान किया गया था और पण्डित मोतीलाल नेहरूको देश-द्रोही कहा गया था। पर मालवीयजीको उनकी यह हरकत अच्छी न लगी और उन्होंने कह दिया कि 'मोतीलालजी मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनकी शानके विरुद्ध कोई बात नहीं सुन सकता।' पञ्जाबसे इस दलको सफलता मिली, पर वास्तवमें सभी कामोंमें इनके राष्ट्रीय दलने कांग्रेसका साथ दिया। अन्तमें सरकारकी शाही पक्षपातपूर्ण नीतिके कारण सन् १९३० ई० में उससे इस्तीफ़ा दे दिया। सरकारने वस्त्र-उद्योग-रक्षण क़ानून पास करके इङ्गलैण्डके बने कपड़ेपर पन्द्रह फ़ी सदी और विदेशी कपड़ेपर बीस फ़ी सदी कर लगाया। मालवीयजीने सरकारको ख़ूब आड़े हाथों लिया और उनकी इस पक्षपातपूर्ण नीतिकी आर्थिक परिषद्के निर्णयके खिलाफ़ बताया और सरकारी दुर्गमें उन्हें यह समझाकर कि हम दूध पीते बच्चे नहीं हैं, काँचकी गोलियाँ नहीं खेलते हैं, अपना भला समझते हैं, वे वहाँसे निकल आए। सरकारने मालवीयजीकी मित्रता खोकर कम भूल नहीं की। सन् १९३३ ई० के चुनावमें आप फिर खड़े हुए थे पर वोटरोंमें आपका नाम ही न था। न जाने किसकी भूलसे आप असेम्बलीमें न जा सके।

इस बुढ़ापेमें भी आपकी भाषणशक्ति कम नहीं हुई। वे पुराने दाँत नहीं रह गए, फिर भी दहाड़ बनी है। यह एक आश्चर्य्यजनक बात है कि सरकारका इतना विरोध करनेपर भी सरकार मालवीयजीका इतना मान करती रही और उनके व्यक्तित्वका और उनकी सम्मतिका आदर करती रही। पर इन सबके पीछे उनका आकर्षक स्वरूप, उनका मधुर स्वभाव, कोमल व्यवहार और मृदुल वाणी ही थी जो शत्रुको भी मित्र बना देती थी। सरकारी व्यवस्थापक सभाओंमें रहकर उन्होंने जितनी भारतीय जनताकी सेवा की है, उतनी किसी भी भारतीयने नहीं की। आज जो हिन्दुस्तानी कलक्टर, कमिश्नर और सुपरिण्टेण्डेण्ट बने हुए हैं और जो बड़े-बड़े सरकारी पदोंपर पहुँचकर कभी-कभी राजभक्तिके जोशमें आकर निहत्थे दीन भारतीयोंपर डण्डा और गोली चलानेमें अपना गौरव समझते हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि उनका पद और उनका मान मालवीयजीकी प्रेरणा, उत्साह और परिश्रमका प्रसाद है।

सेवा

भारतके मेले और पर्व दूसरे देशोंके मेलोंसे भिन्न होते हैं। यहाँके लोग बढ़िया-बढ़िया वस्त्र पहनकर आनन्द लूटने, तमाशा देखने नहीं जाते, ये जाते हैं पुण्य कमाने। हमारे मेले भी धर्मके रसमें पगे होते हैं। एक ओर तो पुण्य लूटनेका लोभ और दूसरी ओर शिक्षाका बिलकुल अभाव। 'आँखके अन्धे और गाँठके पूरे' की जो दुर्गति होती है वही दशा बेचारे भोले-भाले हिन्दुस्थानियोंकी मेलों या पर्वोंपर होती है। स्त्रियोंका रूप और उनके गहने चोरों और लम्पटोंको आकर्षित करनेके लिये क़ाफ़ी होते ही हैं। न जाने कितने बेचारे गृहस्थ अपनी लक्ष्मी और गृहलक्ष्मी तथा अपने सुकुमार बच्चोंको इन मेलोंकी भेंटकर आते हैं और फिर अपनी बदनामी बचानेके लिये वे घर लौटकर यह कहकर चुप हो रहते हैं कि उनकी स्त्री या बच्चेका देहान्त हो गया। यह कोई कानों सुनी बात नहीं है। हर साल मेलेमें यही होता है और बेचारी हिन्दू स्त्री! बेचारी अबला!! उसकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, भक्षक न जाने कितने हैं। चारों ओरसे भयानक जानवरोंसे घिरी रहकर वह अपना सतीत्व किस तरह बचाए रखती है, यह देखकर उसके सामने श्रद्धासे सिर झुक जाता है। इन्हीं देवियोंके बलपर ही भारत जी रहा है नहीं तो अबतक कबका मिट गया होता।

जब मेले-तमाशे होते हैं तो बहुतसे लोग कुछ प्रबन्ध कर लेते हैं। पहले तो लोग अपने पास तलवार रखते थे। वे अपनी और अपने कुटुम्बकी रक्षा करना जानते थे। पर जबसे तलवार छीन ली गई तबसे हिन्दू कायर बन गए, उनकी मूछें उड़ गईं और वे बेचारे दूसरेका मुँह ताकने लगे।

पहले कुछ लोग अपने-अपने नगरोंमें छुटपुट दल बनाकर मुख्य अवसरोंपर सेवा किया करते थे। पर तब कोई सङ्गठन नहीं था, कोई नियम नहीं था। कुम्भ हुआ करते थे, बड़ी भीड़ होती थी। पुलीस कहाँतक प्रबन्ध कर सकती थी। फिर पुलीसको डण्डेका बल था, उसको किसीके साथ सहानुभूति तो थी नहीं। जैसे भेड़ोंको बाड़ेमें भरते हैं, इसी प्रकार लोग भरे जाते थे और फिर उनकी क्या दशा होती है वह आप कभी प्रयाग या हरिद्वारमें कुम्भपर स्टेशनोंपर जाकर स्वयं देख सकते हैं। सचमुच पराधीन भारतके मनुष्योंकी क्या दुर्दशा होती है, क्या कहें। जिन्हें भोजन नहीं मिलता, वस्त्र नहीं मिलता, जिनके पास कौड़ी भी नहीं हैं, वे गूँगी भेड़ोंकी तरह जिधर हाँक दिया चल दिए। और उनका सन्तोष तो देखिए कि गङ्गाजी या त्रिवेणीजीमें एक डुबकी लगाकर वह तर जाते हैं। समुद्रगुप्तको भी अपनी दिग्विजयपर इतनी प्रसन्नता न हुई होगी जितनी इन्हें उस समय होती है।

सन् १९०८ ई० की बात है। 'अर्द्धोदय' यात्राके अवसरपर बङ्गाली युवकोंने बड़ी लगन और तत्परताके साथ सेवा की, लोगोंको मार्ग बताया, ठहरनेका प्रबन्ध किया, लुटेरों और जेब-कतरोंसे लोगोंकी रक्षा की और यात्रियोंकी हर तरहसे सहायता की। सन् १९११ ई० में सूर्य्य-ग्रहणपर बनारसमें बहुतसे युवकोंने मिलकर सेवाका काम किया और यात्रियोंको सुविधाएँ दीं।

प्रयागमें भी नागरिकोंके कुछ दल यह सब काम करते थे पर बड़े ही अव्यवस्थित रूपसे। सन् १९१२ ई० में अर्द्धकुम्भी मकर संक्रान्तिका मेला हुआ। लाखों पुरुष, बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ आईं। प्रयागमें एक स्वयंसेवकोंका दल बना। मालवीयजीके बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय उसके मुखिया थे। इन लोगोंने सरकारी पुलीसके साथ सहयोग देकर बड़ा काम किया और सरकारकी ओरसे भी इन्हें सब तरहकी सुविधा मिली।

दो वर्ष बाद माघ-मेलेके अवसरपर वह समिति कुछ व्यवस्थित हो गई और उसका नाम दीनरक्षक समिति पड़ गया। उस समितिने प्रशंसनीय काम किया। इनमें अधिकतर म्योर सेण्ट्रल कौलेजके छात्र ही थे। यही समिति पीछे प्रयाग सेवासमिति बन गई। मालवीयजी इसके सभापति और पण्डित हृदयनाथ कुञ्ज़रू इसके मन्त्री बने।

सन् १९१३ ई० में शाहजहाँपुर ज़िलेमें कुछ महानुभावोंने मेलों और विशेष अवसरोंपर सेवा करनेके उद्देशसे एक समिति स्थापित की, जिसका नाम सेवासमिति रक्खा गया और जिसके कार्य्य-सञ्चालनका भार पण्डित श्रीराम बाजपेईको दिया गया, जो उस समय रेलवेके दफ़्तरमें काम करते थे। उनके सञ्चालनमें उक्त समितिने ज़िलेके बाहर भी जाकर इस सुन्दरतासे सेवा और प्रबन्ध-कार्य्य किया कि उसका नाम दूर-दूरतक फैल गया।

इधर बाजपेईजीने एक बाल-व्यायामशाला खोली, जहाँ उनकी देखरेखमें प्रतिदिन सायङ्कालको दो घण्टेके लगभग बालक कसरत किया करते थे। इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिसने इस बाल-व्यायामशालाको ऐसा रूप दिया, जिसकी उपयोगिता उस समय लोगोंने कम समझी थी। बाजपेईजीने पन्सारीके यहाँसे कुछ सामान लाकर अपनी माँको दिया। अचानक उनकी तीव्र दृष्टि सामानमें लपेटे हुए एक कागज़पर पड़ी, जसमें स्काउटिङ्गकी कुछ पुस्तकोंका ब्यौरा दिया हुआ था और नीचे 'थैकर स्पिन्क ऐण्ड कम्पनी' का पता दिया हुआ था। उन्होंने बड़ी उत्सुकतासे कुछ किताबें मँगवाईं और उनका अध्ययन कर सेवा-समितिकी 'बालचर-मण्डल' शाखा खोल दी, जिसमें सोलह वर्षसे कम अवस्थाके बालक प्राथमिक चिकित्सा, झण्डीसे बात करना और अन्य उपयोगी बातोंको उनसे सीखने लगे। थोड़े ही दिनोंमें सेवासमिति और उसके बालचर-मण्डलकी ख्याति ख़ूब फैल गई।

इसी बीच इलाहाबादमें सन् १९१८ ई० में कुम्भका मेला हुआ, जिसके प्रबन्धमें प्रयाग-सेवासमितिका (इस समय अखिल भारतीय सेवासमिति) बड़ा भारी हाथ था। मालवीयजी समितिके सभापति थे और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू उसके मन्त्री थे। दोनोंने बड़े परिश्रमसे कुम्भके प्रबन्धका आयोजन किया। उन्होंने सब सेवासमितियोंको स्वयंसेवक भेजनेको लिखा। शाहजहाँपुरसे श्री बाजपेईजीकी अध्यक्षतामें सौ स्वयंसेवक और आठ बालचर प्रयाग पहुँचे और इस दक्षतासे सेवाकार्य किया कि मालवीयजी और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रू दोनों, स्वयंसेवकों और विशेष रूपसे बालचरोंकी सेवा-प्रणाली और कार्य-कुशलतासे बहुत ही प्रभावित हुए। दोनो सज्जनोंने बाजपेईजीसे कहा कि इस प्रकारकी बालचर-शिक्षा-प्रणालीकी देशमें बड़ी आवश्यकता है और उसको फैलानेमें देर नहीं करनी चाहिए। उन्होंने बाजपेईजीसे आग्रह किया कि वे इलाहाबाद आकर इस कार्य्यको यथाशक्ति बढ़ावें। इसके फलस्वरूप 'अखिल भारतीय सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशन' की सन् १९१८ ई० में स्थापना हुई। बाजपेईजीको कार्य्य-सञ्चालनका भार दिया गया और श्री मालवीयजी 'चीफ़ स्काउट' बने और पण्डित हृदयनाथ कुँज़रूजीने 'प्रधान कमिश्नर' होना स्वीकार किया। अब इस संस्थाका विस्तार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशनके चीफ़ स्काउट मालवीयजी गलेमें स्काउट स्कार्फ़ डाले हुए रैली देख रहे हैं। पास ही श्रीमान् बाजपेयी खड़े हैं।

इसके कुछ पूर्व भारतवर्षमें स्काउटिङ्गके कुछ दल बड़े-बड़े शहरोंमें खोले गए थे पर उनमें भारतीय बालकोंको स्थान नहीं प्राप्त था। ये दल केवल अंग्रेज़ों और ऐङ्गलो इण्डियनोंके लिये ही थे। श्रीमती एनी बेसेण्टने सन् १९१७ ई० में भारतीय बालकोंके लिये 'इण्डियन बौय स्काउट एसोसिएशन' खोला पर उसका काम दक्षिणमें ही रहा। उत्तर भारतमें सेवासमिति बालचर मण्डल बड़ी तीव्र गतिसे उन्नति कर रहा था। इसी बीच स्काउटिङ्गके जन्मदाता लौर्ड बेडेन् पौवेल्के भारत आनेका समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ जिसके कारण भारतीय स्काउटिङ्गके केन्द्रोंमें कुछ खलबली मची, असन्तोष फैला, क्योंकि उन्होंने भारतीयोंको स्काउटिङ्गके अयोग्य समझा था और इस प्रकारके भाव वे प्रकाशित भी कर चुके थे। श्रीमालवीयजीने और श्रीमती एनी बेसेण्टने, इस कलङ्ककी असत्यता उन्हींके सम्मुख प्रमाणित करना चाहा और सन् १९२१ ई० में इलाहाबादमें अखिल भारतीय सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशन और इण्डियन बौय स्काउट एसोसिएशनका संयुक्त बृहत सम्मेलन हुआ, जिसमें लौर्ड बेडेन् पौवेल्ने भारतीय स्काउटोंके कार्य्यकी बहुत प्रशंसा की और अपने पहलेके विचारोंपर खेद प्रकाशित किया। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय बालकोंको उनकी राष्ट्रीय संस्थामें समानताका पद प्राप्त रहेगा। मालवीयजीने बेडेन् पौवेल् महोदयसे मिलकर तीन बातोंपर बातचीत की कि गवर्नर या वाइसराय चीफ़ स्काउट न हों, बल्कि जनतामेंसे कोई चुना जाय। दूसरी बात यह थी कि स्काउटकी प्रतिज्ञामें देशके प्रति भक्तिकी भी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। तीसरी बात यह है कि स्काउटोंके गीतोंमें 'वन्दे मातरम्' का भी समावेश होना चाहिए। ये बातें बेडेन् पौवेल् महोदय मान भी लीं। तदुपरान्त जो मेलके लिये सभाएँ हुईं उनमें यद्यपि यह कहा गया कि स्काउट संस्थाको ग़ैर-सरकारी और देशके अनुकूल बनाना चाहिए किन्तु कार्य्यरूपमें ऐसा न होते देखकर श्रीमालवीयजीने इस सेवासमिति बौय स्काउट एसोसिएशनको अलग ही रखना ठीक समझा और आज वह उनकी संरक्षतामें भारतमें जो कार्य्य करती है वह किसीसे छिपा नहीं है।

इस सेवासमितिने हरिद्वार और प्रयागके कुम्भ मेलोंके अतिरिक्त जब-जब और जहाँ कहीं कोई विपत्ति आई है—बाढ़में, भूकम्पमें, अकालमें—जाकर सहायता की है। जब जनरल डायरने पञ्जाबका ख़ून किया था तब उसकी मरहम-पट्टी करने और उसकी सेवा करनेके लिये यही सेवासमिति अपने चीफ़ स्काउटके पीछे-पीछे अमृतसर, लाहौर आदि सब जगह दौड़ी गई थी।

इस सेवासमितिके कई विभाग हैं:—शिक्षा, स्वास्थ्य, रेलवे सेवा, नायक-सुधार आदि। सारे

देश भरमें इसकी शाखाएँ खुल गई हैं और हर एक मेले और उत्सवमें सेवासमितिके बालचरोंने प्रशंसनीय काम किया है। इसके सराहनीय कामसे प्रसन्न होकर सरकार भी इसे दो हज़ार रुपया साल देती है।

इसके अतिरिक्त हिन्दू स्त्रियों, मन्दिरों और अनाथोंकी रक्षाके लिये एक दूसरा दल मालवीयजीकी सनातनधर्म सभाद्वारा चल पड़ा जिसे महावीर दल कहते हैं। यह एक प्रकारका धार्मिक स्वयंसेवक दल है पर ये लोग भी सब पर्वों, मेलों, उत्सवों आदिमें सेवा करते हैं। कुरुक्षेत्र मेलेपर जो उनका प्रबन्ध हुआ है उसकी प्रशंसा सरकारने भी की है। महावीर दलका विशेष सङ्गठन पञ्जाबमें हुआ है और सचमुच वहाँके स्वयंसेवकोंको देखकर यही मालूम होता है कि ये 'हर-हर महादेव' का जयकारा बोलनेवाले सचमुच महावीर हनुमानजीकी सेनाके योग्य हैं।

मालवीयजीको अपने चीफ़ स्काउटके पदका गर्व है और उन्हें बाहर जाकर यह कहलानेमें अभिमान होता है कि वे चीफ़ स्काउट हैं। वे केवल चीफ़ स्काउट ही नहीं हैं बल्कि उनका जीवन ही सेवामय है। एक बार प्रयागके कुम्भके अवसरपर सेवासमितिका कैम्प त्रिवेणी तटपर बनाया गया था। स्वयंसेवक बालूपर बिस्तरे बिछाकर लेट रहे थे। मालवीयजीने भी कैम्पमें ही अपना डेरा डाला। लोग दौड़े गए और उनके लिये चारपाई उठा लाए। पर मालवीयजीने उसको वापस कर दिया और कहा कि यह कैसे हो सकता है कि स्वयंसेवक तो सोएँ ज़मीनपर और उनका सभापति सोए चारपाईपर।" यही मालवीयजीका बड़प्पन है।

सेवा-धर्म बड़ा कठिन है पर जिसका शरीर शुरूसे सेवाकी कठोर तपस्यामें बीता है उसे अभ्यास हो जाता है और फिर वह दूसरोंके लिये आदर्श बन जाता है। ईश्वर करे हमारे चीफ़ स्काउट शतायु हों और जिस प्रकार हम लोग उनकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठ मना रहे हैं इसी प्रकार फिर अपने वृद्ध चीफ़ स्काउटको बीचमें बैठाकर उसकी सौवीं वर्षगाँठ मनावें।

अपनी सत्तरवीं वर्षगाँठके अवसरपर स्काउट मास्टरोंके साथ चीफ़ स्काउट मालवीयजी खड़े होकर वन्देमातरम् गा रहे हैं।

सोनेकी चिड़िया

वह भी एक समय था। दूर-दूरके यात्री, विद्वान, व्यापारी भारतमें आते थे और भारतके लहलहाते हुए खेतों, हीरे-मोतियोंसे लदे हुए स्त्री-पुरुषों, और ऊँचे-ऊँचे विशाल राज-भवनों देखकर सहम जाते थे। उनके लिये भारत भी एक अचरजकी जगह थी। जहाँ कुदाली मारो सोना निकलता है, आकाशसे अमृत बरसता है, घी-दूधकी नदियाँ बहती हैं, खेतोंमें सोनेके बाल लगते हैं। "सोनेकी चिड़िया" दूर-दूरतक मशहूर हो गई। सबके दाँत इसपर गड़ गए। अपना-अपना फन्दा लेकर सब इसकी ओर दौड़ पड़े। अब भी पुराने खण्डहरोंमें उस 'सोनेकी चिड़िया' के कुछ टूटे हुए पङ्ख मिलते हैं। ह्वीनत्साङ्ग और फ़ाह्यानके लिखे हुए ताड़के पत्ते उसकी कथा सुनाया करते हैं। ताजमहलके सङ्गमरमरकी शिलाएँ भी उसकी याद दिलाती हैं। महमूद ग़ज़नी, ग़ोरी, तैमूर और अहमदशाह अबदाली अपना-अपना कम्पा लेकर आए और उस चिड़ियाके पङ्ख नोचकर ले गए, तब भी कुछ नहीं बिगड़ा। नुचे हुए पङ्खोंकी जगह नए निकल आए। पर न जाने कहाँसे कौन ऐसा बहेलिया आया जिसने पङ्ख तो नोच ही लिये पर साथ ही चिड़ियाका चुग्घा भी चुरा लिया और बेचारी चिड़िया न तो उड़ सकी, न चहचहा सकी। उसकी यह दशा हो गई कि अब गई—अब मरी।

भारतके खेत सचमुच सोना पैदा करते थे। इतना अन्न पैदा होता था कि न अपने भूखे रहते थे न अतिथि भूखा रहता था। इतना अन्न बचा रहता था कि दूसरे देश भी हमारे ही टुकड़ोंसे पलते थे। वस्त्रके व्यापारने तो हिन्दुस्थानकी कीर्त्ति समुद्रके पार पहुँचा दी। दूसरे देशोंकी सुन्दरियोंका भारतीय वस्त्रोंके बिना शृङ्गार ही नहीं हो सकता था। किसी भी मशीनने आजतक इतनी सफ़ाई नहीं दिखाई जैसी ढाकाके कारीगरोंने। वहाँका मलमल प्रत्येक रईस और नवाबके शरीरपर चमकता था। इसीके बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्य आया। हिन्दुस्थानको मूर्खता सवार हुई। विलायती सामान और कपड़ोंसे इसके बाज़ार भर गए। कारीगरोंके अँगूठे काट लिए गए। उनके मुँहका कौर छीनकर विलायती कारीगरोंका पेट भरा जाने लगा। देशी मालपर टैक्स लगने लगा, कर बढ़ा दिया गया, उधर विलायतमें भारतीय कपड़ेपर कर अधिक लग गया, हिन्दुस्थानी कपड़ा पहननेवालोंपर जुर्माने होने लगे। भारतीय व्यापार सिर थामकर बैठ गया, टाट उलट दिया और दीवाला निकाल दिया। मरते हुए पेसली और मान्चेष्टरकी जान भारतका ख़ून देकर बचाई गई।

विलायतसे रङ्गीन कपड़े आने लगे—बड़े आकर्षक और बड़े चमकदार। हिन्दुस्थानमें विलायती चीज़ोंका अम्बार लग गया। ब्याह-शादियोंमें खिलौने विलायती, साड़ियाँ विलायती, और सजावटका सामान विलायती। बाजा भी बजे तो अंग्रेज़ी, दूल्हेकी फ़रमायश भी विलायती साइकिल और मोटर की ही होने लगी। हमारी बहनोंको भी अबतक गौकी चर्बीसे चमकाया

हुआ विलायती कपड़ा न मिले तबतक उनका शौक़ नहीं पूरा होता। विलायती चूड़ियोंसे उनका सुहाग हरा होने लगा। हमारे मूँछ मुँड़ाए हुए नौजवान—उनकी हालतपर सचमुच रोना आता है—सिरसे पैरतक विलायती रङ्गमें रँग गए। सिरपर हैट लगाकर, गलेमें नकटाई बाँधे हुए और सूट पहने हुए किसी हिन्दुस्थानीकी शकल तो देखिए—नारद-मोहमें नारदजीकी जो शकल बनी थी वही समझिए। न जाने अपने देशके कितने बच्चोंके मुँहकी रोटी छीनकर इन युवकोंने अपना यह बनाव सिङ्गार शुरू किया है। कोई अपढ़ ऐसा काम करता तो बुरा न लगता। अफ़सोस यही है कि ये लोग अपनेको सभ्य और सुशिक्षित कहते हैं। अर्थशास्त्रके विद्वान् प्रोफ़ेसरको इस बहुमूल्य बेढङ्गे वेशमें देखकर किसे हँसी न आयगी। कहावत है कि—जिसका चलन बिगड़ा उसका विश्वास क्या। देखें अभी इन सभ्य सुशिक्षित सज्जनोंके हाथ कितने बेचारे ग़रीबोंकी हत्या होनेको है। यह हम ही नहीं कहते हैं बल्कि न्यूयार्कके सुप्रसिद्ध वकील मिस्टर मायनर फेलप्सका कहना है कि—"भारतवासियोंको यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि स्वदेशीके बदलेमें विदेशी वस्तु व्यवहार करनेमें वे लोग अपने देशवासियोंके मुँहकी रोटियाँ ही नहीं छीन रहे हैं बल्कि उनकी हत्या भी कर रहे हैं।"

आजसे सत्तावन बरस पहले प्रयागके एक युवकके मनमें बात आई कि विदेशी वस्तुओंने हमें बिलकुल बेबस कर दिया है। अगर विलायतवाले चाकू न भेजें तो हमारी तरकारी न कटे। ग़ुलामीकी हद हो गई। युवकको तो आप समझ ही गए होंगे। हम मालवीयजीकी ही बात कह रहे हैं। सन् १८८१ ई० में उनके उद्योगसे व्यवहारकी देशी वस्तुएँ तैयार करनेके लिये प्रयागमें एक देशी तिजारत कम्पनी खुली कि जिससे देशी कारीगरोंको प्रोत्साहन मिले। मालवीयजीके मित्र बाबू राधाकृष्ण और बाबू हरदेवप्रसाद इसके मैनेजिङ्ग अध्यक्ष बने। यह देशी तिजारत कम्पनी छः वर्ष बड़ी अच्छी तरह चली। उसमें देशी वस्त्र, बटन, साबुन, चाक़, ताले आदि बहुतसी चीज़ें बनने लगीं और ख़ूब प्रचार हुआ पर उसके कार्य्यकर्त्ताओंको लोभने आ घेरा और और देशी तिजारत कम्पनी बन्द हो गई। इन दिनोंकी एक कथा पण्डित शिवराम वैद्यने कही है। वे लिखते हैं कि—

"मदनमोहनका स्वदेशी प्रेम बहुत पुराना है। बाबू राधाकृष्णजी खत्री और बाबू हरदेव प्रसादजी वग़ैरहके द्वारा प्रयागमें बड़े धूम-धामसे देशी तिजारत कम्पनी खुलवा चुकनेके उपरान्त एक दिन मदनमोहन मेरे पास आए और स्वदेशी वस्तुओंके विषयमें बातचीत होने लगी। मालूम हुआ कि मदनमोहनके हिंसा-विरोधी हृदयको एक नवीन व्याघात पहुँचा है। मदनमोहनने कहा कि जूतोंके कारण लाखों दीन और बेगुनाह पशुओंकी जान मारी जाती है। चमड़ोंके लिये असंख्य पशुओंको मारे जानेका तरीक़ा डाक्टर जयकृष्ण व्यासने मुझे बताया है। उनकी बातें सुनकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है और मेरे मनमें यही चिन्ता हो रही है कि किस प्रकार इन ग़रीब पशुओंके जीवनकी रक्षा की जाय।

बाबू राधाकृष्ण गुप्तसे कहा—बाबूजी! मैंने तो चमड़ेका जूता पहनना छोड़ दिया, देखिए कपड़ेका जूता बनवाया है। काग़ज़का बोट भी ऐसा मज़बूत बनाया जा सकता है कि उससे गाड़ीका पहिया बन सकता है—ऐसा मैंने सुना है।"

तभीसे मालवीयजीने स्वदेशीका व्रत ले लिया और कष्ट तथा असुविधा सहकर भी तबसे विदेशीकी अपेक्षा देशीका ही प्रयोग करने लगे। केवल प्रयोग ही नहीं बल्कि उसका प्रचार भी करने लगे। सन् १८८५ ई० में मालवीयजीने मध्य हिन्दू-समाजकी दूसरी बैठकमें 'स्वदेशी' पर एक बड़ा मर्मस्पर्शी व्याख्यान दिया, जिसमें आपने देशकी दरिद्रता, देशके उद्योग-धन्धोंका नाश और विलायती व्यापारियोंकी अन्धाधुन्ध लूटका

ऐसा विशुद्ध वर्णन किया कि बहुतसे लोग रो पड़े और स्वदेशीके पुजारी बन गए।

अपने नगरमें तो मालवीयजी स्वदेशीका प्रचार कर ही रहे थे। अचानक सन् १९०५ ई० का साल आया—वही बङ्ग-भङ्गवाला। हिन्दुस्थानको पिटकर बुद्धि आई और उसने समझा कि हाँ, स्वदेशीका प्रचार करना बड़ा ज़रूरी है। हिन्दुस्तानकी कारीगरी फिर अँगड़ाई लेकर आँखें मलकर उठ बैठी। सारे देशमें विदेशी कपड़ोंकी होलियाँ जलीं और हिन्दुस्थानी अपने कपड़े पहनकर फिर भले लगने लगे।

इसी साल मालवीयजीके प्रयत्नसे सन् १९०५ ई० में भारतीय व्यावसायिक सम्मेलन हुआ और सन् १९०७ ई० में युक्तप्रान्त व्यावसायिक सम्मेलन हुआ और युक्त-प्रान्त औद्योगिक समितिकी प्रयागमें स्थापना हुई। इन अवसरोंपर मालवीयजीने जो व्याख्यान दिए वह अत्यन्त भव्य थे। एक बार उन्होंने भारतीय शिल्प और उद्योगकी एक लहर पैदा कर दी। सारा देश इस लहरमें बह चला।

दिसम्बर सन् १९०७ ई० में सूरत-कांग्रेसके साथ-साथ स्वदेशी कौन्फ़रेन्स हुई। उसमें भी मालवीयजीने बड़ा प्रमुख भाग लिया था। उस समय जो उन्होंने व्याख्यान दिया उससे भारतकी दुर्दशाका पूरा-पूरा पता लग जाता है।

इससे पहले कांग्रेसके मञ्चपर भारतकी ग़रीबीपर आँसू बहाते हुए कई बार मालवीयजीने स्वदेशीके व्यवहारके लिये अपील की थी और केवल राजनीतिक अधिकार माँगनेवाली कांग्रेसने इस आर्थिक पहलूकी महत्ता समझ ली थी। यह मालवीयजीका ही बूता था कि कई बार स्वदेशीके प्रचारके लिये कांग्रेसने अपनी आवाज़ उठाई और जनताको उसके लिये उत्तेजित किया और अपने देशकी बनी चीज़ें हमारे बाज़ारोंमें और घरोंमें दिखाई देने लगीं।

पर यह स्वदेशी आन्दोलन दिल्ली-दरबारके बाद ठण्डा पड़ गया। हिन्दुस्थानकी जलवायु ही कुछ ऐसी है कि जितनी जल्दी जोश आता है उतनी ही जल्दी ठण्डा भी हो जाता है। इसके बाद सन् १९१४ ई० की लड़ाई आई और सारा देश अपना धन और जन लेकर उस महायुद्धकी पूजाके लिये तैयार हो गया और सारे देशने मिलकर अंग्रेज़ी राज्यकी हिलती नींवको सँभालनेके लिये सभ्यताके नामपर, न्यायके नामपर, शान्तिके नामपर, तीन सौ करोड़ रुपया न्यौछावर कर दिया। जिस देशमें सत्तर फ़ी सदी लोगोंको सालके छः महीने भोजन न जुड़ सकता हो उन्होंने इतना धन देकर कितनी साँसत सही होगी, यह कल्पना कर लीजिए।

उधर लड़ाई हो रही थी, इधर १९ मई सन् १९१६ ई० को भारतके उद्योग और व्यवसायकी जाँचके लिये सरकारने एक कमीशन नियुक्त किया, जिसके सभापति सर टौमस हौलैण्ड हुए। भारतीय ग़ैर सरकारी जनताकी ओरसे मालवीयजी नियुक्त हुए। जनताको इससे पूर्ण सन्तोष हुआ। दो वर्ष यह कमीशन जाँच करता रहा। सन् १९१८ ई० के अन्तमें कमीशनने रिपोर्ट दी। मालवीयजी उस कमीशनकी बहुतसी सिफ़ारिशोंसे सहमत न हुए। उन्होंने बड़ा परिश्रम करके एक अत्यन्त गम्भीर और विस्तृत टिप्पणी लिखी। वह टिप्पणी क्या है भारतका आर्थिक इतिहास ही समझिए। उन्होंने सिफ़ारिशें की हैं कि किस प्रकार हमारे देशका उद्योग और व्यापार उन्नति कर सकता है। उसमें जो उन्होंने सिफ़ारिशें की हैं और प्रस्ताव किए हैं उनसे भारतकी बहुतसी आर्थिक समस्याएँ सुलझ सकती हैं। भारतकी दशाका वास्तविक अध्ययन करनेवालेको और प्रत्येक सच्चे भारतीयको वह टिप्पणी अवश्य पढ़नी चाहिए।

इससे पहले भी मालवीयजी सन् १९०७ ई० में स्थित डीसेण्ट्रलाइज़ेशन कमीशन (अकेन्द्रीकरण जाँच) के सामने १३ फ़रवरी सन् १९०२ ई० को लखनऊमें साक्षी देकर यह सिद्ध किया था कि केन्द्रीय सरकारको चाहिए कि विभिन्न प्रान्तोंको स्वतन्त्रता देकर अपना बोझ भी कम कर दे और प्रान्तीय सरकारोंको भी

अपना काम सहूलियतसे करने दे। इसीके बाद सन् १९१२ ई० में पब्लिक सर्विस कमीशनके सामने ३१ मार्च सन् १९१३ ई० को मालवीयजीने गवाही देकर यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीयोंमें भी अपना शासन करनेकी योग्यता है। इन्हीं दोनों कमीशनोंके सामने गवाही देनेके कारण ही औद्योगिक कमीशनपर मालवीयजी नियुक्त हुए। इसके बाद सन् १९२६ ई० में कृषि-कमीशन बैठा और उसमें भी मालवीयजीने बड़ी महत्त्वपूर्ण गवाही दी और भारतीय कृषिकी उन्नतिके उपाय और कृषकोंकी दशा सुधारनेकी रीतियाँ बताईं।

सन् १९२० ई० में असहयोग आन्दोलनके साथ-साथ विदेशी वस्त्रका बहिष्कार, चरखे और खद्दरका प्रचार तथा स्वदेशी आन्दोलन शुरू हो गया। सन् १९२१ ई० में नेता लोगोंकी जेल-यात्रा और सरकारकी दमन नीतिसे हिन्दुस्थान फिर जागा और उसकी आँखें खुलीं। जगह-जगह विलायती कपड़ोंकी होली होने लगी, चर्खे घूमने लगे, करघे चलने लगे। सैकड़ों, हज़ारों ख़ाली बैठे स्त्री-पुरुषोंको भोजन-वस्त्र मिलने लगा। इस आन्दोलनको मालवीयजीके कारण बड़ा प्रोत्साहन मिला। सन् १९२१ ई० में और उसके बाद भी मालवीयजीने देशभरमें दौरा करके स्वदेशीका प्रचार किया। जिन-जिन लोगोंने मालवीयजीके उन दौरोंका विवरण पढ़ा होगा उनको याद होगा कि किस प्रकार मालवीयजीकी अपीलपर विदेशी कपड़ोंका ढेर लग जाता था और किस प्रकार उनके व्याख्यानोंमें स्त्रियाँ और पुरुष बेचारे दीन भारतकी दुर्दशापर जी खोलकर रोते थे। आज जो चारों ओर खद्दर दिखाई दे रहा है इसमें मालवीयजीका कम हाथ नहीं है। अखिल भारतीय स्वदेशी सङ्घकी स्थापना करके मालवीयजीने स्वदेशी-प्रचारकी जड़ जमा दी। उस संस्थाके द्वारा देशका कितना काम हुआ यह सभी जानते हैं।

सन् १९३४ ई० में कालपीमें स्वदेशी प्रदर्शिनी खोलनेके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया गया था। आप अस्वस्थताके कारण न जा सके किन्तु आपने जो सन्देश भेजा था वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आपने लिख भेजा था कि—

"जिस प्रकार अँधियारेमें लालटेन सहायक होती है, उसी प्रकार देशके वर्त्तमान दुःख और दारिद्र्यकी दशामें स्वदेशीका व्रत हमारा सहायक है। यह ऐसा पवित्र काम है कि इसमें अपना भी भला होता है और अपने देशके बहुतसे भाई और बहनोंका भी। मैं छप्पन वर्षसे स्वदेशी व्रतका पालन करता हूँ। जैसे ईश्वरकी पूजा करना धर्म है, उसी प्रकार देशकी सेवा करना धर्म है और उस सेवाका सबसे अच्छा साधन स्वदेशी वस्तुओंका बनाना, स्वदेशी वस्तुओंका ख़रीदना, स्वदेशी वस्तुओंका बेचना तथा उनका व्यवहार बढ़ाना है। देशके हितके लिये यह मेरी प्रार्थना है कि गाँव-गाँव और घर-घरमें हमारी माताएँ, बहनें और बेटियाँ सूत कातें और हमारे भाई फ़ुरसतके समय कपड़ा बुनें और गाँव-गाँवमें घर-घरमें खद्दर और स्वदेशी, पुरुष और स्त्रियोंके तनकी पवित्रता और शोभाको बढ़ावें। गाँव-गाँवमें बाज़ार-बाज़ारमें स्वदेशी वस्तु और स्वदेशी वस्त्र दिखाई दें। हर ज़िलेमें समय-समयपर स्वदेशी मेला या प्रदर्शिनी हो, जिसमें ज़िलेकी बनी हुई चीज़ें दिखाई और बेची जायँ।

"मेरा निवेदन है कि हमारे भाई तहसीलोंमें और बड़े-बड़े गावोंमें स्वदेशी वस्तुओंकी आढ़त क़ायम करें और घर-घरमें स्वदेशीका प्रयत्न करें। इसमें देशका मङ्गल होगा, देशकी दरिद्रता कम होगी, देशकी सम्पत्ति बढ़ेगी और प्रजामें धन-बलके साथ धर्म-बल बढ़ेगा।

"मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि वह आप सबके हृदयमें अपनी भक्तिके साथ-साथ देशकी भक्तिको दृढ़ करे और उसके द्वारा हमारा प्यारा देश स्वतन्त्रता, सुख और सम्पत्तिसे फिर हरा-भरा, बलवान और प्रतापवान हो।"

एक और स्थानपर उन्होंने कहा है कि—

"जिन लोगोंके बीच मनुष्य रहता हो उनको सुखी देखकर सुखी और दुखी देखकर दुखी होना परम धर्म है। इसके पोषणमें आपने च्यवन मुनिका वर्णन किया, जिन्होंने नदीमें तपस्या करनेके समय मछलियोंका सहवास हो जानेके कारण उनके प्राण बचानेके लिये स्वयं प्राण दे देना स्वीकार किया था। तब क्यों न उन्हींकी सन्तान आज दिन अपने बन्धु-जनोंको देखकर उनके दुःख मिटानेका यत्न करे? इस समय भारतवर्षमें करोड़ों मनुष्य व्यापार न होनेके कारण भूखों मर रहे हैं। लाखों जुलाहे और कारीगर, जो अपनी कारीगरीके द्वारा अपने कुल-कुटुम्बका पोषण करते थे, आज विलायती चीज़ोंके कारण दाने-दानेको तरस रहे हैं। यदि सब विचारशील लोग एकमत होकर सङ्कल्प कर लें कि वे देशी वस्तुओंके आगे विलायती वस्तुओंको नहीं ख़रीदेंगे तो आज लाखों दुखियोंको रोज़गार मिल जाय और उनके पेटकी आग बुझानेका उपाय निकल आवे। इङ्गलैण्ड, औस्ट्रेलिया, अमेरिका आदिके लोग इस बातको अपना धर्म समझते हैं कि वे अपने देश-बान्धवोंको रोज़गार देनेके लिये उन्हींकी बनाई चीज़ें काममें लावें चाहे उसमें उसका दाम भी अधिक लगे, वस्तु भी उतनी सफ़ाईसे बनी न मिले जितनी और-और देशोंकी बनी मिलती हैं। पर यहाँ प्रायः लोग यह समझते हैं कि देशी वस्तुओंके प्रचारका सङ्कल्प करना केवल मूर्खता है किन्तु यह उनका अधर्म है।.....यदि देशका दुःख कम करना है तो देशमें रोज़गार व्यापार बढ़ाना पहला काम है और इसके पूरा करनेके लिये सबको कटिबद्ध होना उचित है।"

भारत बड़ा दरिद्र है। यह बात तो बहुत लोग जानते हैं कि थोड़े-थोड़े दिनों बाद हमारे देशमें दुर्भिक्षका दौरा हुआ करता है पर यह बात कितने लोग जानते होंगे कि भारतमें नित्य ही दुर्भिक्ष रहता है। देशमें जो इतनी अधिक मृत्युएँ हो रही है क्या उसका कारण बीमारी है? सच पूछिए तो उसका कारण यह है कि बच्चेको पढ़ानेके लिये, घरको साफ़ रखनेके लिये, घर बनवानेके लिये, शरीरको गर्मी, सर्दी और बरसातसे बचानेके लिये उनके पास पैसे नहीं हैं। सिवाय मौतके और इन्हें कहाँ आराम मिलेगा और इस मौतके लिये वे स्त्रियाँ ज़िम्मेदार हैं जो लन्दन, फ्रांस, इटली और जर्मनीकी साड़ियाँ मँगा कर पहनती हैं, विलायती साबुन, तेल, इत्र, पिन और पाउडर प्रयोग करती हैं; इसके लिये वे पुरुष ज़िम्मेदार हैं जो अपने देश-वासियोंको भूखा मारकर विलायती क़ीमती कपड़े पहनते हैं, सिनेमामें और नये-नये शौकोंमें पैसा ख़र्च करते हैं। उन्हें सावधान होना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उनके पापसे करोड़ों भारतवासी भूखे मर रहे हैं और यदि यही दशा रही तो इन भूखी आत्माओंके शापसे ये शौक़ीन लोग भी हाथ पसारते दिखाई देंगे और ये जिन विदेशियोंकी भूख बुझा रहे हैं, पेट भर रहे हैं, वे ही इनकी मूर्खतापर हँसेंगे और घृणाके साथ ठोकर मारेंगे। अब भी चेत सकते हैं, कुछ बिगड़ा नहीं है। हमारा विश्वास है कि मालवीयजीके स्वदेशी प्रेमको देखकर, उनका स्वदेशीके लिये त्याग देखकर हमारी भारतीय बहनें और भाई अपना शृङ्गार भारतीय वस्तुओंसे करेंगे और यदि भारतीय वस्तु न मिले तो उतना शृङ्गार त्याग देंगे। ग़रीब लोग अपने आँसुओंसे तुम्हारे पैर धोएँगे और उनके बच्चे सूखी रोटी खाकर भी तुम्हें आशीर्वाद देंगे। हमारे बड़े बूढ़े लोग सच ही विदेश-यात्राका विरोध करते थे। जबसे भारतकी लक्ष्मीने जहाज़पर चढ़ना शुरू किया तभीसे भारतके बुरे दिन शुरू हो गए। पिंजड़ेमें पड़ी हुई सोनेकी चिड़िया घुल-घुलकर मरने लगी। पर अभी उसमें प्राण बाक़ी हैं। उसे भारतीय कपड़ा उढ़ा दीजिए, हिन्दुस्तानका दूध पिलाइए, वह चङ्गी हो जायगी।

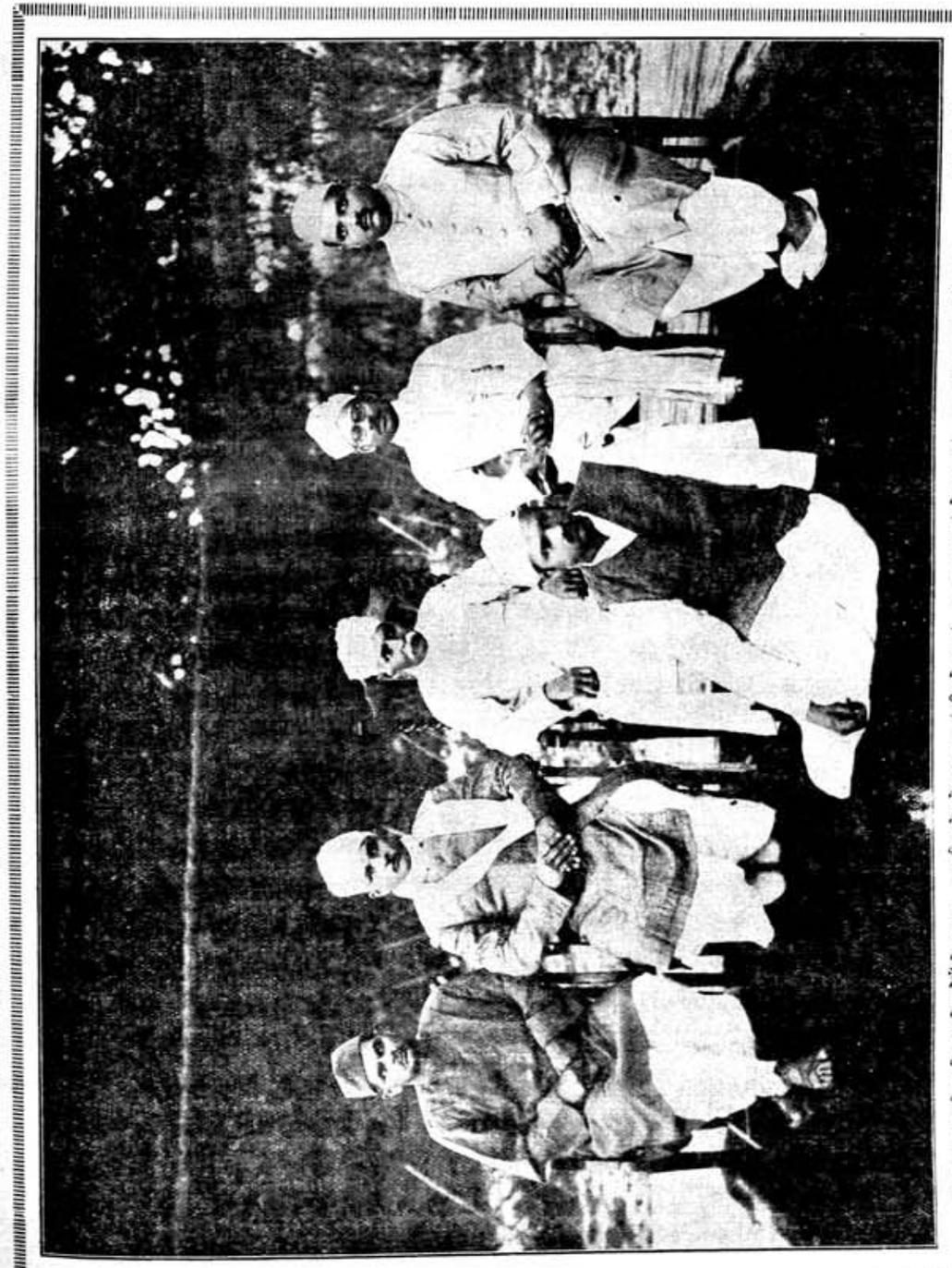

पूज्य मालवीयजी अपने पुत्रोंके साथ—बाईं ओरसे मुकुन्द (तीसरे पुत्र), रमाकान्त (ज्येष्ठ पुत्र), पूज्य मालवीयजी, राधाकान्त (द्वितीय), गोविन्द (चतुर्थ) और नीचे श्री

प्रजापति

एक बारकी बात है, श्री विजयराघवाचारी काशी आए हुए थे, उन्होंने मालवीयजीसे पूछा कि आपके कुटुम्बमें कितने बच्चे हैं? मालवीयजी मुसकुराए और बोले 'ठहरिए मुझे सोचना पड़ेगा। क्या बताऊँ मैं और मेरी स्त्री ही इसके लिये ज़िम्मेदार हैं।'

मालवीयजी महाराजके समान ही उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवी भी ईश्वर और धर्ममें अगाध श्रद्धा रखती हैं। उनकी शिक्षा सामान्य रूपसे घरमें हुई है। हिन्दीके साथ-साथ संस्कृतका भी आपको अच्छा ज्ञान है। रामायण, गीता आदिका पाठ बड़ी अच्छी तरहसे कर सकती हैं। माता भागीरथीमें आपकी अगाध श्रद्धा है। आज भी सत्तर वर्षकी अवस्थामें जब बायाँ हाथ पूरे तौरसे काम लायक नहीं है, ज़बान भी साफ़ नहीं है, दिमाग़ भी कुछ कमज़ोर हो गया है, प्रातःकाल तीन बजेसे ही गङ्गा-स्नानकी तैयारीमें लगी हुई आप दिखलाई पड़ती हैं। जब आप स्वस्थ थीं तब तो आपका यह नित्यकर्म था कि तीन बजे उठकर मुहल्लेकी और स्त्रियोंके साथ प्रयागके किलेतक पैदल जाना और वहाँसे नावपर चढ़कर स्नान करने सङ्गमतक जाना। गत ६ नवम्बर सन् १९३४ ई० (भातृ द्वितीया) के दिन आप स्नान करके लौट रही थीं। साथमें उनके सबसे छोटे पुत्र गोविन्द मालवीयजीके छोटे-छोटे बच्चे भी थे। उनके लिये खिलौना ख़रीदते समय एक दौड़ते हुए इक्केके पावँदानसे आपको गहरी चोट लगी। आप मूर्छित हो गईं और उनकी अवस्था दिन-प्रति-दिन ख़राब होती गई, परन्तु काशी विश्वनाथको अभीष्ट था अपनी पुरीमें रखकर उनको गङ्गा-स्नान कराना। हुआ भी ऐसा ही। उक्त दुर्घटनाके बाद जबसे आपका स्वास्थ्य सुधरा, आप काशी ही में रहती हैं और यथासाध्य प्रतिदिन गङ्गाजीका स्नान और बाबा विश्वनाथका दर्शन करती हैं। प्रातः आठ बजे लौटकर दस बजेतक पूजन आदिसे निवृत्त होकर आप रसोई आदिकी व्यवस्था तथा छोटे-मोटे घरेलू कार्य्योंकी देख-रेख करती हैं। यह भी कम आश्चर्य्यकी बात नहीं है कि उन्होंने अपने आदर्श जीवनमें कभी भी किसी दूसरेके हाथकी बनी रसोई नहीं खाई। इधर जबसे गोविन्द पहली बार पकड़े गए थे तबसे आप एक ही बार भोजन करती हैं।

आपको पाँच कन्या और पाँच पुत्र हुए—जिनमें चार पुत्र श्री रमाकान्तजी, श्री राधाकान्तजी, मुकुन्दकान्तजी तथा श्री गोविन्द मालवीय, और पुत्री रामा तथा मालती वर्त्तमान हैं।

धर्म और राजनीतिमें सदासे भेद रहता आया है। कट्टर धर्मात्मा सात्त्विक गुणोंका उपासक राजनीतिका भी पण्डित हो यह विलक्षण बात है। राजनीतिमें दाव-पेंच है तो धर्ममें सत्य और शुद्धि। फिर भी मालवीय परिवारने अपने आचरण-द्वारा यह विभेद दूर कर दिया है। उन्होंने दिखला दिया है कि गौ और सिंह एक ही स्थानपर बिना किसी विघ्नके रह सकते हैं। यदि पूज्य मालवीयजी महाराजके चरितमें हम इसकी सार्थकता पाते हैं तो श्रीमती मालवीयजीमें भी इसकी झलक स्पष्टतया मौजूद हैं। आपने भारतके स्वतन्त्र

संग्राममें भी भाग लिया है। आपको जो काम जब दिया गया, उसको खूब उत्साह और यथाविधि पूरा कर दिखाया। आन्दोलनके समयमें पुरुषोत्तम पार्कमें महिलाओंकी सभामें आपने सभानेतृका आसन भी ग्रहण किया था, और समय-समयपर महिला-मण्डलको प्रोत्साहन आदि भी दिया करती थीं। इस प्रकार धर्मके साथ-साथ देशके उद्धारमें भी आपने हाथ बटाया। आप शान्तिपूर्वक किसी भी कामको करना श्रेयस्कर समझती हैं। व्यर्थके वितण्डावाद और नामकी लोलुपता आपमें ज़रा भी नहीं है। यही कारण है कि आप देश-सेवाके पुरस्कार—जेलयात्रासे वञ्चित रहीं। अपने पुत्र गोविन्द मालवीयकी जेलयात्रापर जो आपने उन्हें आशीष दी थी, वह वीर माताके ही योग्य थी।

पण्डित रमाकान्त मालवीयने प्रयाग विश्व-विद्यालयसे बी० ए०, एल्-एल्० बी० करके सन् १९०७ ई० में वकालत प्रारम्भ कर दी। इनका घरका नाम बङ्काली भैया है। थोड़े ही समयमें आपने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली और प्रयाग हाइकोर्टके सम्मानित वकीलोंमें आप एक हो गए। क़ानूनमें अत्यन्त निपुण होनेके ही कारण सन् १९२० ई० में आप उदयपुर राज्यमें जजके पदपर नियुक्त कर दिए गए। वर्ष भरके बाद आप सिरोही स्टेटमें दीवान बनाए गए, और सन् १९३३ से ३६ ई० तक आप श्रीनाथ-द्वारामें प्रधान प्रबन्धककी हैसियतसे कार्य्य करते रहे। अब आप युक्तप्रान्तीय रईसी कौन्सिलके कांग्रेसी सदस्य होकर खड़े हुए हैं। आपने सत्याग्रह आन्दोलनमें काफ़ी भाग लिया है। सन् १९१६ ई० में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री भी रह चुके हैं। आपके सम्बन्धमें एक अत्यावश्यक बात यह है कि आपने अपने पूज्य पिताजीके रूपकी छाया पाई है उनका पहनावा, रहन-सहन और बोली तकको ऐसा अपनाया है कि पूज्य मालवीयजी महाराजमें और आपमें बहुत कम भेद जान पड़ता है। एक बार एक सभामें आप व्याख्यान दे रहे थे। सभाके सभापति रायबहादुर बाबू विश्वम्भरनाथजीने जनताको यद्यपि आपका परिचय दे दिया था फिर भी जनताको यह भ्रम बना ही रहा कि आप मालवीयजी ही हैं। प्रयागके प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्य्यकर्त्ता श्री विश्वम्भरनाथजीकी मृत्युके अवसरपर जब पूज्य मालवीयजी श्री रमा-कान्तजीकी दुपलिया टोपी पहनकर श्री मोतीलालजी नेहरूके यहाँ गए तो नेहरूजीको भी भ्रम हुआ और उन्होंने 'रमा' कहकर पुकारा। पूज्य मालवीयजीके 'नहीं' कहनेपर भी मोतीलालजीने कहा—नहीं, रमा ही तो है। ऐसी घटनाएँ अनेक बार हो चुकी हैं। आप प्रयाग विश्वविद्यालयके कोर्टके सदस्य भी हैं।

पूज्य मालवीयजीके द्वितीय पुत्र श्री राधाकान्तजी भी एक वकील हैं। ये घरमें लेड्डआ भैया कहलाते हैं। बीचमें आपकी रुचि व्यवसायकी ओर झुकी थी। आप सूखा बर्फ़ बनानेकी जानकारी पानेके लिये विदेश भी गए थे। विदेशमें आपने कट्टर सनातनधर्मीका जीवन बिताया। वहाँ अपने ही हाथों भोजन बनाते और शुद्धाचारसे रहते थे। लौटनेपर आर्थिक कठिनाइयोंके कारण आप अपने कार्य्योंमें सफल न हो सके। आप हिन्दू महासभा, सनातनधर्म महासभा, हिन्दी सम्मेलन, लीडर आदि संस्थाओंके प्रधान मन्त्री रह चुके हैं। सार्वजनिक कार्य्यों—विशेषकर हिन्दू जाति और धर्म-सम्बन्धी बातोंमें आप बड़ी दिलचस्पी लेते हैं।

श्री मुकुन्दकान्तजी बी० ए० तक पढ़े और आपने प्रयागमें ही व्यवसाय करना प्रारम्भ किया। काम बढ़नेपर आप कानपुर गए और वहाँसे बम्बई चले गए। आपका व्यापार ख़ूब ज़ोरोंपर था कि सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा और आपने पत्नीसहित उसमें भाग लिया। बम्बई ऐसे सुदूर प्रान्तमें भी आपके अपूर्व त्याग और विनयशीलताने आपको लोकप्रिय बना दिया। आप वहाँके कुशल कार्य्यकर्त्ताओंमें गिने जाते थे। इसी सिलसिलेमें आपको कई बार जेल जाना पड़ा जिससे आपके व्यापारको बहुत ही धक्का पहुँचा।

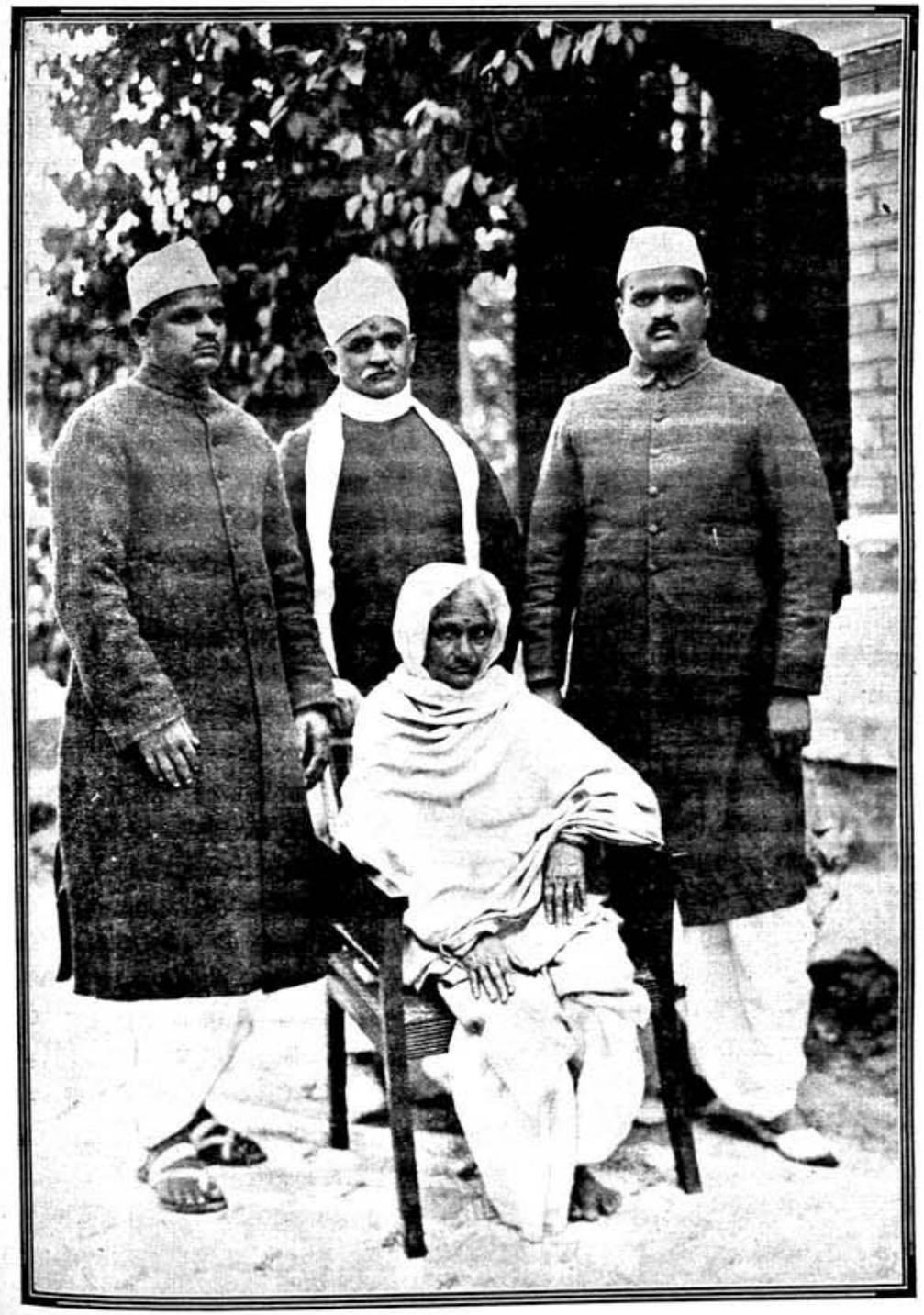

पूज्य मालवीयजीकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवी बीचमें कुर्सीपर बैठी हैं। पीछे उनके तीन पुत्र (बाईं ओरसे) मुकुन्द, रमाकान्त और गोविन्द खड़े हैं। राधाकान्त इसमें नहीं हैं।

आन्दोलन बन्द होनेपर आप अपनी जन्मभूमि प्रयागमें वापस चले आए और तबसे वहीं रह रहे हैं।

पूज्य मालवीयजीके चतुर्थ पुत्र श्री गोविन्द मालवीय हैं। आपकी शिक्षा काशी विश्वविद्यालमें हुई है। जब देशमें चारों ओर प्रिन्स औफ़ वेल्सके बहिष्कारकी धूम मची हुई थी और पूज्य मालवीयजी उनके स्वागतका आयोजन कर रहे थे उस समय गोविन्दजी बी० ए० कक्षामें पढ़ रहे थे। आपने अपने पिताजीके विचारोंका विरोध किया, विद्यार्थियोंका साथ दिया और कौलेज छोड़कर भाग गए। बादमें आपने कौलेजकी उच्च शिक्षा एम० ए०, एल्-एल्० बी० तक प्राप्त की। सन् १९२८ ई० में आपका एक ज़ोरदार भाषण प्रयागमें हुआ था जिसके फलस्वरूप आपको कठोर जेलयातना सहनी पड़ी। उस समय सरकारकी निगाहोंमें युक्तप्रान्तके दो नवयुवक—दोनों अपने पिताके सच्चे सपूत—एक तो हमारे राष्ट्रपति तथा दूसरे श्री गोविन्दजी खटक रहे थे। सरकारकी आँखोंमें इनसे अधिक ज़ालिम आदमी और सरकारी अमनचैनको नष्ट करनेवाला दूसरा व्यक्ति कोई नहीं था। फलतः दोनोंको कारागारका दण्ड मिला। देश उस समय इन्हीं नवयुवकोंपर आँख लगाए था। आज हमारे राष्ट्रपतिने उसीको चरितार्थ कर दिया है, पर परिस्थितियोंमें बँधे होनेके कारण पूज्य पिताजीमें अतुल श्रद्धा और उनके नाना प्रकारके कार्य्योंमें लगे रहनेके कारण उनके स्वास्थ्यपर जो असर पड़ रहा था उसको देखकर श्री गोविन्दजीको बहुत दिनोंतक पूज्य मालवीयजीके सहकारी मन्त्रीके रूपमें रहना पड़ा। इधर कुछ दिनोंसे वे जीवनबीमाके कार्य्यमें संलग्न हैं और न्यू इन्श्योरेन्स लिमिटेडके मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर हैं।

मालवीयजीने जो श्री विजयराघवाचारीसे बात कही थी, वह सचमुच ठीक ही है। शायद ही उनके घर-भरमें कोई ऐसा हो जो मालवीयजीके परिवारके सभी बच्चोंका नाम जानता हो। हमने बड़ी कठिनतासे मालवीयजीके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले परिवारकी तालिका तैयार की है उसीसे समझ जाइए कि परिवार भरका नाम गिनानेके लिये कितनी भारी स्मरण-शक्ति चाहिए।

मालवीयजीको अपने घरके देखभालकी फ़ुरसत ही नहीं रहती। एकबार जब उनकी धर्मपत्नीजीको चोट लगी तो आप पटनेमें दौरा कर रहे थे। वहाँ उन्हें इसकी ख़बर मिली। लोगोंने उन्हें कहा कि आप प्रयाग चले जाइए पर उन्होंने कहा कि नहीं इस समय मैं कई स्थानोंपर पहुँचनेका वचन दे चुका हूँ। पहले वहाँ जाकर तब मैं प्रयाग जाऊँगा। किन्तु जब वे घरपर रहते हैं तो अपनी पुत्रियों और नाती-पोतोंसे ख़ूब बातें करते और खेला करते हैं। बच्चोंमें बैठकर वे बच्चे बन जाते हैं। दूसरोंके बच्चोंको भी वे कम प्यार नहीं करते हैं।

मालवीयजी जब अपने परिवारके बीचमें बैठते हैं तो हँसी मज़ाक़ भी ख़ूब करते हैं और चुटकियाँ भी लेते हैं। मालवीयजी एक सुखी परिवारके प्रजापति हैं और उनकी छायामें रहकर वह परिवार निरन्तर उन्नत ही हो रहा है। उनके परिवारमें छोटेसे-बड़े तक—क्या लड़की क्या लड़के, और क्या बहुएँ—सभी देश-सेवाके रङ्गमें रँगे हैं जिनमेंसे उनके दो पुत्र, दो बहुएँ और एक पौत्रको सरकारका अतिथि बनकर जेलमें भी रहना पड़ा है। ईश्वर करे यह परिवार और भी उन्नति करे और इनके द्वारा देशका कल्याण हो और यश बढ़े।

मालवीयजीका परिवार

पण्डित मदनमोहन मालवीय—(धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दन देवीजी)

प्रथम पुत्र
श्री पण्डित रमाकान्तजी (धर्मपत्नी—श्रीमती सरस्वती देवी)—
सन्तान:
- श्रीमती पद्मावती मालवीय
- श्रीमती शारदा देवी मालवीय
- श्रीमती लक्ष्मी मालवीय
- कुमारी हेम मालवीय
- कुमारी लज्जा मालवीय
- कुमारी दया मालवीय
- कुमारी विजया मालवीय
- श्रीधर मालवीय बी० ए०
- शशिधर मालवीय
- प्रेमधर मालवीय

द्वितीय पुत्र
श्री पण्डित राधाकान्त मालवीय (धर्मपत्नी—श्रीमती श्यामा मालवीय)—
सन्तान:
- कुमारी शान्ती मालवीय
- कुमारी कुन्द मालवीय
- कुमारी दया मालवीय
- कुमारी चिन्ता मालवीय
- यशोधर मालवीय
- चक्रधर मालवीय
- चन्द्रधर मालवीय
- सुधाधर मालवीय

तृतीय पुत्र
श्री पण्डित मुकुन्द मालवीय (धर्मपत्नी—श्रीमती विद्यावती मालवीय)—
सन्तान:
- श्रीमती अनुसूया मालवीय
- कुमारी कला मालवीय बी० ए०
- गिरिधर मालवीय

चतुर्थ पुत्र
श्री पण्डित गोविन्द मालवीय (धर्मपत्नी—श्रीमती ऊषा मालवीय)—
सन्तान:
- कुमारी शीला मालवीय
- कुमारी सुधा मालवीय
- कुमारी विभा मालवीय
- कुमारी शोभा मालवीय
- कुमारी सत्या मालवीय
- नवजात शिशु

प्रथम पुत्री
श्रीमती रामेश्वरी मालवीय (पति—पण्डित मदनगोपाल मालवीय, कानपुर)—
सन्तान:
- सच्चिदानन्द मालवीय
- ध्रुव मालवीय
- कुमारी गार्गी देवी मालवीय
- अजित मालवीय
- कुमारी शान्ति मालवीय

द्वितीय पुत्री
स्व० श्रीमती रुक्मिणी मालवीय (पति—पण्डित देवकीनन्दन भट्ट, काशी)—
सन्तान:
- श्रीमती लीलावती मालवीय
- रविशङ्कर मालवीय
- श्रीमती कमला मालवीय

तृतीय पुत्री
श्रीमती मालती मालवीय (पति—पण्डित रामशङ्करजी भट्ट, काशी)—
सन्तान:
- कुमारी विमल मालवीय
- कुमारी सावित्री मालवीय
- शिवकुमार मालवीय

शतदल कमल

रातके पिछले पहरमें जब अचानक मन्द वायु कुछ चपल होकर सोई हुई कलियोंको जगाता फिरता है और चटक-चटककर छोटी-बड़ी कलियाँ अलसाती, मदमाती-सी जग उठती हैं, और आकाश इन नन्हे-नन्हे बच्चोंके कोमल अङ्गोंको सजा देता है और फिर जब ये हवाके हल्के झूलेमें झूलते हुए मोती बरसाते हैं उस समय भला कौन ऐसा प्राणी होगा जो अपनेको भूल न जाय। पर इससे भी सुन्दर एक और दृश्य है। तालाबके निर्मल जलपर हरे-हरे चौड़े-चौड़े पत्ते बिछे हुए हैं। रातका पिछला पहर समझकर उन्हीं पत्तोंके बीचसे आँख मूँदकर एक तपस्वी झाँकता है और धीरे-धीरे ऊपर उठता है। एक पैर पर खड़ा होकर अपने इष्टदेवके आनेकी बाट जोहता है। पौ फटने लगती है। पूरबका आकाश रङ्ग बदलता चलता है—हलका नीला, फिर सफ़ेद, उसके बाद पीला, फिर नारङ्गिया, फिर लाल—इन इन्द्रधनुषके रङ्गोंकी साड़ी पहनकर ऊषा आती है, अरुण आता है और उसके पीछे-पीछे चला आता है सूर्य्य—प्रकाश देता हुआ, अन्धकार भगाता हुआ, अज्ञानको मिटाता हुआ। इधर इस तपस्वीके हृदयमें अपने इष्टदेवके आनेका पता चलता है। हुलासके मारे वह खिल उठता है—वैसे ही जैसे परीक्षामें उत्तीर्ण होकर विद्यार्थी, और फिर जैसे ही वह इष्टदेव सामने आता है, तबतक तो वह शतदल कमल अपने निर्मल पङ्खोंमें सुनहरे परागका थाल लेकर अपने इष्टदेवकी पूजा करनेको खड़ा हो जाता है। न जाने कितने कवि कमलके इस सुन्दर स्वरूपपर मुग्ध हो गए और इसी नशेमें उन्होंने संसारके सम्पूर्ण सौन्दर्य्यको तराज़ूके पलड़ेमें रखकर एक कमलसे तौल दिया। फिर भी कमल भारी ठहरा। भगवान्‌के नेत्र, मुख, कर, चरण—सभी कमल बन गए और जिसके भी सौन्दर्य्यने हमारे हृदयको बन्दी बनाया उसके रूपको भी हमने कमलकी कसौटीपर कसकर जाँचा। कवियोंने कमलको सर्वश्रेष्ठ सुमन कहा, सबसे पवित्र पुष्प माना और उसे फूलोंका राजा ठहराया। पर एक ही बात उनकी हम नहीं मानते। वे कहते हैं कि सूर्य्य जब अपने करोंसे उसे छूता है तभी वह खिलता है। पर बात ऐसी नहीं है। रातको जब सारे जीव अपने-अपने आवासोंमें शीतसे बचकर आराम करते हैं, उस समय ध्यान लगाकर, आँख मूँदकर ठण्डे जलमें शीत सहता हुआ भी तपस्वी कमल एक पाँवपर खड़ा रहता है। उसीकी तपस्या सूर्य्यको आकर्षित करती है, उसीकी तपस्या प्रकाश लाती है, ज्ञान लाती है और जागृति लाती है। वह न होता तो सारा संसार अज्ञान और अँधेरेमें पड़ा सोता रहता। कमलकी तपस्याका महत्त्व देवताओंतकने जाना है। ब्रह्माजीसे वेदका ज्ञान उत्पन्न हुआ पर ब्रह्माजी कहाँसे उत्पन्न हुए? उन्हें कमलने पैदा किया। सरस्वतीजी भी श्वेत पद्मासना हैं और लक्ष्मीजीको कमल ही सुहाता है, और उस शतदल कमलकी सब पङ्खड़ियाँ एकसी सुन्दर, एकसी कोमल एकसी मनोहर और एकसी गन्धवाली हैं। सौन्दर्य्य, पवित्रता, कोमलता, स्वच्छता और तपस्विताके साक्षात् मूर्त्तिमान स्वरूप कमलके आगे अपने-आप सिर झुक जाता है। जी करता है कि इसे हृदयमें रख लें। जङ्गलमें घूमते हुए कहीं उसका परिमल ही वायुके साथ हमारी नासिकातक पहुँच जाय तभी हृदय प्रफुल्लित हो उठता है; पर यदि कहीं वह दिखाई पड़ जाय तो उतने क्षण तो संसारकी याद भूल जाती है, आदमी अपनेको खो देता है। कोई दुष्ट बालक उसपर काँचड़ भी फेंके, उसकी पङ्खड़ी भी नोंचे, फिर भी वह कमल ही रहता है, लोग उस बालककी मूर्खताको ही दोष देते हैं।

प्रत्येक महापुरुष ऐसे ही शतदल कमल होते हैं। अज्ञान, कायरता, द्वेष और अहङ्कारके अँधेरेमें पड़े हुए लोगोंके लिये ज्ञानके सूर्य्यको बुलानेके लिये ये लोग तपस्या करते हैं और जब अन्धकार मिट जाता है तब अपना पूर्ण स्वरूप दिखाकर अपनी मधुर याद छोड़कर विदा लेते हैं।

चाहे कोई कुछ कहे पर यह मानना पड़ेगा कि भगवान् कृष्णने गीतामें अर्जुनसे जो प्रतिज्ञा की थी कि जब-जब धर्मकी हानि होगी, प्रजापर क्लेश होगा, तब-तब मैं आऊँगा वह उन्होंने सदा सच किया। बुद्ध, महावीर, स्वामी शङ्कराचार्य्य, रामानुजाचार्य्य, वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुलसीदास, गुरु गोविन्दसिंह, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि धर्मप्रचारक और सन्त, महाराणा प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, महाराजा रणजीतसिंह आदि वीर योद्धा तथा लोकमान्य तिलक, मालवीयजी और गान्धीजी जैसे महापुरुषोंको देखकर कौन कहेगा कि भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बात नहीं रक्खी।

पिछले साल जावा द्वीपके प्रसिद्ध नेता श्री रैदन सेइतोमो महोदय भारतका भ्रमण करने आए और यहाँ आकर यहाँके बड़े-बड़े नेताओंसे मिले। उन्होंने हिन्दू मिशनके सभापति स्वामी सत्यानन्दजीको एक पत्र लिखा था कि—

"मालवीयजीके साथ थोड़ी देर बात करनेपर मेरे मनमें सबसे बड़ा भाव यह आया कि मैंने वास्तवमें एक महापुरुषके दर्शन किए हैं। पण्डितजीके कमरेसे बाहर निकलते ही सहसा ये शब्द मेरे मुँहसे निकल पड़े थे। मैं मालवीयजीके चिरस्मरणीय कार्य्य काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालसे बड़ा प्रभावित हुआ था।"

मालवीयजी जिन परिस्थितियोंमें पैदा हुए थे, जिस वातावरणमें जन्म लिया था, उसका वर्णन हम कर ही चुके हैं। शतदल कमलके समान उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर, कठोर तपस्या करके, देशके अज्ञानको दूर करके, दरिद्रता, कायरता और द्वेष आदिको दूर करनेका प्रयत्न किया वह भी आप पढ़ ही चुके होंगे। कमलकी तपस्याने सूर्य्यको बुलाकर जो जगत्‌की सेवा की है वह तो आप जान ही चुके, अब ज़रा कमलका स्वरूप भी तो देख लीजिए।

भगवान् श्रीकृष्णने गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी सम्पत्तिका ज़िक्र करके महापुरुषको जाँचनेकी कसौटी बता दी है। उन्होंने लिखा है—

अभयं सत्त्व संशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

अर्थात् निडरपन, शुद्ध सात्विक वृत्ति, ज्ञानयोगमें व्यवस्था, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध (सदा हँसमुख रहना), त्याग, शान्ति, उदारता, सब प्राणियोंमें दया, तृष्णा न रखना, कोमलता, अनुचित कामकी लज्जा, गम्भीरता (अचपलता अर्थात् सोच-विचारकर काम करना) तेज, क्षमा, धैर्य्य, शुद्धता, द्रोह न करना और अहङ्कारका अभाव ये दैवी सम्पत्तिवाले पुरुषमें गुण होते हैं। इसी आधारपर ज़रा मालवीयजी महाराजका स्वरूप तो देखें।

निडरपन

पिछले पृष्ठोंमें कई बार आप पढ़ चुके होंगे कि मालवीयजी कितने निर्भय हैं। न जाने कितनी बार

सरकारने बन्दरघुड़कियाँ दीं, लाल-लाल आँखें दिखलाईं पर मालवीयजीके वीर हृदयपर उनका कुछ असर न हुआ। सिंह जब अपनी शानसे चला जाता है उस समय अन्य जानवरोंके भोंकने-चिल्लानेसे वह अपनी गति नहीं बदलता, न विचलित होता। पिंजड़ेमें बन्द होकर भी शेर, शेर ही रहता है। यह निर्भयताका गुण उनमें शुरूसे ही रहा। जो बात उन्होंने ठीक समझी उसके कहने और करनेमें कभी आगा-पीछा न किया। संसारके विरोधके बीचसे निर्भय होकर बच निकलना कोई साधारण बात नहीं है।

एक दफ़ेकी बात है, मालवीयजीके बड़े लड़के रमाकान्त मुहल्लेमें खेल रहे थे। किसी दूसरे लड़केने उनकी गेंद छीन ली। वह रोते हुए मालवीयजीके पास आए और शिकायत की—"बाबू! हमार गेंद एक लड़का ले लिहा है सेा दिवाय देा।" मालवीयजी बड़े बिगड़े और कहा कि 'जाओ उससे गेंद लेकर आओ। रोते हुए क्या आए हेा! हम होते तेा बिना गेंद लिए थोड़े ही आते।' मालवीयजी खम ठोंककर लड़नेवाले हैं, धर्मयुद्धमें पीठ दिखाकर भागनेवाले नहीं हैं और न दूसरोंको भागनेका उपदेश देते हैं।

पिछली बार जब कलकत्तेमें मुसलमानोंका दङ्गा हुआ तेा मालवीयजी निषेधाज्ञा होनेपर भी वहाँ गए। वे मोटरपर बैठे चले जा रहे थे, अचानक एक मुसलमानका लड़का उनकी मोटरके नीचे आ गया। मुसलमानोंका मुहल्ला था। उन 'अल्ला हेा अकबर' के दिनोंमें वैसे ही जान आफ़तमें रहती थी, फिर यह घटना तेा आफ़तसे बढ़कर ही समझेा। चारों तरफ़से मुसलमान जुट गए। मालवीयजीके साथ डाक्टर मङ्गलसिंह थे। उन्होंने राय दी कि मोटर तेज़ीसे भगा ले चलिए, न जाने क्या हेा जाय। पर मालवीयजीने कहा—नहीं, उस लड़केको अस्पताल ले चलना होगा। वे मोटरसे उतर गए। उस लड़केको उठाकर मोटरमें बैठाया और अस्पताल पहुँचा दिया। इतना ही नहीं बल्कि जबतक यह अच्छा नहीं हेा गया तबतक थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसकी पूछताछ करते रहे। इतनी उत्तेजित भीड़मेंसे किसीकी मजाल नहीं हुई कि मालवीयजीके शरीरको छू भी सके।

इसी प्रकार मुलतानके दङ्गेके समय मुसलमानोंकी सभामें जाकर उन्होंने जेा खोटी-खरी सुनाई और ऊँच-नीच सुझाया उसे सुनकर दाँतोंतले उँगली दाबनी पड़ती है। आठ दिन पहले जेा हिन्दूका ख़ून पीनेको तैय्यार थे वे उस दिन बकरी बने हुए उस हिन्दू नेताकी झिड़कियाँ चुपचाप कान दबाकर सुन रहे थे। भला कितने हिन्दू नेताओंको इतना साहस होगा?

मन और हृदयकी शुद्धि

मालवीयजी जैसे बाहरसे धवल दिखाई देते हैं उससे भी धवल वे भीतरसे हैं। कहा जाता है कि आचारसे ही विचार बनते हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है, जैसे लेागोंकी सङ्गत करता है, जैसी पुस्तकें पढ़ता होगा वैसे ही उसके विचार हेा जायँगे। मालवीयजीका जन्म शुद्ध वैष्णव परिवारमें हुआ था। किसीके हाथका छुआ नहीं खाना और अपने हाथसे भोजन बनाना यह इनके परिवारका नियम था और इनका यह नियम व्यवस्थापक सभाओंमें, कांग्रेसकी बैठकोंमें, जेलमें और विलायतकी गोलमेज़ परिषद्में भी चलता रहा। शुरूमें इनके पास नौकर नहीं थे। उस समय ये अपने हाथसे भोजन बनाते थे। इनका चूल्हा-बर्त्तन सब साथ चलता था। जब ये कांग्रेसकी स्थायी समितिके सदस्य थे तब काशीमें युक्तप्रान्तके सदस्योंके चुनावकी सभा हुआ करती थी। ये आकर श्री रामकाली चौधरीके यहाँ ठहरते थे पर भेाजन अपने हाथसे बनाते थे। खान-पानके विषयमें मालवीयजी बड़े पक्के हैं। उनको जहाँ अपवित्रताकी गन्ध आई कि वे उससे दूर भागे। वायसरायकी पार्टियोंमें तथा और भी बहुतसी दावतोंमें वे शरीक तेा होते रहे पर कभी इन्होंने वहाँका जल तक न पिया। एसेम्बलीमें पाँच-पाँच घण्टे व्याख्यान देनेपर भी इन्होंने एक बूँद पानीको गलेसे नीचे नहीं उतारा। उनका आचार ही पानीके न मिलनेपर भी उनके कण्ठको बल दे रहा था।

एक बारकी घटना है, पञ्जाबका दौरा करते हुए मालवीयजी पेशावरमें पहुँचे। यों तेा आप नित्य तेलकी मालिश करते ही हैं, लेकिन रात-दिन दौड़-धूपसे जब आपका शरीर थक जाता है उस समय आप इतना तेल मलवाते हैं कि इसे तैल-स्नान कहें तेा अनुचित न होगा। इसी लिये तेलभरी बेातल आपके साथ यात्रामें भी चला करती है।

तेलकी बेातल ख़ाली हेा चली थी। पेशावरसे रावलपिण्डीको आना था। मालवीयजीके रसेाइया और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी एक बेातल चमेलीका तेल बाज़ारसे ले आए। बेातल नई देखकर आपको जब यह बतलाया गया कि बेातल बाज़ारसे ली गई है तेा इस शङ्कासे कि कभी उसमें शराब न रही हेा, आपने तेल-समेत बेातलको फिकवा दिया। देखनेमें शायद बात छेाटी मालूम पड़ती होगी, पर मालवीयजीकी असीम पवित्रताका इससे पूरा अन्दाज़ा लग सकता है।

एक बार तेज़पूरसे मालवीयजी बाबू राजेन्द्र प्रसादके सङ्ग डिब्रूगढ़के लिये रवाना हुए। वहाँसे आपको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमिटीकी बैठकमें लखनऊ पहुँचना था। गेाहाटीमें ब्रह्मपुत्रके इस पार अमीनगाँव तथा उस पार पाण्डु स्टेशन है। डिब्रूगढ़से रेलसे पाण्डु पहुँचकर, वहाँसे अमीनगाँव स्टेशनपर गाड़ी पकड़नेके लिये स्टीमरपर सवार होनेके लिये मुश्किलसे तीस मिनटका समय बचता था। डिब्रूगढ़से लखनऊका सफ़र, बीचमें केवल कुछ घण्टोंके लिये कलकत्तेमें विश्राम, और मालवीयजीकी कठोर जीवन-चर्य्या! इस लिये आपने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी श्री चन्द्रबली पाण्डेयको तेज़पूरसे गेाहाटीको इस आदेशके साथ वापस किया कि पाण्डु स्टेशनपर कच्ची रसेाई तैयार रक्खें। आसामके सर्वप्रधान नेता श्री तरुनराम फूकनके यहाँ पण्डितजीके ठहरनेका प्रबन्ध आसाम प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीने किया था। उस समय फूकन महेादय भी जेल ही में और यद्यपि वे जातिके ब्राह्मण हैं, परन्तु मालवीयजीने यह आदेश दिया कि भेाजन तैयार करनेके लिये फूकन महाशयके यहाँसे पात्र न लिए जायँ, कौन जाने उनके भेाजन-पात्रोंमें मत्स्य-मांसका संसर्ग रह चुका हेा। मिट्टीके बर्त्तन ही में चावल, दाल तथा भाजी बनाई जाय, सेा भी ऊपरसे छेाड़ दी जाय। मालवीयजी किस कड़े आचारमें रहकर दुनिया भरका काम करते हैं, यह कम अचरजकी बात नहीं है। उनका खानपान उनके आचारकी तपस्या एक प्रधान अङ्ग है। वे जितना काम करते हैं, उसकी तुलनामें उनका भेाजन पासङ्ग भी नहीं है,—दिनमें दो चार फुलके, थेाड़ासा भात और एक दो तरकारी, बस इतना ही। आचार, चटनीका बिल्कुल शौक़ नहीं है। फल खानेका भी शौक़ कभी नहीं था। इधर बीमार होनेसे वैद्यों और डाक्टरोंकी रायसे ही वे नियमसे फल खाने लगे। खजूर, शन्तरा, अङ्गूर ये उनके प्रिय फलोंमें हैं। पर दूध वे नियमसे पीते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या करनेके बाद वे आध-आध सेर दूध अवश्य पीते हैं। उनकी यात्रामें भी एक गेाल चूड़ीदार लेाटेमें दूध सदा उनके साथ रहता है। व्याख्यान देने या कहीं जानेके पहले भी आप प्रायः आध पाव, पाव भर गायका दूध पी लेते हैं। मालवीयजीकी थालीमें चाय, काफ़ी आदिको कभी कोई स्थान नहीं मिलता। बीमारीसे उठनेपर कहने-सुननेसे कभी-कभी थेाड़ा शहद भी ले लेते हैं। रेलके सफ़रमें दूधमें सने हुए आटेकी पूरियाँ साथ चलती हैं पर कभी-कभी गाड़ी आ जानेपर वे रेाटी बनाकर नमकके साथ खाकर चल देते हैं जैसा माउण्ट आबू रेाड स्टेशनपर सन् १९१८ ई०में किया था। इसी आचारके कठेार नियमके कारण ही वे अंग्रेज़ी दवा भी नहीं लेते हैं। इसी आचारकी शुद्धिने उनका हृदय अत्यन्त शुद्ध बना दिया और उसमें भर दिया इतना नैतिक साहस।

एक बारकी बात है। मालवीयजी किसी अफ़सरसे बातें कर रहे थे, पण्डित रामनारायण मिश्र

भी वहीं बैठे थे। उसी बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने मिश्रजीसे कुछ ऐसी बात कह दी जो उस अफ़सरके सामने नहीं कहनी चाहिए थी। मिश्रजीने मालवीयजीको पत्र लिखा कि आपने उक्त अवसरपर ऐसी बात कह दी थी। मालवीयजीने तत्काल तार देकर उनसे क्षमा माँग ली। यह हृदयकी शुद्धि बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है।

मालवीयके पवित्र हृदय मन्दिरमें कपटका प्रवेश नहीं हो पाता। जो बात उनका हृदय स्वीकार करता है उसे निष्कपट रूपसे कह देनेमें सङ्कोच नहीं करते—पर हाँ, कहते हैं इस मीठे ढङ्गसे कि सुननेवाला भी उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता।

ज्ञानयोगमें व्यवस्था

ऐसे बहुत कम लोग हैं जो संसारके काम भी करते रहें और अपनी बुद्धिके विकासके लिये निरन्तर ज्ञान भी प्राप्त करते चलें।

मालवीयजी केवल बी० ए०, एल् एल्० बी० ही नहीं पास हैं। स्कूल और कौलेज्के पाठ्यक्रमके अतिरिक्त उन्होंने जो धर्मशास्त्रों और विभिन्न साहित्योंका अध्ययन किया है, वह उनकी कौलेज्की पढ़ाईसे कहीं अधिक महत्त्व रखता है। मालवीयजी जब कभी धार्मिक व्याख्यान देते हैं या कथा कहते हैं, उस समय मालूम होता है कि शास्त्र और पुराणोंका उन्होंने कितना गम्भीर मनन किया है। फिर अपने लिये तो बहुत लोग ज्ञान एकत्र करते हैं, पर जिसने दूसरोंके लिये ज्ञानका स्रोत खोल दिया हो, उसकी ज्ञानयोगमें व्यवस्था कितनी होगी, अनुमान कर लीजिए।

सात्त्विक दान

सैकड़ों धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, स्कूल, मदरसे, अनाथालय, मन्दिर और मस्जिद नित्य खुलते जाते हैं। दानी, उदार महानुभाव नित्य अपनी थैली खोलते चले जाते हैं पर उसके पीछे उनकी प्रसिद्ध होनेकी भावना बनी ही रहती है। वास्तवमें दान वह है जो बिना किसी बदलेके दिया जाय। मालवीयजीके दानकी एक घटनाका उल्लेख पण्डित रामनरायण मिश्रजीने किया है। वे लिखते हैं :—

"मैं विद्यार्थी था, पण्डित मदनमोहन मालवीयजीका नाम सुना करता था। जब वे बाबू रामकाली चौधरीके यहाँ ठहरा करते थे, दो एक बार उनके दर्शन भी हुए थे।

मेरे स्वर्गवासी मामा डाक्टर छन्नूलालने जो काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाके उन दिनों सभापति थे, स्वास्थ्य-रक्षापर एक लेख, सभाके एक अधिवेशनमें शायद सन् १८९५ ई० में पढ़ा था। सभाकी वह बैठक कारमाइकल लाइब्रेरीके कमरेके बाहर पच्छिमकी तरफ़ चबूतरेपर हुई थी। उनमें श्री मालवीयजी भी आए थे। डाक्टर साहबने स्वास्थ्य-रक्षाकी दृष्टिसे भारतीयोंके रहन-सहनकी कड़ी आलोचना की थी। श्री मालवीयजीने उस समय एक छोटासा मधुर व्याख्यान देकर कहा था कि डाक्टर साहबने बातें सब ठीक कहीं है पर "सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्" सिद्धान्तका अनुसरण नहीं किया है। जहाँतक मुझे याद है, मैंने उनका यह पहला ही व्याख्यान सुना था। उस व्याख्यानको सुननेके बाद मैं उनके पास गोस्वामी भवानीपुरीके यहाँ, जहाँ वे ठहरते थे, पहुँचा। उन दिनों पण्डित मथुराप्रसाद मिश्रजी अपने समयके बड़े प्रसिद्ध हेडमास्टर माने जाते थे। वे पेन्शन लेकर दशाश्वमेध घाटपर एकान्तवास करते थे। वे अपने अंग्रेज़ी उच्चारणके लिये प्रसिद्ध थे। मुझपर उनकी बड़ी कृपा थी। एक दिन मैं श्री मालवीयजीको उनके पास ले गया। दोनों एक दूसरेसे बहुत प्रेम और श्रद्धासे मिले।

उन्हीं दिनों नागरी-प्रचारिणी-सभाके लिये मैंने जापानका इतिहास लिखा था। श्री मालवीयजीने पूछा कि ओकाक्यूराकी नई पुस्तक "जापान बाई दी जापानीज़" पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा, वह पुस्तक मँहगी है इसलिये मैं उसे पा नहीं सका। इसी प्रकार बातचीत करता मैं उनके साथ काशी स्टेशनतक गया। वे प्रयाग जानेके लिये रेलमें बैठ गए और कुछ लोगोंसे बातचीत करने लगे। रेल छूटने ही वाली थी कि उनके क्लार्कने धीरेसे मेरे हाथमें कुछ रुपये देने चाहे और कहा कि श्री मालवीयजीकी आज्ञासे मैं जापान-सम्बन्धी पुस्तक ख़रीदनेके लिये दे रहा हूँ। मैंने रुपया लेनेसे इनकार किया। क्लार्कने आग्रह किया—इतनेमें रेल चल दी।"

आज भी मालवीयजीके द्वारसे कोई विमुख नहीं जाता। यह तो सभी जानते हैं कि मालवीयजी संसारके सबसे बड़े भिखारी हैं। जो दूसरोंके आगे हाथ फैलाता हो उसके आगे दूसरे भी हाथ फैलाते हों, यह तो देखनेमें बिलकुल अटपटी बात जान पड़ती है, पर बात सच है। न जाने कितने याचक वहाँ करुणाके साथ आते हैं और मुसकानके साथ जाते हैं। न जाने कितने दीन विद्यार्थी मालवीयजीकी कृपासे विद्या पढ़ रहे हैं। उसका कारण यही है कि बहुतसे धनी-मानी मालवीयजीके हाथोंसे ही धनका सदुपयोग कराना चाहते हैं। कभी आप चले जाइए मालवीयजीके बँगलेपर। एक भीड़ जमा रहती है—फ़ीस चाहिए, पुस्तक चाहिए, वस्त्र चाहिए, मानो कुबेरका ख़ज़ाना खुला हुआ है। पर आप यह भी देखेंगे कि उस 'संसारके सबसे बड़े भिखारी' के द्वारसे वहाँसे निराश कोई नहीं लौटता।

दम

मालवीयजीका पवित्र उदात्त और निष्कलङ्क चरित्र ही उनके दम (इन्द्रिय निग्रह) का सबसे बड़ा और पूर्ण प्रमाण है।

यज्ञ

जैसे-जैसे हम लोग सभ्य होते जाते हैं वैसे-ही-वैसे हम अपने बड़ोंका सम्मान करना भूलते जा रहे हैं। कुछ ऐसी मादकता छाई हुई है कि हम अपनेको सब कुछ समझ बैठे हैं। हम यह नहीं समझते कि हमारा शरीर हमारे बड़ोंका आशीर्वाद है, हमारा ज्ञान हमारे बड़े बूढ़ोंकी तपस्याकी देन है और हमारी शक्ति हमारे बुज़ुर्गोंका प्रसाद है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि जहाँ बड़ोंका सम्मान है वहाँ आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। शायद वृद्धोंकी सेवा न करनेका ही यह परिणाम हो कि हमारी आयु कम हो गई, अविद्याका साम्राज्य हो रहा है, यश देश छोड़कर भाग गया है और बल रह गया है—आत्महत्या करनेमें। बड़ोंका सम्मान स्वतः एक बड़ा भारी यज्ञ है। जो यह यज्ञ करते हैं उन्हें सारा संसार अपना मानता है और वे अपने बड़े लोगोंके आशीर्वादसे फलते-फूलते हैं। मालवीयजी अपने माता-पिताके अनन्य भक्त हैं। अब भी इनके कमरेमें और इनके साथ इनके माता-पिताका चित्र निरन्तर रहता है। घरके बाहर भी सभी बड़े, बूढ़ोंका ये बड़ा आदर और उनकी बड़ी सेवा करते हैं।

एक बार पण्डित बालकृष्ण भट्टजी बड़े बीमार पड़े। ये उन्हें बड़ा मानते थे। बस ये उनकी सेवामें लग गए। उस समय इन्होंने जो उनकी सेवा की वह कोई क्या करेगा। स्वयं हाँड़ी लेकर पेशाब कराते थे और फेंकते थे।

काशीकी रणवीर संस्कृत पाठशालाके अध्यक्ष स्व० पण्डित अनन्तराम शास्त्री इनसे अवस्थामें बड़े थे। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयके कुलपति होते हुए भी मालवीयजी उनका पैर छूया करते थे।

गत् १९३३ ई० के जनवरीकी बात है। विद्वान् पण्डित चन्द्रशेखर मिश्र (गूलराविष्कारक) जी अपनी पुरी-यात्रामें कलकत्तेमें ठहरे थे। उन्ही दिनों मालवीयजी भी कलकत्ते पधारे थे। मिश्रजीको जब मालवीयजीके आनेका पता चला तो मिलनेके लिये उनके निवासस्थान—बिड़ला-हाउस पहुँचे। मोटरसे उतरकर जैसे ही वे सीढ़ियोंपर चढ़ने जा रहे थे कि उधरसे मालवीयजी कहीं बाहर जानेके लिये आते हुए

दीख पड़े। बाहर ही सम्मिलन हो गया। मिश्रजी पण्डितजीका सम्मान करनेके लिये झुकना ही चाहते थे कि उन्होंने बीचमें ही रोककर स्वयं झुककर उनके पैर स्पर्श किए। मिश्रजी कहने लगे—आपने देश-पूज्य नेता होकर ऐसा अनुचित कार्य्य क्यों किया? मालवीयजी मुस्कुराते हुए बोले—अनुचित, मैंने किया या आप स्वयं करने जा रहे थे। मुझसे वयोवृद्ध होकर आप मेरे पैर छूने जा रहे थे, क्या यह उचित था? आप मुझसे अवस्थामें बड़े हैं, आपका पद स्पर्श मुझे करना चाहिए।

मालवीयजीने बड़े बूढ़ोंका सत्सङ्ग भी बहुत किया है। प्रयागमें मालवीयजीके मुहल्लेमें ही एक व्यासजी वैद्य रहा करते थे। वे भी मालवीय ब्राह्मण ही थे। मालवीयजी रातको नौ-दस बजेसे लेकर बारह-बारह बजे राततक वेदान्त और परमार्थ-सम्बन्धी बातचीत उनसे करते रहते थे या वैद्यकके नुस्ख़े लिखते रहते थे।

मालवीयजीके पुराने प्राइवेट सेक्रेटरी पण्डित चन्द्रवली पाण्डेयने लिखा है कि आप अम्बालेसे पञ्जाब राजनीतिक सम्मेलन, बटालामें सम्मिलित होनेके लिये जा रहे थे। अम्बाला जङ्क्शनपर और सामानोंके सिवाय इस बक्सको भी लेकर कुली लोग एक प्लैटफ़ार्मसे दूसरे प्लैटफ़ार्मको चले। मेरी अनुभवशून्यता तथा असावधानीसे कुली कुल सामान लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गए। बड़ी छानबीन हुई। बहुत दिनोंतक रेलवे पुलीसने भी पता लगानेका प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल। पूज्य माता-पिताके जिन चित्रोंको आप नित्य श्रद्धा-भक्तिसे देख लिया करते थे अब वह आपसे सदाके लिये बिलग हो गए। इन चित्रोंके खो जानेसे मालवीयजीको बहुत कष्ट हुआ। उन्हीं सब सत्सङ्गों और वृद्धोंकी सेवाओंने मालवीयजीको मालवीयजी बनाया है।

मालवीयजीका घर मुसाफिरख़ाना, अतिथिशाला, जो कहिए वही है। कोई न कोई अतिथि उनके घर सदा रहता ही है। पर वे भी अतिथियोंकी बड़ी ख़ातिर करते हैं। पर यह तो एक साधारण व्यवहारकी बात है। सभी ऐसा करते हैं। पर नीचे लिखी घटनासे आपको उनकी शुद्ध 'मालवीयता'का परिचय मिलेगा :—

दोपहर ढल चुकी थी। मालवीयजी भोजन करके ही निकले थे कि एक साधु आए। मालवीयजीने पैर छूए और पूछा कहिए महाराज क्या सेवा करूँ। साधु बोले—"मैं भोजन चाहता हूँ।" मालवीयजी बोले—"अच्छा आप ज़रा सा बैठिए, मैं अभी प्रबन्ध करता हूँ। मेरे घरमें चौका उठ चुका है। मैं पड़ोसके मित्रके घरसे लाता हूँ।" और सचमुच साधुके मना करनेपर भी आपने भोजन लाकर दिया।

मालवीयजीके पास जो जाता है, जो उनसे मिलता है उसे मालवीयजीसे एक वस्तु तो तत्काल मिल जाती है—उनकी मन्द मुसकान। केवल मीठी मन्द मुसकान और कुशल मङ्गलमें अभ्यागतका हृदय हरनेवाले, उसकी थकावट दूर करनेवाले और उसको सन्तुष्ट करदेने वाले भला कितने लोग होंगे?

मालवीयजीकी मुसकान

बम्बई कांग्रेसमें आए हुए अमेरिकन सज्जनसे कुशल-मङ्गल पूछ रहे हैं।

स्वाध्याय

हिन्दुओंकी पुरानी चाल यह रही है कि वे प्रातःकाल सन्ध्याके साथ कुछ भगवान्का भजन और गीता भागवत आदि धर्मग्रन्थोंका पाठ कर लिया करते हैं।

मालवीयजी नित्य श्रीमद्भागवत अथवा महाभारतका स्वाध्याय करते हैं। महत्त्वका शायद ही कोई वाक्य इन ग्रन्थ-रत्नोंमें हो जिसे आपने रेखाङ्कित न कर रक्खा हो।

मालवीयजीके स्वाध्यायका फल उनकी डायरी है। उनकी डायरीमें नित्यकी घटनाएँ नहीं लिखी हुई हैं बल्कि उसे हम एक नीतिका ग्रन्थ कह सकते हैं। अनेक कवियों और नीतिकारों और धर्मग्रन्थोंके सुन्दर नीतिपूर्ण दोहे, श्लोक आदि आपने उसमें लिख रक्खे हैं।

तप

गर्मीके दिनोंमें भरी दोपहरीमें चारों ओर अग्नि जलाकर तपते हुए साधुओंको आपने देखा होगा। जाड़ेके दिनोंमें गलेतक जलमें खड़े होकर मन्त्र जपते हुए महात्माओंको भी आपने देखा होगा। एक पाँवपर खड़े होकर तपस्या करते हुए भी लोग आपकी दृष्टिमें आए होंगे। वे वास्तवमें तपस्वी हैं, उनको हम सादर प्रणाम करते हैं। पर ये लोग इस तपस्याके द्वारा अपनी आत्माकी शान्तिका मार्ग ढूँढ़ते हैं, अपने लिये स्वर्गमें सुखका स्थान सुरक्षित करनेमें लगे हुए हैं। पर जो आदमी अपने सब सुखोंको लात मारकर, पैंतीस करोड़ देशवासियोंके सुख-दुःखमें, भूख-प्यास सहकर, शारीरिक कष्ट सहकर, हाथ बँटाता फिरता हो और निरन्तर उनके कल्याणकी बात सोचता हो उसे आप तपस्वी नहीं कहेंगे तो फिर क्या कहेंगे? मालवीयजीकी इस तपस्याने उन्हें अद्भुत शक्ति भी दी है।

पण्डित शिवराम वैद्यने मालवीयजीकी तपस्विताकी कुछ घटनाएँ दी हैं। वे लिखते हैं कि—

"मदनमोहन ब्राह्मण बालक तो हैं ही साथ ही तपास्विता भी इनमें कम नहीं है। इन्फ़्लुएञ्ज़ाके अवसरपर मेरे भतीजे चि० काशीप्रसादको निमोनिया-सम्बन्धी बुख़ार था और एकदम बेहोशीका दौरा हो गया। गोदान वग़ैरह भी करा दिया गया। उस समय मेरी अवस्था पागलोंकी सी थी। मैंने आदमी भेजकर मदनमोहनको बुलवाया, कह दिया कि जहाँ मिलें उनको फ़ौरन् ले आओ। इसके बाद मैं चिकित्सकोंके पास दौड़ा। डा० सुरेशको लेकर आया। मदनमोहन आ गए थे। उन्होंने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा—घबड़ानेकी बात नहीं है। काशी अच्छा है। मैंने जब आकर देखा तो विश्वनाथ ब्रह्मचारीने डा० अनन्तप्रसादकी बताई हुई मुँहके भीतर बफ़ारा देनेकी दवा शुरू कर दी थी। डा० सुरेशने भी उस बफ़ारेको, जिसमें कुछ दवाका भी योग था, पसन्द किया और कहा कि इस दवासे काशी अच्छे हो जायँगे। इस अवसरपर मुझे यही विश्वास हो रहा था कि दवा वग़ैरह एक तरफ़ अगर मदनमोहन मेरे यहाँ आ जायँ तो काशी सुखी हो जाय। मदनमोहन कोई वैद्य-डाक्टर न थे। मगर मेरे मनमें जो बातें उठी थीं वे पूरी उतरीं।

"इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना पहले घट चुकी थी। उस समय मालवीयजीके मझले भाई पण्डित जयकृष्णचन्द्रजीकी हालत संग्रहणीके रोगसे बहुत बिगड़ी थी। बड़े-बड़े वैद्य डाक्टरोंने जवाब दे दिया था। उस समय मदनमोहन मेरे पास दौड़े आए और बड़े ज़ोरसे मुझसे कहा—मैंने सुना है कि भैयाको आपने भी जवाब दे दिया है। बड़ी भूलकी बात है। उठो, चलो हमारे साथ और उनकी दवा आरम्भ करो। ये बिलकुल अच्छे हो जायँगे। मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानो भगवान कृष्ण अर्जुनसे कह रहे हैं—उत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः।" अब किस हिम्मतसे कह देता कि उनके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं। इसलिये सीधे चुपचाप मदनमोहनके साथ हो लिया। मेरा भी साहस और आत्मबल बढ़ गया था और हिम्मत पड़ी कि दवा दे दूँ। मैंने दवा करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मदनमोहनके आत्मबलने सहायता की और पण्डित जयकृष्णजी आरोग्योन्मुख होने लगे। धीरे-धीरे जहाँ उनको छटाँक-आध पाव

दूध हज़म होना कठिन था वहाँ उनको १२-१४ सेर तक दूध हज़म होने लगा। इस बीचमें उन्हें ऐसा बल हुआ कि वे अखाड़ेमें गए और एक पहलवानको पछाड़ा। इस घटनाकी ख़बर दो दिनतक न दी गई क्योंकि उनकी कमरमें हूक हो गई थी।"

एकबार आप पटनामें थे। आपके पैरमें एक फुड़िया निकल आई थी। आपने वैद्यजीसे मञ्जूरी ली और एक दिनमें दो सौ मीलसे अधिक दूरीकी यात्रा कर नौ भाषण दिए। आप फिर पटना आ गए। उसी समय प्रयागमें उनकी धर्मपत्नीजी यमद्वितीयाके दिन एक इक्केसे चोट खा गईं। इस घटनाका तार पूज्य मालवीयजीको मिल गया पर आप इलाहाबाद नहीं लौटे। पैरका दर्द बढ़नेपर भी आपने नौ स्थानोंमें भाषण दिए और दिन भर घूमते रहे। इसी तपस्याने मालवीयजीको सबके हृदयमें बैठा दिया।

सरलता।

महापुरुषोंमें एक बड़ा भारी गुण होता है सरलता। इसी गुणके कारण वे दूसरोंकी बातें एकदम सुन लेते हैं और मान बैठते हैं यहाँतक कि कभी-कभी तो वे बातें उनके हृदयपर ऐसी छाप लगा लेती हैं कि लाख प्रयत्न करनेपर भी नहीं हटाई जा सकतीं। मालवीयजीका हृदय तो इतना सरल है कि वे सारे संसारको अपने समान ही पवित्र, शुद्ध सत्यवादी समझते हैं इसी लिये कुछ भले आदमी (?) उनकी इस सरलतासे लाभ उठाकर उनके मनमें बहुतसी झूठी और भ्रमपूर्ण बातें भर देते हैं जिसका परिणाम दूसरोंके लिये कभी-कभी अच्छा नहीं होता। पर साथ ही मालवीयजी व्यवहार-कुशल भी हैं। इसलिये वे अधिकतर तो ताड़ लेते हैं पर महापुरुषका सरल हृदय आख़िर कहाँतक दूसरेके वाणीपर सन्देह कर सकता है?

अहिंसा

मालवीयजीका अहिंसा-प्रेम तो एतिहासिक हो गया है। जो अपनी तुलना छोटे-छोटे जानवरोंसे करनेपर गर्व करता हो, मच्छर जैसे दुष्ट प्राणीको भी प्रेमकी दृष्टिसे देखता हो उसके अहिंसा भावका भला वर्णन ही क्या हो सकता है? मालवीयजीके हृदयमें मनुष्यकी हिंसाका तो कहना ही क्या साधारण जीवोंको भी वह प्यारकी दृष्टिसे देखते है। वे मन वाणी और शरीरसे किसीको भी कष्ट नहीं दे सकते।

सत्य

पूज्य मालवीयजी जब सत्यपर आघात होते देखते हैं तो उसका विरोध करने और सत्य कहनेमें नहीं चूकते। एक बार मालवीयजीसे बातचीतके सिलसिलेमें काशीके प्रसिद्ध विद्वान् स्व० नकछेदजीने श्राद्धका विषय आनेपर स्वामी दयानन्दके लिये बड़े कड़े शब्दोंका प्रयोग किया और यहाँ तक कह डाला कि "वह संस्कृतका विद्वान् नहीं था"। मालवीयजीसे न रहा गया और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि मैं स्वामी दयानन्दको तपस्वी और विद्वान् समझता हूँ। मालवीयजीकी यह सम्मति सुनकर उन्होंने भी स्वामीजीपर आक्षेप करना छोड़ दिया।

उनके निष्कपट सत्यका एक और बहुत बड़ा उदाहरण है। जब गान्धीजीके पुत्र देवदासका श्री राजगोपालाचारीकी कन्यासे विवाह हुआ तो उस समय उन्होंने मालवीयजीका आशीर्वाद माँगा। मालवीयजीने आशीर्वादात्मक तार देते हुए लिखा कि "यद्यपि मैं इस प्रकारके विवाहको ठीक नहीं समझता किन्तु मेरा आशीर्वाद है कि वर-कन्या दीर्घायु हों।

अक्रोध

मालवीयजीको क्रोध तो कभी आता ही नहीं। मुँहसे अपशब्द भी कभी नहीं निकलते। बहुत नाराज़ होंगे तो केवल यही कहेंगे, "आप भी बड़े अक़्लमन्द हैं, बड़े बुद्धिमान हैं।" और फिर धीरेसे मुस्करा देते हैं। बेचारा क्रोध अपना-सा मुँह लेकर भाग जाता है।

त्याग

मालवीयजीके त्यागका कोई एक उदाहरण हो तो लिखें। उनका सारा जीवन उनके त्यागकी ही तो रामकहानी है।

शान्ति

शान्त मनुष्यका लक्षण यह है कि उसे देखकर कोलाहल बन्द हो जाय, टूटे हुए दिल मिल जायँ, पीड़ा दूर हो जाय और उबला हुआ हृदय चुप होकर बैठ जाय। न जाने कितनी बार मालवीयजीकी उपस्थिति मात्रने, उनकी वाणीके पहले शब्दने, उनकी उठी हुई उँगलीने कितनी उठी हुई तलवारोंको म्यानमें डाल दिया, कितनी बड़ी-बड़ी लहरोंको नीचे सुला दिया।

एक बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कुछ छात्रों और काशीके श्रीहरिहर बाबाकीसाधु-मण्डलीसे कुछ खटपट हो गई जिससे हरिहर बाबा अपने परिजनोंके सहित अस्सीघाट चले गए। जब मालवीयजी काशी आए और यह घटना उन्हें मालूम हुई तो वे तत्काल हरिहर बाबाजीके पास गए और कहा कि आप उसी स्थानपर चलें, मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा। आप बालकोंका अपराध क्षमा करें। हरिहर बाबाने हज़ारों गालियाँ दीं, पर मालवीयजी हाथ जोड़े हुए खड़े रहे और अपनी पगड़ी उनके पैरोंपर रख दी। दूसरे दिन मालवीयजी फिर पधारे। उस दिन हरिहर बाबा मालवीयजीका गुणगान कर रहे थे।

उनकी शान्तिने न जाने कितने मुँह बन्द कर दिए और जिनसे अङ्गारे निकलते थे उनसे फूल बरसने लगे।

उदारता

जैसे उनका द्वार सबके लिये खुला रहता है वैसे ही उनका हृदय भी। संसारके सभी प्राणी उसमें समा सकते हैं। सबके लिये उनके मनमें प्रेम है, प्रशंसा है। न तो उनका मन ही किसीकी निन्दाकी कल्पना कर सकता है और न उनकी वाणी। सारा संसार उनकी उदारतामें स्वच्छन्द घूम सकता है।

दया

राहमें पड़े हुए बीमारको देखकर हमें दया होती है, लुटे हुए मुसाफ़िरकी कथा सुनकर करुणा उमड़ पड़ती है, ग़रीबकी व्यथा सुनकर जी पसीज जाता है, पर हम क्षण भरके बाद उसे भूल जाते हैं। फिर वह दया क्या रही? दया तो तब असली कही जाती है जब हम दुखी प्राणीके दुःखको अपना दुःख समझें, उसकी चोटको अपनी चोट समझें और फिर केवल देखकर ही न रह जायँ बल्कि उसका कष्ट दूर करनेका प्रयत्न करें। कोरे तमाशबीनकी दयाका कोई मूल्य नहीं है। मालवीयजीका वर्णन करते हुए लीडरके प्रतिष्ठित सम्पादक श्री सी० वाइ० चिन्तामणिजीने कहा है कि 'वे सिरसे पैरतक हृदय-ही-हृदय हैं।' इस एक वाक्यमें मालवीयजीका पूरा चित्र आ गया है। मालवीयजीकी दया हृदयसे निकलती है और हृदयमें ही पहुँचती है। बुद्धि और तर्कके द्वारा वे उस दयाको मैला नहीं करना जानते। पण्डित मधुमङ्गल मिश्रजीने मालवीयजीकी दयालुताकी एक घटना लिखी है—

"एक दिन मैं प्रयागमें घण्टाघरके सामने जा रहा था कि मालवीयजी मिले। कुशल-प्रश्नके अनन्तर मैं थोड़ी दूरतक ही साथ चला होऊँगा कि एक अनाथ भिखारिनने उनका ध्यान आकृष्ट किया। उसके आर्तनादसे खिन्न हो वे पूछने लगे—पीड़ा कहाँ है? वह मैली घावसे भरे शरीरसे निरन्तर ताकती सी रही। उसके पास सड़कपर ही बैठकर पूछने लगे—कभी दवा कराई थी? उन्हें यों बैठे देख कई राहगीर एकत्र हो गए और उसके टिनमें पैसे पड़ने लगे। उससे कुछ उत्तर न पाकर मालवीयजीने कहा—मधु! एक एक्का बुलाओ और तुरन्त उठकर खड़े हो एक ख़ाली एक्का देखकर बुला लिया। उसे एक्केपर बैठनेको कहा। पर उसके हाथ-पैर भी न चलते थे। एक स्वच्छ वस्त्रधारी युवकने पूछा—'क्या मैं उसे बैठा दूँ?' आज्ञा पा उसने उसे हाथ पकड़ उठाना चाहा। जब न बन पड़ा तब हाथ-पैर समेत उठाकर एक्केपर टिका

दिया। मालवीयजी अस्पतालकी ओर आगे बढ़े और एक्केवालेसे कहा—मेरे साथ आओ। मेरा साथ उस समय वे भूलसे गए।"

"अभी दो ढाई वर्षकी बात है कि विश्वविद्यालयके बी० एस्-सी० का एक विद्यार्थी जुलाईसे पढ़ते हुए जनवरीतक फ़ीशिप न पा सका। प्रिन्सिपलने सहायता देना अस्वीकार किया। प्रार्थनापत्र लेकर वह तीन दिनतक मालवीयजीसे मिलनेका अवसर ढूँढता रहा पर मौक़ा न मिला। चौथे दिन भी सब कार्य निबाहकर वे भीतर चले गए, और फिर हठात् बाहर आए। उसे सूनेमें खड़ा देखकर पूछा—कहो क्या है? उसने प्रार्थनापत्र दे दिया। उसपर किसी पण्डितने लिख दिया था कि सहायताके अभावमें इसका अबतक पढ़ना व्यर्थ जावेगा। उन्होंने तुरन्त उसपर लिख दिया—प्रिंसपल साहिब, बन पड़े तो इसे सहायता दीजिए। प्रिन्सिपल महाशयने इतना लिखा पाकर उसकी फ़ीस क्षमा कर दी।"

इसी प्रकार पण्डित शिवराम वैद्यने भी एक घटना लिखी है—

एक बार मदनमोहन बिजलीकी तरह मेरे घर आ धमके। वे बहुत जल्दीमें थे। बोले—एक कुत्तेके कानके पास कान ही से मिला हुआ एक बड़ा घाव है। घावमें कीड़े पड़ गए हैं। वह उस तरफ़का शिरोभाग और कान लटकाए हुए भागता रहता है। उसकी दवा बताइए। मैंने एक अंग्रेज़ी दवा तजवीज़ की और इस सम्बन्धमें सलाहके निमित्त डाक्टर अविनाशके यहाँ गया। उनसे सारा हाल कहा। अविनाश हँस पड़े। बोले—आपकी तजवीज़ की हुई दवा ठीक है। मदनमोहन मेरे यहाँसे दौड़े हुए वापस कुत्तेके पास गए। उनके साथमें बहुतसे स्कूली लड़के भी थे। कुत्ता मक्खियोंके डरसे टट्टरकी आड़में दुखी होकर बैठा था। मदनमोहनने एक बाँसमें कपड़ा लपेटकर उसे दवासे तर किया और दूरसे कुत्तेके घावमें दवा लगानी शुरू की। कुत्ता भयङ्कर स्वरसे ग़ुर्राता और भौंकता था। वह दवा लगानेवालेको डराकर भगा देना चाहता था। पर मदनमोहन भी अपने धुनके पक्के थे। वे चुपचाप दवा लगाते जाते थे। दवा लगानेके बाद कुत्तेको आराम मिला और चिल्लाता हुआ कुत्ता थोड़ी देरमें आरामसे सोने लगा। ऐसा दुखी कुत्ता पागलकी अवस्थामें रहता है। उस समय मदनमोहनके धुनमें भी पागलपनका ही पुट था। अविनाशकी हँसीका यह एक माक़ूल कारण था। अविनाश डाक्टर थे, इसलिये ऐसी कार्रवाईपर हँस सकते थे, पर उस दुखी कुत्तेके दुःखको अनुभव करने और उस दुःखको दूर करनेकी व्याकुलतासे तड़पनेके लिये एक ऐसे हृदयकी ज़रूरत है जो मदनमोहन जैसे कुछ थोड़ेसे कोमल-हृदय महानुभावोंको ही प्राप्त होता है।

पण्डित रामनारायण मिश्रजीने एक घटना लिखी है जिससे यह मालूम हो जायगा कि वे केरे कुर्सी-तोड़ नेता नहीं है, बल्कि उनके मनमें सचमुच पीड़ितके प्रति दया है और पीड़ितकी सेवा करनेको हरदम तैयार रहते हैं।

"एक दिन रातके एक बजे श्री मालवीयजी हिन्दू स्कूलके बोर्डिङ्ग हाउसमें जिसमें मैं रहता हूँ पधारे और तीन-चार बड़ी उम्रके लड़कोंको अपने साथ मोटरपर ले गए और एक घण्टेके अन्दर उनको स्वयं लाकर पहुँचा गए। पता लगा कि जब वे बनारस स्टेशनपर उतरे थे, उन्होंने देखा कि दो बदमाश एक बच्चेवाली स्त्रीके पीछे लगे हैं और वह उनसे बचनेका प्रयत्न कर रही है। वे उस स्त्रीके साथ हो लिए और जब वह इक्केपर बैठ गई तब उन्होंने उसका पता जान लिया। बोर्डिङ्ग हाउसके लड़कोंको अपने साथ ले जाकर उनको खोजवाँमें उस स्त्रीका पता लगानेके लिये छोड़ दिया। लड़कोंने पता लगा लिया। पहले तो उस स्त्रीने डरकर दर्वाज़ा बन्द कर लिया और समझा कि वेही बदमाश उसके पीछे पड़े हैं, परन्तु जब उसको मालूम हुआ कि श्री मालवीयजीने ही उसकी रक्षा की है और वे यह जाननेके लिये बाहर खड़े हैं कि वह घर पहुँच गई अथवा नहीं, तब वह

प्रसन्न हो गई और उसने तुरन्त दरवाज़ा खोल दिया।

तृष्णाका त्याग

जिसने अपनी जाति और देशके लिये धूनी रमा ली, घूमता फिरा, आफ़तें सहीं, कष्ट सहे उसे फिर चाहिए ही क्या? संसारके सब पदार्थ उसके त्यागमें समा जाते हैं। केवल सेवा ही एक अकेली रह जाती है। महापुरुषकी यही तृष्णा रहती है—

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

देशके लिये मालवीयजीने वकालत छोड़ी और अपना सुख भी छोड़ दिया, और यह सब छोड़कर उन्होंने केवल दण्ड-कमण्डल लेकर संन्यास नहीं लिया और न अलख जगाते फिरे। सरकार और जनताके बीच साँकल बने हुए आपने अनमोल सेवाएँ कीं। जिस समय कांग्रेसमें उनके व्याख्यानोंकी धूम थी और प्रयागमें वे अपनी सेवाओंके कारण बड़े प्रसिद्ध हो रहे थे उन दिनों एक यह शोहरत उड़ी कि सरकारकी यह इच्छा है कि मालवीयजीको एक हज़ार रुपया महीनेपर जज बनाकर वह उन्हें ख़रीद ले। सरकारके लिये कोई यह नई बात नहीं थी। महाकवि अकबरने कहा भी था—

जज बनाकर अच्छे-अच्छोंका लुभा लेते हैं दिल।
क्या अजब है ख़ुशनुमा दो जीम उनके हाथमें॥

किसीने बातों-बातोंमें मालवीयजीसे भी इसका ज़िक्र किया। एकदम मालवीयजी बोले—"मैं जजी या सरकारी नौकरी किसी भी वेतनपर स्वीकार न करूँगा। मैं इस लालचमें नहीं फँस सकता। मैं ख़रीदा नहीं जा सकता (आइ कैन नौट बी बौट औफ़)। सचमुच मालवीयजीको कोई क्या ख़रीद सकता है?

कोमलता

मालवीयजीका स्वभाव कितना कोमल है इसे वे ही लोग जानते हैं जो उनके पास रहते हैं। दूसरोंकी पीड़ाकी हलकी-सी आँच लगते ही उनका हृदय पिघल जाता है और फिर वह कोमल हृदय, मीठी बोली और निर्मल आँसुओंके रूपमें प्रकट हो जाता है। एक सज्जनने कहा है कि "मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि शायद वर्त्तमान महापुरुषोंमें कोई भी व्यक्ति इतना कोमल न होगा जितने मालवीयजी, जो किसीको निराश नहीं करते और जिनसे कभी किसीको हानि तो पहुँच नहीं सकती।"

अनुचित कामकी लज्जा

महापुरुष पहले तो कोई ऐसा काम ही नहीं करते जिससे लोक और शास्त्रकी मर्यादा भङ्ग हो। यदि कभी भूलसे हो भी जाय तो वे उसे स्वीकार कर लेते हैं और प्रायश्चित्त करते हैं। मालवीयजीकी हठ यद्यपि प्रसिद्ध है पर साथ ही यह भी बात है कि अपनी भूल जान लेनेपर उन्हें कम पछतावा और ग्लानि नहीं होती।

गम्भीरता

मालवीयजीका कोई काम जल्दीमें या जोशमें नहीं होता। वह अच्छी प्रकार उसको बुद्धिकी कसौटीपर कसते हैं और तब प्रकट होता है। यही कारण है कि कभी-कभी उन्हें सारे संसारके विरुद्ध खड़ा होना पड़ा और अपजस भी सहना पड़ा पर उनकी गम्भीरता सदा विजयी होकर ही लौटी।

तेज

तेज मनुष्यकी वह शक्ति है कि केवल उसकी सूरत देखकर ही शत्रु हथियार डालकर, हाथ जोड़कर, घुटने टेककर, उसके आगे झुक जाय। मालवीयजी पचहत्तर वर्षके हो गए। इस अवस्थामें साधारणतः झुर्रियाँ मुखको ढक लेती हैं, तेज ग़ायब हो जाता है, फुर्ती भाग जाती है। पर मालवीयजीका मुख देखिए। ऐसा चमकता है मानो अभी जवानी शुरू होनेकी तैयारी हो रही हो। एक बार किसीने उनसे कहा कि अब तो आपका संन्यास लेनेका समय आ गया। मालवीयजी बोले—'लोग तो पचहत्तर बरसपर

संन्यास लेते हैं पर मैं तो फिरसे बालक बनने जा रहा हूँ।' एक बार मालवीयजीके चेहरेकी ओर तो देखिए जान पड़ेगा कि उन्होंने बावन तोले पाव रत्तीकी बात कही है। अब भी उनका तेज ज्योंका त्यों बना हुआ है।

यह उनके तेजका ही प्रताप है कि स्वर्गीय महाराणा उदयपुर उन्हें अपने बराबर कुर्सी देते थे और महाराजा ग्वालियर उनको मोटरमें बैठाकर अपने आप मोटर हाँकते थे।

एक बार एक सज्जन बड़े लाल-पीले होकर मालवीयजीसे लड़ने आए। भीतर मालवीयजीसे मिले। बाहर आकर कहने लगे—'भाई, मालवीयजीके तेज और उनकी शान्तिके सामने मेरी तो हवा ही गुम हो गई।' यह है उनके तेजका तेज।

क्षमा

क्षमाका गुण उसीमें हो सकता है जिसका हृदय विशाल हो, बुद्धि निर्मल हो और मन पवित्र हो। एक ओर जहाँ मालवीयजी 'आततायीको मारो' का उपदेश देते हैं वहीं शत्रुके झुक जानेपर और मुसीबतमें पड़ जानेपर क्षमा भी कर देते हैं। सन् १९२१ ई० की बात है। मालाबारमें मोपला लोगोंने हिन्दुओंको बुरी तरह लूटा और उनपर अत्याचार किए। सरकारने उन लोगोंका बड़ा दमन किया। सत्तर मोपले क़ैदी गाड़ीमें घुटकर मर गए और अनेकोंको सज़ाएँ हुईं। गान्धीजीने मालवीयजीको लिखा कि जहाँ हिन्दुओंकी सहायता हो रही है वहाँ इन पीड़ित मोपलोंके परिवारोंकी भी रक्षा की जाय। मालवीयजीने उत्तर दिया कि "आपने जो कुछ कहा है, ठीक ही है। यदि कोई उपकारके बदले उपकार ही करे तो उसका महत्त्व ही क्या। बात तो तब है कि जो बुराई करे उसके साथ भलाई की जाय। हिन्दू धर्मका महत्त्व इसीमें है।"

यह तो मालवीयजीकी क्षमाका केवल एक उदाहरण है।

धैर्य

धर्मका पहला लक्षण है धैर्य। धैर्यके लिये बड़े शुद्ध मनकी और शान्त बुद्धिकी आवश्यकता होती है। कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि बड़े-बड़े लोग मनकी शान्ति खो बैठते हैं, धीरज छोड़ देते और घबरा जाते हैं। पर मालवीयजीको ईश्वरने अपूर्व धैर्य दिया है। पण्डित चन्द्रमौलि सुकुलजीने एक घटना लिखी है—

"सन् १९१९ ई० और १९२२ ई० के बीचके किसी समयकी बात है। श्रीमान् मालवीयजी बहुत रुग्ण थे। उग्र ज्वरके साथ कठिन निर्बलता थी। उस समयतक विश्वविद्यालयमें वाइस-चान्सलरका बँगला नहीं तैयार हुआ था, क्योंकि पूज्य मालवीयजी जबतक सबके लिये निवास-स्थान न हो अपने लिये ईंट भी नहीं रखने देना चाहते थे। अस्तु, उस समय आप बाबू शिवप्रसाद गुप्तकी नगवावाली कोठी,—'सेवा-उपवन' में रहते थे। डाक्टरोंने कह दिया कि श्रद्धेय मालवीयजी किसीसे बात न करने पावें, क्योंकि रुग्णावस्थामें, विशेषतः निर्बल अवस्थामें, बातचीत करनेसे बची-खुची शक्ति भी क्षीण हो जाती है। परन्तु मालवीयजीको यह बन्धन कैसे पसन्द हो? वे उस दशामें भी लोगोंसे घिरे रहते थे और डाक्टरोंकी बातपर ध्यान न देते थे। अन्ततोगत्वा बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ऐसा प्रबन्ध किया कि बाहरका कोई आदमी वहाँ जाने ही न पाए; दर्शनार्थी लोग बाहर ही से विदा कर दिए जाने लगे। शायद इस प्रतिषेधकी सूचना भी पूज्य मालवीयजीको न दी गई हो। फलतः आपको कोई आदमी बात करनेके लिये न मिलने लगा। तब आपने एक उपाय निकाला, आदेश करने लगे कि अमुक व्यक्तिको बुलाओ, अमुक अध्यापकको बुलाओ। इन आज्ञाओंकी अवहेलना आपके परम हितैषी भी नहीं कर सकते थे।

मैं भी एक दिन पहुँच गया। वहाँ देखा कि एक वृद्ध पञ्जाबी सज्जन बड़ी गम्भीर मुद्रासे बैठे हुए हैं। कभी-कभी कोई बात कह उठते हैं। चलनेका समय हुआ तो प्रेमावेशमें उबलसे पड़े। वह श्री मालवीयजीके कोई चिरपरिचित मित्र और सम्भवतः उनके साथ काम करनेवाले थे। साश्रुलोचन, गद्गद कण्ठसे, कुछ सङ्कोचके साथ बोले, "महाराज! आपकी यह बीमारी सिर्फ़ उस मिहनत और परेशानीका नतीजा है जो आपने इस भारी कामके लिये अपने सरपर उठाई है। आपकी हालत देखकर निहायत अफ़सोस हो रहा है। इतनी कमज़ोरी है कि देखा नहीं जाता। अब ज़ईफ़ीका आलम आ रहा है, इतनी मिहनत करना मुनासिब नहीं। हिन्दुओंकी बहबूदीको मद्देनज़र रखनेवाला आपके बराबर कोई है नहीं। आप किसीका.....कहना .....मानते नहीं। ज़रा सोचिए तो कि आप ही तकका सहारा है। मैं क्या कहूँ? आपकी हालत यह हो रही है! परमात्मा आपको तन्दुरुस्त कर दें"।

यह बातें उन वृद्ध महाशयने बड़े करुण स्वरसे, रुक-रुक कर, क्षोभके साथ कहीं। इनका गूढ़ अभिप्राय समझनेमें श्री मालवीयजीको देर न लगी। उस शारीरिक कष्टमें भी आपने मुस्कराकर, परन्तु फिर भी बड़ी दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—"भाई, आपकी बड़ी कृपा है कि मेरे लिये ऐसे उच्च भाव आप रखते हो। आप यह बुज़दिली छोड़ दो। आप तो खुद जानते हैं कि मुझे अभी बहुत काम करना है, इसलिये मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ कि मुझे अभी मरनेकी फ़ुरसत नहीं।"

एक बारकी घटना है। मालवीयजी देहरादून गए थे। वहाँ टपकेश्वर नामक एक बड़ा सुन्दर स्थान है। लाला उग्रसेन रईसके साथ मालवीयजी टपकेश्वरके पास घड़ोड़ नामक स्थानको जा रहे थे। रास्तेमें मोटर बिगड़ गई। मालवीयजी उतरकर एक पत्थरपर बैठ गए मानों अपने घरपर ही बैठे हों। और इसी तरह घण्टे भरतक बैठे रहे। उनके चेहरेसे एक क्षणको भी यह नहीं मालूम हुआ कि उन्हें कहीं जाना है या नहीं। ग़ज़बका धैर्य्य है उनका।

इसी तरह असहयोगके दिनोंमें जब हिन्दू विश्वविद्यालयके टूटनेकी नौबत आ रही थी। राजे-महाराजे सभासे उठकर चले गए। जान पड़ा कि बस, अब टूटी युनिवर्सिटी। पर मालवीयजी ज़रा भी न घबराए। दौड़धूप करके सबसे मिले और मिलकर फिर सभा की। बाढ़ निकल गई। और कोई होता तो घबरा जाता और आज हिन्दू युनिवर्सिटीका इतिहास किसी दूसरी तरह लिखा जाता।

उनके धैर्य्यकी एक और कथा पण्डित चन्द्रमौलि सुकुलजीने कही है:—

"भागीरथीके वाम तटपर विशाल हिन्दू विश्वविद्यालयका कुछ भाग निर्मित हो चुका था। कई छात्रालय भी बन चुके थे। पहले जो छात्रालय बना उसमें एक-एक विद्यार्थीके लिये एक-एक छोटा कमरा देनेकी योजना की गई। उसमें अंग्रेज़ी कक्षाओंके विद्यार्थी भर गए। प्राच्यविद्या (संस्कृत) के विद्यार्थियोंका निवास-स्थान बनाना आवश्यक तथा असमयासहिष्णु था; इसलिये एक-एक बड़े कमरेमें कई विद्यार्थी रहनेके योग्य जो छात्रालय बना था उसमें इन विद्यार्थियोंके रहनेकी स्वीकृति दी गई। विद्यार्थी प्रविष्ट भी हो गए। परन्तु कुछ कालके अनन्तर उन्होंने यह आपत्ति की कि अंग्रेज़ीके एक-एक विद्यार्थीको पूरा-पूरा कमरा दिया गया है तो हम लोगोंको भी वैसे ही कमरे क्यों न दिए जायँ। अध्यापकोंने उन्हें बहुत कुछ समझाया-बुझाया, परन्तु वे क्यों मानने लगे। छात्रावास छोड़नेपर या ऊधम मचानेपर उद्यत हुए। अन्तमें निश्चय यह हुआ कि जबतक वाइस-चान्सलर महोदय (श्री मालवीयजी) न आ जायँ, सब कार्रवाई स्थगित रहे।

"श्री मालवीयजी काशी पधारे। विद्यार्थियोंने उन्हें घेर लिया। थोड़ा समझाने-बुझानेपर जब उन्होंने देखा कि यह साधारण कार्य्य नहीं है तो

समुद्रमन्थनके समय विष्णुजीको लक्ष्मी मिलीं और बेचारे शिवजीको ज़हर। इससे मालवीयजीकी विनोद-प्रियता और उनके सिद्धान्त दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। उनकी मनकी शुद्धिने इस बाहरी शुद्धिसे मिलकर मालवीयजीको शुद्धता और पवित्रताका एक आदर्श बना दिया है।

अद्रोह

मालवीयजीकी बातोंका और उनके मतका कितने लोगोंने विरोध किया पर उन्होंने किसीके प्रति ज़रा भी द्रोह या वैरकी भावना नहीं दिखाई। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकरने लिखा है कि प्रयाग प्रान्तीय कान्फ़रेन्सके अवसरपर मुझसे राजनीतिक बातोंमें पूरा विरोध होनेपर भी आपने मेरे साथ पूर्ण रूपसे शिष्टताका व्यवहार किया है और अपने सौजन्यका परिचय दिया। कानपुर कांग्रेसमें मालवीयजी भाषण कर रहे थे—"देश तबाह हो रहा है, सङ्कट बढ़ रहे हैं। ……।" इतने हीमें मञ्चके पास ही एक सदस्यने उठकर कहा "इसके लिये आप ही ज़िम्मेदार हैं"। मालवीयजी बोले "मैं?" वह बोला "हाँ आप"। मालवीयजी मुस्कराए और बोले "ईश्वर आपको सुबुद्धि दे।"

द्रोह तो उनके मनमें रहने ही नहीं पाता।

निरभिमानता

अभिमान तो मालवीयजीको छू भी नहीं गया। पद पाकर, यश पाकर लोग हवासे बात करते हैं, ज़मीनपर पैर नहीं धरते, उनका संसार ही निराला हो जाता है पर मालवीयजी इस दोषसे बचे रह गए। इतना सब कुछ करनेपर भी जब कोई उनकी प्रशंसा करता है या उनके सुकार्य्योंका वर्णन करता है तो वे कह देते हैं कि 'इसमें मैंने क्या किया है। सब भगवान् विश्वनाथजीकी कृपा है और आप लोगोंका आशीर्वाद है।"

ऐसी बात नहीं है कि मालवीयजी बड़े लोगोंकी तरह बिना मोटरके घरसे बाहर ही न निकलें। अब भी कई बार उन्हें लोगोंने इक्केपर या ताँगेपर बैठे देखा है।

व्याख्याता

चाहे भाषामें हो चाहे अंग्रेज़ीमें, मालवीयजी धाराप्रवाह भाषण देते हैं। अपने तो व्याख्याता हैं ही, उनके ज्येष्ठ पुत्र 'बक्कालीं' जब बोल भी नहीं सकते थे तभीसे 'हाँ, व्याख्यान तो दो' कहते ही किसी चबूतरे वा स्टूलपर चढ़, हाथ हिला, आ-आकर, व्याख्यानका आडम्बर रचते थे। भारतीभवनके किसी वार्षिकोत्सवके अवसर-पर पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्यकी अध्यक्षतामें भाषण देते समय सहपाठी मित्र डाक्टर गट्टमलका उन्हें स्मरण हो आया। उनका गुणगान सुनाते-सुनाते गद्गद कण्ठ हो उठे। आँखोंसे आँसू बह चले। रोते-रोते रूमालसे आँसू पोंछते व्याख्यान देते रहे। स्वयं रोए और श्रोतागणके हृदयोंको समवेदनाके भावसे भर दिया। एक बार देशकी हीन दशा बतलाते हुए आप कह रहे थे:—"अपनी नौकाकी रक्षाके लिये दीन मल्लाह रातमें अकेला डोंगीमें सोता है। खुले मैदानमें नदीके पेटपर जाड़ेके दिनोंमें उसके पास केवल एक पतलासा दुपट्टा रहता है, बिछानेको कुछ नहीं। जब रातमें ओससे दुपट्टा गीला हो जाता है तब वह उसे निचोड़कर फिर उसी गीले दुपट्टेको ओढ़ लेता है। यों तीन-चार बार करते रात बिता देता है। उसके ठण्ढके अनुभव और क्लेशको समझने और दो आँसू बहानेवाला कौन है?" और चाहे कोई आँसू भले ही न बहावे पर मालवीयजी तो बहा ही रहे थे।

चौरीचौरा केसके अभियुक्तोंकी अपीलकी बहस समाप्त करते हुए पण्डित मालवीयजीने न्यायाधीशोंसे दयापूर्वक न्यायका फैसला देनेकी प्रार्थना की। और न्यायधीशोंको उनके सन्तोषपूर्वक पूर्ण सौजन्यसे बहस सुननेके लिये धन्यवाद दिया। यह उनकी वाणीका ही प्रभाव था कि—प्रधान न्यायाधीशने

उत्तर देते हुए कहा था कि, "जिस ख़ूबी और उदारतासे आपने अभियुक्तोंके मुक़दमेकी पैरवी की उसके लिये ये अभियुक्त और उनके कुटुम्बी आपके ऋणी रहेंगे। और मैं अपनी ओरसे और मुझे विश्वास है श्री पिगोट न्यायाधीशकी ओरसे भी अपनी बड़ी सदिच्छा प्रकट करता हूँ कि जिस प्रकार आपने बड़ी ख़ूबीके साथ इस मामलेमें बहस की है शायद अन्य कोई भी इतनी अधिक सुन्दरतासे इसपर प्रकाश नहीं डाल सकता था।"

मालवीयजीका संस्कृतका ज्ञान शायद पण्डितोंको छोड़कर और लोगोंको नहीं पता है। काशीमें पण्डितोंकी सभामें कई बार मालवीयजीने ऐसी ललित संस्कृतमें धाराप्रवाह व्याख्यान दिए हैं कि बड़े-बड़े पण्डित उनका लोहा मान गए। संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने और बोलने-चालनेका अब रिवाज नहीं रहा है किन्तु अब भी जब विश्वविद्यालयमें संस्कृतमें शास्त्रार्थ होता है और मालवीयजी वहाँ रहते हैं तो उस समय मालवीयजीकी ललित संस्कृत सुनते ही बनती है।

पण्डित शिवराम वैद्यने मालवीयजीके संस्कृत-ज्ञान और भाषण-शक्तिके विषयमें लिखा है कि—

"बहुत दिन हुए, एक बार प्रयागमें जर्मनी-निवासी संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान्, वेदान्तशास्त्र, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदोंके धुरन्धर ज्ञाता एवं शाङ्कर वेदान्तके माननेवाले प्रोफ़ेसर ड्युसेन (डयूसन) उर्फ़ देवसेन बहुत उत्तम भाषण करते थे। उनसे मिलनेके लिये पण्डित लक्ष्मीनारायणजी व्यास, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी, पण्डित सरयूप्रसादजी तथा मैं और भी अन्यान्य लोगोंके साथ उनके निवास-स्थानपर गए थे और घण्टों बातचीतके उपरान्त यह तय हुआ कि कायस्थ पाठशालेके मैदानमें वेद-वेदान्तके ऊपर प्रोफ़ेसर ड्युसेनका भाषण हो। नोटिस बाँटी गई और प्रोफ़ेसर साहबका भाषण संस्कृतमें बड़ी धूम-धामसे हुआ। योरोपियन होते हुए भी वे पण्डितोंकी तरह बैठकर भाषण करते थे। व्याख्यान समाप्त होनेपर आर्य्य-समाजियोंने शङ्करके वेदान्तका खण्डन और स्वामी दयानन्द सरस्वतीके वेदान्तका मण्डन करनेके निमित्त पण्डित भीमसेनजीको खड़ा किया। पण्डित भीमसेनने अपने भाषणमें यथाशक्ति खूब खण्डन-मण्डन भी किया। मदनमोहनको यह कार्रवाई अच्छी न मालूम हुई। उनको यह बात खटकने लगी कि यहाँ विदेशसे एक शख़्स ऐसा आकर उपस्थित है जो हमारे गुणको परखता है और उसे ग्रहण करना चाहता है और हम खण्डन-मण्डनके फेरमें पड़कर उसके सामने बहुत ख़राब उदाहरण पेश कर रहे हैं। भीमसेनका प्रतिवाद करनेके लिये मदनमोहनने बैठे-बैठे एक काग़ज़पर संस्कृतमें कुछ लिखा और मुझे सुनाने लगे। पण्डित सुन्दरलालजी पास ही बैठे थे। यह लेख सुनकर वह मुस्कुराते जाते थे। यह दृश्य मेरे हृदयपर एक चित्रकी तरह अङ्कित है। मैं अपने सामने बैठे हुए पण्डित सुन्दरलालजीका वह मुस्कुराना स्पष्ट देख रहा हूँ।

"पण्डित भीमसेनके व्याख्यानके उपरान्त मदनमोहनका व्याख्यान हुआ। उनका व्याख्यान बहुत ही सुन्दर और मार्केका था। उन्होंने अपने भाषणमें इस बातपर अफ़सोस ज़ाहिर किया कि "कहाँ जर्मन देश और कहाँ भारतवर्ष। इतने दूरसे एक प्रसिद्ध विद्वान् यहाँ आकर हमारे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण वेदान्त-शास्त्रपर व्याख्यान दे और हम लोग उसका खण्डन करनेके लिये खड़े हों। कितने दुःख और लज्जाकी बात है। मुझे इस कार्रवाईके ऊपर परम दुःख है।

"मदनमोहन जिस प्रकार अंग्रेज़ीके विद्वान् हैं उसी प्रकार संस्कृत साहित्यके भी धुरन्धर पण्डित हैं कारण यह है कि वे वेद, गीता, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवतका बहुत दिनोंसे अबतक पाठ करते जाते हैं।"

कुछ और बातें

मालवीयजीके बारेमें यह सबकी शिकायत है कि वे कोई काम नियत समयपर नहीं करते। कुछ

सभाओंमें ठीक समयपर न पहुँचनेसे और स्टेशनपर देरसे पहुँचनेसे ही देशभरमें यह बात फैल गई है। पर बात ऐसी नहीं है। वे ठीक समयसे उठते हैं ठीक समयसे स्नान, सन्ध्या, स्वाध्याय करते हैं। कहीं-कहीं देरसे पहुँचनेका कारण यही है कि जिस समय वे तैयार होकर चलनेको उद्यत होते हैं उसी समय कोई-न-कोई अपना रोना लेकर आ खड़ा होता है। मालवीयजी उसको रोक नहीं सकते। उसका काम पहले होना चाहिए, मीटिङ्गमें चलासे देर हो। यही बात उनके साथ सदा लगी रहती है। किसी-न-किसीका भला करने, किसीकी सहायता करने या किसीका मन रखनेके लिये वे अपनी सार्वजनिक बदनामीकी चिन्ता नहीं करते।

उनकी कुछ घटनाएँ बड़ी रोचक हैं। मुन्शी ईश्वरशरण लिखते हैं :—

"एक बारकी बात है कि वे गोरखपुर गए थे और वहाँसे हम लोगोंको एक ट्रेन पकड़नी थी। हम लोग निकटतर स्टेशनको रवाना हुए। मालवीयजीके एक ग़रीब सम्बन्धीका मकान रास्तेमें ही पड़ता था। मेरे बहुत मना करनेपर भी वे उनके घर गए, वहाँ भोजन किया और जल्दी-जल्दी स्टेशनपर पहुँचे। गाड़ी चल चुकी थी, वह झट उसमें कूद गए। अपने डिब्बेसे उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—"आख़ीर मेरी बात ठीक हुई, मैंने भोजन भी कर लिया और ट्रेन भी पकड़ ली।"

उनकी गाड़ीमें अक्सर ही देर हो जाती है, पर उनके लिये प्रायः गाड़ी भी देरसे ही पहुँचा करती है। एक दफ़ा वायसरायकी कौन्सिलमें उनको किसी प्रस्तावको पेश करना था परन्तु आख़री गाड़ी भी छूट गई। वायसराय लौर्ड रीडिङ्ग साहबकी ख़ास ट्रेन संयोगसे जा रही थी। आपने लाट साहबसे अनुपस्थितिका खेद प्रकट किया। उन्होंने फ़ौरन् एक डिब्बा ख़ाली कराया और मालवीयजीको अपने साथ ले लिया।

एक घटना इससे भी विचित्र है। एक बार की बात है कि मालवीयजी और स्व० सर सुन्दरलाल साथ ठहरे हुए थे। कहीं जाना ज़रूरी था, पर ट्रेनका स्टेशनपर आनेका जो समय था उससे एक घण्टा अधिक हो गया था। मालवीयजी स्टेशनको रवाना हुए। सुन्दरलालजीने बहुत मना किया, लेकिन उन्होंने न माना। बोले—पण्डितजी, आप चिन्ता न करें; कभी-कभी गाड़ियाँ लेट भी होती हैं। यह गाड़ी भी "लेट" हो सकती है। वे गए और उन्होंने वही ट्रेन पकड़ी। यह गाड़ी उस दिन ढाई घण्टे देरसे आई थी।

रेलगाड़ियोंके सम्बन्धमें तो मालवीयजीके जीवनके साथ अनेक घटनाएँ जुड़ गई हैं। बहुत ही कम बार ऐसा होता है कि वह समयपर स्टेशन पहुँचते हों। न जाने कितनी बार उनके लिये गाड़ियोंको दो-चार मिनट ज़्यादा रुकना पड़ता है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभामें कोशोत्सवके अवसरपर भारत-कला-भवनके शिलान्यासकी नींव पूज्य मालवीयजीके हाथोंसे रक्खी जानेवाली थी। निश्चित समय बीत गया। सब लोग पूज्य मालवीयजीकी बाट जोह रहे थे। दो घण्टे निकल गए, मालवीयजीका पता नहीं। हताश होकर श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दर दासजीने श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाजीसे नींव रखनेको कहा। वे पैर धो ही रहे थे कि मालवीयजीकी मोटर दौड़ती हुई आ पहुँची। रेशमी धोती पहने ऊनी शाल ओढ़े नङ्गे पाँव, ललाटपर रोली और दधि-अक्षतका तिलक लगाए मोटरसे मुस्कराते हुए मालवीयजी उतरे। मालूम हुआ कि राजा मोतीचन्दके यहाँ किसी लड़केका उपनयन-संस्कार था। उस अवसरपर आशीर्वाद देनेके लिये गए थे। वहींके कृत्य सम्पन्न करनेमें विलम्ब हो गया। मोटर ही से मोग़लसराय जाने वाले थे। दिल्लीमें कांग्रेस कार्य्य-कारिणीकी बैठक थी। मोटरके आगे-पीछे बिस्तर आदिके बण्डल बँधे हुए थे। भारत-कला-भवनकी नींव उन्हींके हाथों पड़ी।

आनके पक्के

मालवीयजी अपनी आनके बड़े धनी हैं। एक बात जो उनके मनमें बैठ गई, वह पत्थरकी लकीर ही समझिए। यह बात अवश्य है कि वे बहुत सोच विचार कर निश्चय करते हैं किन्तु मनुष्य फिर भी मनुष्य है, कभी ग़लती भी हो ही जाती है। एक ओर जहाँ इस गुणसे बड़े-बड़े काम बन जाते हैं वहीं कभी-कभी उससे हानि भी हो जाती है पर हानि कम ही होती है। मालवीयजीकी धुनने जहाँ एक ओर बहुतसे मित्रोंको नाराज़ किया वहाँ बहुतसे नए बना भी लिए पर बहुत लोगोंका कहना है कि मालवीयजीकी यह धुन कभी-कभी स्वेच्छाचारिता और हठकी सीमातक पहुँच जाती है और कहा जाता है कि इसी कारण बहुतसे प्रसिद्ध विद्वान् हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़कर चले गए। पर आख़िर संसारमें हमें किसीको तो अपना पथ-प्रदर्शक बनाना ही पड़ेगा। संसारमें सभी तो नेता नहीं हो सकते। हमें नेता बननेसे पहले सिपाही बननेका अभ्यास करना चाहिए। 'अकबर' इलाहाबादीके शब्दोंमें,

'सब तो लीडर हैं यहाँ आख़िर सिपाही कौन है।'

हो सकता है कि मालवीयजी अपनी ही बात रखते हों, पर यह भी याद रखनेकी बात है कि यदि फ़ौजके सभी सिपाही अपने सेनानायककी आज्ञाओंपर तर्क करना शुरू कर दें तब तो आफ़त ही हो जाय। हिन्दुस्थानमें अभी सिपाहियोंकी सचमुच कमी है। मालवीयजीके धुनकी एक कथा शिवरामजी वैद्य लिखते हैं—

"सर सुन्दरलाल धुरन्धर विद्वान् और विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न होते हुए भी बहुत ही सीधे सादे व्यक्ति थे। उनकी प्रतिष्ठा और यशमें स्वतः वृद्धि हुई। स्वयं उन्होंने कभी अपने गौरवकी वृद्धिके लिये प्रयत्न किया हो, ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। परन्तु मदनमोहनमें आदमी पहिचानने और उससे उपयुक्त काम लेनेकी विलक्षण शक्ति थी। मदनमोहन सर सुन्दरलालकी योग्यताके क़ायल थे। उनके मनमें आया कि अगर ऐसा योग्य व्यक्ति कहीं कौन्सिलमें पहुँच जाय तो देशकी महती सेवा हो सके। मदनमोहनको धुन सवार हो गई और उन्होंने चारुचन्द्र मित्रके विरुद्ध सुन्दरलालको कौन्सिलका उम्मेदवार खड़ा कर दिया। मदनमोहन चारुचन्द्र मित्रको अपना बुज़ुर्ग और बड़ा समझते थे। पर एक धुन सवार हो गई तब प्रश्न सामने केवल यही था कि पण्डित सुन्दरलाल कौन्सिलमें पहुँच जायँ।

मदनमोहनके अनेक बुज़ुर्ग और इष्टमित्र मुंशी कुञ्जबिहारीलाल वग़ैरह उनकी इस कार्रवाईपर बेहद नाराज़ थे, कौन्सिलमें पण्डित सुन्दरलालका पहुँचना गवारा न कर सकते थे। उन दिनों राजनीतिक और सामाजिक गोष्ठीका नेतृत्व 'हिन्दी-प्रदीप' के प्रसिद्ध सम्पादक पण्डित बालकृष्णजीके हाथ था। भट्टजीके पास सब लोग एकत्र होकर पण्डित सुन्दरलालकी उम्मेदवारीके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते थे और इस सम्बन्धमें मदनमोहनको गालियाँ भी देते थे।

मदनमोहनके ऊपर भट्टजीका प्रेम विशेष था। इसलिये उनको स्वतन्त्र झिड़कियाँ और गालियाँ देनेका भी अबाध अधिकार था। वे झल्लाकर कहते—"क्यों रे मदनमोहन! तुझे यह क्या सूझा है? पण्डित सुन्दरलालने प्रजा-हितका कौनसा काम किया है। प्रजाहित-साधनमें ये कभी भाग नहीं लेते, तब तैं क्यों उनकी तरफ़दारी करता है और उनको कौन्सिलमें भेजनेके लिये प्रयत्न करता है। तैं चारूका विरोध करता है जिसने अपनी सारी ज़िन्दगी लोक-सेवामें बिता दी और जो तेरे बड़े ख़ैरख़्वाह भी थे। तैं चारूके विरुद्ध कोशिश करता है?"

मदनमोहन पण्डित सुन्दरलालकी योग्यता और कर्त्तव्य-परायणताके विषयमें भट्टजीको बड़ी नम्रतासे समझाते पर भट्टजी धुरन्धर विद्वान् ही नहीं बल्कि अपने मतको दृढ़तासे पकड़नेवाले भी थे। वे नाराज़ होकर कहते—"तू जो चाहे सो कर, पर इसको कौन्सिलमें जानेका कोई हक़ नहीं है। तू इनके पीछे

काहे पड़ता है, तू अपने लिये क्यों नहीं प्रयत्न करता।"

मदनमोहन मुस्कराकर कहते—भट्टजी, अभी मेरा कौन्सिल जानेका समय नहीं आया।

कुछ दिनोंतक कौन्सिलके उम्मेदवारोंके सम्बन्धमें इस तरहकी टीका-टिप्पणी गोष्ठीमें होती रही। बादको इनके तरफ़दारोंने अख़बारोंमें यह चर्चा छेड़ दी और दोनों तरफ़से भद्दे और कुरुचि-पूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे। मगर यह सब पण्डित सुन्दरलाल और चारु बाबूके तरफ़दारोंकी ओरसे हो रहा था। पण्डित सुन्दरलाल तो स्वयं कौन्सिलमें जाना पसन्द न करते थे, केवल मदनमोहनका अनुरोध उन्हें घसीटे लिए जा रहा था। जब थुक्का-फ़ज़ीहतके इस आन्दोलनने अख़बारोंमें ज़ोर पकड़ा तब एक दिन पण्डित सुन्दरलाल बाबू चारुचन्द्र मित्रसे मिले और विनीत भावसे कहा—बाबू साहब! यह जो अख़बारोंमें भद्दे लेख छप रहे हैं उनमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं है। मेरी कौन्सिलमें जानेकी तनिक भी इच्छा नहीं है। यह मालवीयजी वग़ैरहका हठ है जो मुझको भेजनेका प्रयत्न कर रहे हैं और उन्हींके हठके कारण मैं कौन्सिलके लिये खड़ा हूँ। चारुचन्द्र मित्र भी पण्डितजीके शील-स्वभावसे विज्ञ थे। उन्होंने जवाब दिया—पण्डितजी! क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि आप इस तरहकी कार्रवाइयाँ कब पसन्द कर सकते हैं। मगर कौन्सिलके चुनावमें ऐसे भद्दे आन्दोलन होते ही रहते हैं।

अन्तमें मदनमोहनका प्रयत्न सफल हुआ और पण्डित सुन्दरलाल कौन्सिलके मेम्बर हो गए। कौन्सिलका मेम्बर हो जाना एक साधारण घटना थी, मगर पण्डित सुन्दरलालजीपर इसका स्थायी असर पड़ा। इस घटनाके बाद पण्डित सुन्दरलाल देशके कामोंमें हाथ डालने लगे और उनके द्वारा ऐसे अनेक उपयोगी काम हुए हैं जो सदा सर सुन्दरलालकी कीर्त्तिको अमर बनाए रहेंगे।"

'कोई चिन्ता नहीं'

एक बार कुछ इङ्गलैण्डके शिक्षा-प्रेमी काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आए। मालवीयजी उन्हें भवन दिखानेके लिये ले गए। उन्होंने प्रोफ़ेसर शेषाद्रिसे कहा कि मुझे मीटिङ्गमें जाना है आप इन्हें इञ्जिनीयरिङ्ग कौलेज दिखा लाइए। प्रोफ़ेसर शेषाद्रि बोले कि शायद कौलेज बन्द हो गया होगा। मालवीयजी बोले—'कोई चिन्ता नहीं, वहाँ कोई चपरासी होगा'। प्रोफ़ेसर शेषाद्रि फिर बोले कि शायद कोई चपरासी भी इस समय न हो। इसपर मालवीयजीने कहा—"कोई चिन्ता नहीं। काँचके दरवाज़ोंमेंसे झाँककर देख लेंगे।" यह सुनकर उन अंग्रेज़ोंमेंसे एक बोल उठा—"मैं समझा, मैं अब समझा कि विश्वविद्यालयका निर्माण कैसे हुआ है। इसी 'कोई चिन्ता नहीं' की भावनाने ही इस विश्वविद्यालयको जन्म दिया है।"

महान् आशावादी

मालवीयजीकी आशा भारतीय इतिहासमें अशोकका स्तम्भ बन गई है। जब लोग चारों ओरसे निराशाके धुएँमें घिरे हुए बगलें झाँकते हैं उस अवसरपर भी मालवीयजी अपनी आशाका दीपक लिए हुए अपना मार्ग ढूँढ़ लेते हैं। उनकी इसी आशावादिताने उनके आगेके बड़े-बड़े समुद्र सुखा दिए, बड़े-बड़े बीहड़ वन साफ़ कर दिए और काँटोंसे भरे हुए मार्गोंमें फूल बिछा दिए। उनके लिये उनका यही आशावादी हृदय निरन्तर नई योजनाएँ निकाला करता है और विश्वास दिलाता रहता है कि ईश्वर प्रत्येक योजनाके लिये उनको आयु और साधन भी देता रहता है। हिन्दू विश्वविद्यालय वास्तवमें उनकी आशाका ही पुत्र है।

"सन् १९३१ ई० के आरम्भमें जब कांग्रेस एवं सरकारके बीच समझौता हुआ और महात्माजी गोलमेज़ कौन्फ़रेन्समें जानेके पहले वायसरायसे मिले तब भी मालवीयजीकी आशावादिताका ज़बर्दस्त प्रमाण मिला था। विलायत जाते समय जब वे सब तैयारी कर चुके थे और बम्बई पहुँच गए थे तब महात्माजी एवं सरकारके बीच कुछ बातें तै न पानेके कारण ऐसा मालूम होने लगा था कि कांग्रेस गोलमेज़ सम्मेलनमें भाग न ले सकेगी। बात-चीत अब टूटी, अब टूटी—यह हो रहा था पर मालवीयजीको सफलतामें इतना विश्वास था कि गान्धीजीके रुक जानेसे जब वे बम्बईसे उत्तरकी ओर आए तो सारा समान बँधवाकर बम्बईमें ही यह कहकर छोड़ आए कि अभी तो यहाँ लौटकर आना ही है। वही हुआ। जो असम्भव दिखता था वह सम्भव हो गया और मालवीयजी महात्माजीके साथ समयपर जहाज़पर रवाना हो सके।"

खुला दरबार

मालवीयजीका बँगला एक सराय है। हर तरहके लोग वहाँ आपको देखनेमें मिलेंगे। उनका दरबार सबके लिये हर समय खुला रहता है। इससे होता यह है कि हरएक ऐरा-ग़ैरा नत्थू-ख़ैरा वहाँ पहुँच जाता है और उनका समय व्यर्थ नष्ट करता है। वे सङ्कोचमें आकर किसीसे जानेको नहीं कहते और लोग भी इतने विद्वान् होते हैं कि उस समय बुद्धिसे ज़रा भी सम्बन्ध रखनेका प्रयत्न नहीं करते कि काम हो जाय तो चल दें, वहाँ डटे रहते हैं। अच्छी हालतमें तो ख़ैर कुछ नहीं पर मालवीयजी जब बीमार पड़ते हैं तब तो उनकी दशा देखकर बड़ी दया आती है। न मालूम कहाँ-कहाँसे लोग अपना पचड़ा लेकर आते हैं और मालवीयजी बिस्तरपर पड़े-पड़े उनकी गाथा सुनते जाते हैं। पिछले साल जब वे बीमार पड़े तो डाक्टरोंने बहुत देरतक उपदेश दिया और सलाह दी कि आपको किसीसे मिलना नहीं चाहिए, लोगोंका आना-जाना बन्द कर देना चाहिए, कम बोलना चाहिए इत्यादि। सब कुछ सुनकर मालवीयजी बोले—"कह चुके न? देखो एक शायरने कहा है—

नासेहा मत दे नसीहत जी मेरा घबराय है।
मैं उसे समझूँ हूँ दुश्मन जो मुझे समझाय है॥

पचहत्तर वर्षोंकी पुरानी आदत भला मुझे अब छोड़नेको कहते हो।" बस इस एक शेरमें मालवीयजीके सारे जीवनकी कहानी भरी हुई है। उन्हें इसीसे परख लीजिए। सचमुच पुरानी आदतें अब भला कहाँ छुटती हैं।

एक बार इसी तरह उनके छोटे पुत्र गोविन्दजीने भी उनसे कहा था कि आपको लोग बहुत परेशान करते हैं, मैं सब लोगोंका आना रोक देता हूँ। इसपर मालवीयजी बोले कि "जबतक मैं इस घरमें हूँ तबतक यह नहीं हो सकता"। इस खुले दरबारके कारण न जाने कितने खुफ़िया पुलिसवाले भी उनके बङ्गलेके चारों ओर मँडराया करते हैं पर काँचकी गचपर चील चोंच मारेगी तो अपना ही मुँह तोड़ेगी।

गान्धीजीने लिखा है कि—

"पण्डित मालवीयजीने मुझे अपने ही कमरेमें शरण दी। उनके जीवनकी सादगीकी एक झाँकी मुझे हिन्दू-विश्व-विद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर मिली, किन्तु इस अवसरपर उनके साथ एक ही कमरेमें होनेके कारण मैंने अत्यन्त निकटसे उनकी नित्यकी जीवन-चर्य्या देखी थी और उसे देखकर मैं मन्त्रमुग्ध हो गया। उनका स्थान सभी दरिद्रोंके लिये एक धर्मशालाकी भाँति था। वह इतना ठसाठस भरा था कि एक कोनेसे दूसरे कोनेतक जाना आपके लिये बहुत कठिन था। उसमें सब समयके लिये किसी भी अभ्यागतके लिये, जो अपनेको अपनी इच्छानुसार उनके समय लेनेका अधिकारी समझता था, आनेकी कोई मनाही न थी। इस धर्मशालाके एक कोनेमें बड़े सम्मानसे मेरी खटिया बिछी थी। इस भाँति मुझे मालवीयजीसे नित्य वार्त्तालाप करनेका सुयोग मिला। वह मुझे भिन्न दल और भिन्न विचारोंके होते हुए भी बड़े भाईकी भाँति प्यारसे समझाते थे।"

उपसंहार

इस पवित्र शतदल कमलको देखकर यही जान पड़ता है कि वह कोई दैवी शक्ति लेकर, किसी दैवी प्रेरणासे कुछ निश्चित उद्देश्य लेकर आया है और जबतक वह उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा तबतक वह यों ही खिला रहेगा और अपनी सुगन्धसे सारे संसारको पवित्र और सुवासित करता रहेगा।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी पचहत्तरवीं वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें कवियोंके उद्गार

कुसुमदलमाला

अमल-धवलतुङ्गं दिव्यमेतत् किरीटम्
सुरुचिररचनायाः कौशलेनातिरम्यम् ।
धवलगिरिशिरोवन्मालवीयस्य मूर्ध्नि
शतशतशतलोकेष्वद्वितीयं विभाति ॥ १ ॥

अतिमधुरमहो किं वर्त्तते तस्य निम्ने
विमलविशदभाले ? चन्दनं, नैव मन्ये ।
प्रियजनगुणसंमुग्धाशुतोषप्रसादात्
शिवपदविनतेऽस्मिन् पूर्णचन्द्रो विभाति ॥२॥

कमलनयनयुग्मं प्रोज्ज्वलं सुप्रभाते
रविरिव सुललाटात् स्निग्धतां प्राप्तमिन्दोः।
पुनरपि करुणार्द्रं लोकदुःखेन नित्यम्
तदिह च करुणात्वं मालवीयप्रसूतम् ॥ ३ ॥

स्मितमधुरवचोभिर्मोहने स्निग्धरम्ये
विमलमुखसिताब्जे नर्त्तकीं दिव्यवाणीम्।
सुरवरहरिजाया माऽऽगता द्रष्टुकामा
करकमलनिबद्धा विश्वविद्यालयार्थे ॥ ४ ॥

द्विभुजमिव गलेस्मिन् वेष्टितं शुभ्रपट्टम्
विनयनतधरित्रीपृष्ठलग्नं विभाति ।
मुखकमलगुरुत्वाच्चालयुग्मं वरेण्यं
रसहयमितवर्षं दिव्यवक्त्राम्बुजस्य ॥ ५ ॥

परिमृजितसुशुभ्रा पादुका शुभ्रवस्त्रं
तनुरपि तव शुभ्रा शुभ्रवर्णा च वाणी ।
सुचरितमतिशुभ्रं सर्वशुभ्रेण युक्तो
जयति कुलपतिः श्रीमालवीयो महर्षिः ॥ ६ ॥

इदं ते माहात्म्यं विबुधगणशक्तिं विजयते
तथाप्येतन्मे हि प्रयतनमिदं व्यर्थमथवा ।
भवद्वात्सल्यं यच्चिजसुतमिवोत्साहयति माम्
ततस्तुभ्यं श्रीमन् कुसुमदलमाला विरचिता ॥

काशी-सेण्ट्रल-हिन्दू-स्कूल-विद्यालय,
पौषकृष्णाष्टम्याम्,
सं० १९९३ ।

विधेयेन
श्री कालीप्रसन्नचक्रवर्त्तिना ।

मदनाष्टकम्

सित-चन्दन-चर्चित-भालतटम् ।
रुचिराम्बर-वेष्टित-गौरतनुम् ॥
प्रिय-देश-हितेरत-मान्य-वरम् ।
प्रणमामि शुभं विमलं मदनम् ॥ १ ॥

विधुहास्य-सुधासम-हास्ययुतम् ।
करुणामय-कोमल-चित्त-धरम् ॥
शुभदञ्च सुकोमल-वाक्यपटुम् ।
प्रणमामि शुभं विमलं मदनम् ॥ २ ॥

कुसुमादपि-कोमल-चित्त-धरम् ।
कुलिशादपि-भीषण-तेजयुतम् ॥
निजदेश-विशेष-विधान-करम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥ ३ ॥

शुभकर्म्म-सुभक्ति-सुज्ञानधरम् ।
नियमादि-यमान्वित-चित्त-तनुम् ॥
जनवाञ्छित-बान्धव-पाप हरम् ।
प्रणमामि शुभं अमलं मदनम् ॥ ४ ॥

जनसेवक-नायक-नागरिकम् ।
सम-बाल-युवाजन-प्रीतिकरम् ॥
गत-गौरव-वारिज-षट्पदकम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥ ५ ॥

स्मृति-वेद-पुराण सुज्ञान-घरम् ।
बिबुधाधिप-सेवक-रञ्जनकम् ॥
कृत-विश्व-मनोहर-पीठमिदम् ।
प्रणमामि शुभं अमलं मदनम् ॥ ६ ॥

बहु-शिल्पकला-निधि-आदरकम् ।
निज-पूर्व-परा-प्रति-प्रीतियुतम् ॥
भयनाशक-चालक-धैर्य्य-धरम् ।
प्रणमामि शुभं कुशलं मदनम् ॥ ७ ॥

नव-भारत-भास्कर-मोह-हरम् ।
द्विजदेव-समादृत-मान्यवरम् ॥
हृदि-कानन-पुण्यज-माल्यमिदम् ।
मदनाय ददामि च भक्तियुतम् ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीभुवन मोहन विरचितं मदनाष्टकं समाप्तम् ॥

श्रद्धाञ्जलि

पूजित पदपङ्कज पूजूँगा ।

पावन रजके मिले मत्त मधुकर समान गूंजूँगा ॥
उससे रच नयनोंका अञ्जन विपुल विमुग्ध बनूँगा ।
सकल लोकमें कलित कीर्त्तिका कान्त वितान तनूंगा ॥
गौरव गान विपञ्ची-रवमें भूरि विभूति भरूँगा ।
भारत-भूतलके जन-जनको भाव विभोर करूँगा ॥
बना भारती वरद पुत्र जिसकी विभुतासे गूंगा ।
ऐसे महा महिमको कैसे महामना न कहूँगा ॥

जिसका है शुचि जीवन जो है भवहित मुखरित सूगा ।
जो वह नहीं महर्षि तो किसे फिर महर्षि समझूंगा ॥
जिसकी पावनताका पग छू मैं पुनीततम हूँगा ।
उसकी विरदावली कथन करते क्यों कभी थकूंगा ॥
आशा है जगदीश कृपासे परम लाभ यह लूंगा ॥
बरस गाँठकी गाँठ-गाँठमें सहस गाँठ गूंथूंगा ॥

कविवर हरिऔध

महामना मालवीयजी

तुम्हें स्नेहकी मूर्त्ति कहूँ, या नवजीवनकी स्फूर्त्ति कहूँ ? ।
या अपने निर्धन भारतकी, निधिकी अनुपम पूर्त्ति कहूँ ? ॥
तुम्हें दया-अवतार कहूँ, या दुखियोंकी पतवार कहूँ ? ।
नई सृष्टि रचनेवाले, या तुम्हें नया करतार कहूँ ? ॥१॥

कहूँ तुम्हें सच्चा अनुरागी, या कि कहूँ सच्चा त्यागी ? ।
सर्व-विभव-सम्पन्न कहूँ, या कहूँ तपनिरत वैरागी ॥
कहूँ तुम्हें मैं वयोवृद्ध, या बाँका तरुण जवान कहूँ ।
तुम इतने महान, जी होता मैं तुमको अनजान कहूँ ! ॥२॥

कह सकता हूँ तो कहने दो, मैं तुमको श्रद्धेय कहूँ ।
निर्बलका बल कहूँ, अनाथोंका तुमको आश्रेय कहूँ ॥
श्रेय कहूँ, या प्रेय कहूँ, या मैं तुमको ध्रुव ध्येय कहूँ ।
तुम इतने महान, जी होता मैं तुमको अज्ञेय कहूँ ॥३॥

वीरोंका अभिमान कहूँ, या शूरोंका सम्मान कहूँ ।
मृदु मुरलीकी तान कहूँ, या रणभेरीका गान कहूँ ॥
शरणागतका त्राण कहूँ, मानव-जीवन कल्याण कहूँ ।
जी होता सब कुछ कह तुमको, भक्तोंका भगवान कहूँ ॥४॥

जी होता है मातृभूमिका तुम्हें अचल अनुराग कहूँ ।
जी होता है परम तपस्वीका मैं तुमको त्याग कहूँ ॥
जी होता है प्राण फूँकनेवाली तुमको आग कहूँ ।
इस अभागिनी भारत-जननीका तुमको सौभाग कहूँ ॥५॥

विमल विश्वविद्यालय विस्तृत, क्या गाऊँ मैं गौरव गान ।
ईंट-ईंटके उरसे पूँछो, किसका है कितना बलिदान ?
हैं कौलेज अनेकों निर्मित, फिर भी नित नूतन निर्माण ।
कौन गिन सकेगा कितने हैं दिलमें भरे हुए अरमान ॥६॥

तुमहिं आजकल और नहीं धुन, केवल आज़ादीकी चाह।
रह-रह कसक-कसक उट्ठा करती है उरमें आह कराह॥
गला दिया तुमने तनको रो-रो आँसूके पानीमें।
मातृ-भूमिकी व्यथा हाय हम सहते भरी जवानीमें॥७॥
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, यह जननी जयगान करे।
मिले तुम्हारी शक्ति देशको, यह नित नव उत्थान करे॥
मिले तुम्हारी आग देशको, आज़ादी आह्वान करे।
मिले तुम्हारा त्याग देशको, तन-मन-धन बलिदान करे॥८॥
जियो देशके दलित अभागोंके ही नाते तुम सौ वर्ष।
जियो वृद्ध माताके मनको धैर्य्य बँधाते तुम सौ वर्ष॥
जियो पिता-पुत्रोंको अपना प्यार लुटाते तुम सौ वर्ष।
जियो राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके आते-आते तुम सौ वर्ष॥९॥

श्रद्धाञ्जलि (बिल्वपत्र)

(१)

मालवीय महिमा महान महा मेदिनीमें,
सुर औ सुराङ्गना सुराग गाय नाचैं छम।
किन्नर औ किन्नरी परीहू अप्सरी हू सबै,
ढोलक मृदङ्ग झाँझ झनकारैं झमझम॥
इन्द्र इन्द्रासन पै झूमे जायँ झुकिझुकि,
ब्रह्मा विष्णु झूमैं, औ महेश बोलैं बमबम।
गिरिजा गिरीस पास आयके मनाय कहैं,
"चलौ, मालवीयजी कौ नैकु देखि आवैं हम"॥

(२)

हिन्दूपति मालवीय हिन्दूपति दीन्ह्यो बढ़ा,
हिन्दू विश्वविद्यालय मापहू अमाप है।
सुरलोक शिवलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक,
सप्तलोक लोकनमें गयो यश व्याप है॥
कीर्तिके पताकेसे कँगूरे ऐसे ऊँचे उठे,
अटक्यो अचानक विमान आय आप है।
चकित सुरेश पूछैं, थकित दिनेश पूछैं
'जनम्यो है शिवा कै फेरि जनम्यो प्रताप है॥'

—सोहनलाल द्विवेदी।

देवता है मालवी

जल रहा है आज घर-घर में चिराग़े मालवी

सब पै रोशन हो गया रौशन दिमाग़े मालवी।
जल रहा है आज घर-घरमें चिराग़े मालवी॥
गुल नहीं होनेका फिर भी लाख गर आँधी चले।
बुझ नहीं सकता बुझाएसे चिराग़े मालवी॥
एक-एक पौधेको सींचा इसने अपने ख़ूनसे।
बाग़े आलममें वो है सरसब्ज़ बाग़े मालवी॥
उम्र भरके वास्ते अब दूर हो जाएगी प्यास।
पीने वालो, आओ, पी जाओ, अयाग़े मालवी॥
अब अँधेरा वह कहीं देखो नज़र आता नहीं।
महफ़िले आलममें है रौशन चिराग़े मालवी॥
आस्माँसे जल्द ये आता है तारे तोड़कर।
किस क़दर रौशन है, ऊँचा है दिमाग़े मालवी॥
माँगते हैं हज़रते 'बिसमिल' ये दुनियासे दुआ।
हश्रतक जलता रहे यूँ ही चिराग़े मालवी॥

आदमीकी शक्लमें एक देवता है मालवी !

चलनेवाले जानते हैं यह कि क्या है मालवी।
मन्ज़िले उल्फ़तका सच्चा रहनुमा है मालवी॥
मौजे ग़ममें डूब सकती ही नहीं क़श्तीए क़ौम।
क्या ख़ुदाकी शान है अब तो ख़ुदा है मालवी॥
आप क्या जानें इसे क्या आपको मालूम है?
बामुहब्बत, बामुरव्वत, बावफ़ा है मालवी॥
अब तो मंज़िलपर पहुँच जाना कोई मुश्किल नहीं।
अब हमारा रहनुमा है, पेशवा है मालवी॥
उम्र अपनी ख़त्म कर दी हक़परस्तीके लिए।
हक़ तो यह है किस क़दर एक आइना है मालवी॥
पाक सूरत, पाक सीरत, पाक ख़स्मत, पाक ख़ूं।
कोई देखे एक मर्दे पारसा है मालवी॥
हज़रते 'बिसमिल' ने भी क्या बात ये सच्ची कही।
आदमीकी शक्लमें एक देवता है मालवी॥